विशेषांक

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका

वर्ष-५, अंक-१, श्रावण कृष्ण ७, संवत् २०६० युगाब्द ५१०५, २० जुलाई, २००३

पंथनिरपेक्षता और भारत

चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

विश्वविद्यालय की समग्र विकासोन्मुख कार्ययोजना

डॉ. आर.पी. सिंह की कुलपति पद पर तीन माह की उपलब्धियाँ

1. विश्वविद्यालय परिसर में स्नातकोत्तर स्तर पर जनसंख्या अध्ययन, ग्रामीण अर्थशास्त्र, विधि अध्ययन, गृहविज्ञान, पुस्तकालय विज्ञान, भूगर्भशास्त्र, रक्षा विज्ञान, ग्रामीण विकास एवं आयोजन, ललित कला, भूगोल, भौगोलिक सूचना व्यवस्था आदि रोजगारोन्मुख नवीन पाठ्यक्रम आरम्भ करने का निर्णय लिया गया।
2. बी.एड. प्रवेश परीक्षा 15 जून को सम्पन्न हुयी। जिसमें लगभग 45,000 छात्रों ने प्रवेश परीक्षा में भाग लिया जो कि उ.प्र. के समस्त विश्वविद्यालयों की तुलना में एक रिकार्ड है और प्रवेश परीक्षा में पारदर्शिता बनाये रखने हेतु उत्तर माला की दूसरी प्रति छात्रों को रखने की अनुमति प्रदान की गई तथा उत्तरमाला प्रकाशित कर दी गयी।
3. सभी संम्बद्धता के लम्बित प्रकरणों पर त्वरित कार्यवाही की गयी।
4. विश्वविद्यालय के एम.फिल्., पी-एच.डी. नियमों का पुनरीक्षित कराकर विद्वत परिषद् से अनुमोदित कराकर सत्र 2003-2004 से लागू कर लिया गया है।
5. विद्वत् परिषद के समक्ष समस्त नये पाठ्यक्रमों तथा आर्डिनेन्सिज को प्रस्तुत किया गया।
6. विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में फर्नीचर की अतिरिक्त व्यवस्था तथा भवन का विस्तार किया जा रहा है।
7. वाचनालय को छात्र-छात्राओं के लिए अनवरत चौबीस घंटे खुला रखने का निर्णय क्रियान्वित।
8. समस्त छात्रावासों में परीक्षाओं की अवधि में जेनरेटर से निरन्तर विद्युत आपूर्ति प्रदान की गयी।
9. शिक्षा संकाय में 3 जून 2003 से पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन तथा विषयों यथा अंग्रेजी, राजनीति शास्त्र, भौतिकी, वनस्पति विज्ञान विषय से पुनश्चर्या पाठ्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं।
10. शिक्षा में गुणवत्ता के दृष्टिकोण से विश्वविद्यालय के समस्त सम्बद्ध महाविद्यालयों में स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर प्रथम वर्ष में प्रवेश हेतु केन्द्रीकृत प्रवेश परीक्षा 2 जुलाई से 16 जुलाई, 2003 तक आयोजित की जायेगी जो प्रथम वर्ष किया जा रहा है।
11. विश्वविद्यालय परीक्षाओं के परिणाम एवं प्राप्तांक ऑन लाइन उपलब्ध कराने की व्यवस्था।
12. अखिल भारतीय राजनीति विज्ञान परिषद के 52वें राष्ट्रीय अधिवेशन को विश्वविद्यालय में 10-12 अक्टूबर, 2003 में आयोजित कराने का निर्णय।
13. परिसर के समस्त विभागों में शैक्षणिक गुणवत्ता की दृष्टि से इंटरनेट की सुविधा प्रारम्भ की जा रही है तथा सम्बद्ध महाविद्यालय व पुस्तकालय को विश्व इंटरनेट से जोड़ने का प्रस्ताव यू.जी.सी. को प्रेषित किया जा चुका है।
14. वैबसाइट के उच्चीकरण तथा अपलिंकिंग के विशेषज्ञ समिति का गठन तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सौजन्य से परिसर में फाइवर लाइन से इंटरनेट एवं कम्प्यूटर को जोड़ा जा रहा है।
15. समस्त विभागों में विषय के शीर्षस्थ विद्वानों के विशिष्ट व्याख्यानों की व्यवस्था की गयी है।
16. परिसर में एकेडमिक स्टाफ कॉलिज की स्थापना हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सैद्धान्तिक स्वीकृति के आधार पर प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया।
17. परिनियमों के अनुरूप गठित समितियों के अतिरिक्त क्रीड़ा परिषद, युवा कल्याण परिषद, सांस्कृतिक व शैक्षणिक परिषद, छात्र समस्या निवारण परिषद, कैरियर बिल्डिंग स्कीम, छात्र कल्याण परिषद, विकास एवं आयोजन परिषद आदि का गठन किया गया है।
18. चौधरी चरण सिंह ग्रामीण विकास शोध संस्थान की स्थापना हेतु अनुदान के लिए माननीय शिक्षा मंत्री से एक करोड़ रुपए की सैद्धान्तिक स्वीकृति शीघ्र ही अपेक्षित।
19. विश्वविद्यालय परिसर में नेक सेन्टर की स्थापना का प्रस्ताव यू.जी.सी. द्वारा सैद्धान्तिक रूप से स्वीकृति।
20. छात्रों का परिणाम निर्धारित तिथि के अन्तर्गत घोषित करना।

जन्म : २९ जनवरी, १९२२

निधन : १४ जुलाई, २००३

समस्त विश्व में कोटि-कोटि हिन्दुत्व उपासकों के अजस्र प्रेरणा-स्रोत

प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह उपाख्य श्री रज्जू भैय्या

ॐ

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका (सा.)

(विशेषांक)

वर्ष-५ अंक-१

पंथ निरपेक्षता और भारत विशेषांक

परामर्शदाता मण्डल

डॉ. शैलनाथ चतुर्वेदी

श्री योगेन्द्रनाथ 'योगी'

श्री पीयूष कान्ति राय

श्री आनन्द मिश्र 'अभय'

सम्पादक

अधीश कुमार

विशेषांक सम्पादक

डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी

मुखपृष्ठ

आशीष कश्यप

प्रकाशक

श्री विपिन बिहारी तिवारी

प्रबन्ध निदेशक

विश्व संवाद केन्द्र

डी-२, विधायक निवास-६

पार्क रोड, लखनऊ-१

दूरभाष : ०५२२-२३९२१४

मुद्रक

नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र

राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४,

शुल्क

आजीवन १५०० रु.

वार्षिक १५० रु.

एक प्रति ५० रु.

विषयानुक्रमणिका

	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	भारत में सर्वपंथ समभाव की परिकल्पना	डॉ. उदयनारायण उपाध्याय	८
२.	हिन्दुत्व में पंथनिरपेक्षता संरक्षित	डॉ. शिवबालक मिश्र	१०
३.	पश्चिमी जगत में पंथनिरपेक्षता का अर्थ	....	१३
४.	यूरोप में पंथनिरपेक्षता के उदय की कहानी	....	१६
५.	पंथनिरपेक्षता का सही अर्थ	....	१९
६.	संविधान सभा में पंथनिरपेक्षता पर चर्चा	....	२१
७.	पंथनिरपेक्षता की सही संकल्पना	हो.वे. शेषाद्रि	२५
८.	धर्म और सेकुलरिज्म	दत्तोपंत ठेंगड़ी	२७
९.	भारत में पंथनिरपेक्षता और अंग्रेजी साम्राज्य	डॉ. उपेन्द्र सहस्त्रबुद्धे	३२
१०.	पंथनिरपेक्षता का निहितार्थ	अटलबिहारी वाजपेयी	३५
११.	सांविधानिक प्रावधान और पंथनिरपेक्षता	डॉ. रमेश चन्द्र नागपाल	३९
१२.	पंथनिरपेक्षता राज्य की प्रामाणिक नींव	सरदार वल्लभभाई पटेल	४३
१३.	राष्ट्रदृष्टि बनाम सेकुलरिज्म	सीताराम गोयल	४५
१४.	कांग्रेसी पंथनिरपेक्षता की उपज है पाकिस्तान	अजय मित्तल	५१
१५.	मतान्तरण और राष्ट्रवाद	बलवीर पुंज	५३
१६.	भारतीय संविधान पंथनिरपेक्ष नहीं पंथ सापेक्ष	देवदत्त शर्मा	५६
१७.	इस्लामी विचार बनाम राष्ट्रीयता, लोकतंत्र...	हृदयनारायण दीक्षित	६०
१८.	सेकुलरवादियों का खण्ड-खण्ड होता पाखण्ड	हरिकृष्ण निगम	६३
१९.	इस्लाम और पंथनिरपेक्षता	वीरेन्द्र कुमार 'वीरू'	६६
२०,	पंथनिरपेक्षता, मीडिया एवं सेकुलरवादी	एच.के. निगम	७०
२१.	सरकार द्वारा रामलला शोभा यात्रा पर प्रतिबंध	शिवकुमार गोयल	७५
२२.	जम्मू कश्मीर राज्य का पुनर्गठन और सेकुलरवाद	बलराज मधोक	७७
२३.	पंथनिरपेक्षता का मुसलमानों द्वारा विरोध क्यों ?	हमीद दलवई	७८
२४	नेहरूवादी पंथनिरपेक्षता का घृणित स्वरूप	वेदप्रकाश भाटिया	८१
२५.	अल्पसंख्यकवाद अथवा मुस्लिम तुष्टिकरण...	जे.आर. पावगी	८४
२६.	पंथनिरपेक्षता कोरी व्यर्थता	वचनेश त्रिपाठी	८६
२७.	पंथनिरपेक्षता की चुनौती	विजय कुमार	८९
२८.	धर्मनिरपेक्ष शब्द को देश निकाला दो	डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी	९२
२९.	भारतीय मुसलमान हिन्दू राष्ट्र के अंग	अनवर शेख	९३
३०.	पंथनिरपेक्षता और समान नागरिक संहिता	डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी	९४
३१.	भारत की पंथनिरपेक्षत को आग लगाते....	अर्जुन देशप्रेमी	९७
३२.	मतान्तरण विरोधियों की आलोचना क्यों ?	एम.एन. राव	९९
३३.	माराड पर सेकुलर जमात के मौन का मतलब	शंकर शरण	१०२
३४.	पंथनिरपेक्षता या भारत का स्वधर्म	डॉ. रणजीत सिंह	१०३
३५.	कितने घातक हैं सेकुलरिज्म के ये आयाम	आनन्द मिश्र 'अभय'	१०६

अपनी बात

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका के **'पंथनिरपेक्षता और भारत विशेषांक'** के प्रकाशन के साथ ही पंचम वर्ष का प्रथम पुष्प आप सभी के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। विषयाधारित विशेषांकों की इस मालिका में अभी तक **'वन्दे मातरम्', '५२वीं शताब्दी', 'विजयी भारत', 'संविधान स्वर्ण जयन्ती', 'इस्लामी आतंकवाद', 'राष्ट्र संकल्पना', 'संघ सरिता', 'महाकुम्भ', 'कालगणना', 'जल प्रबन्धन', 'विश्वव्यापी आतंकवाद', 'जम्मू-कश्मीर', 'राम जन्मभूमि', 'अखण्ड भारत', 'जयप्रकाश जन्मशताब्दी'** और **'हिमालय विशेषांक'** का प्रकाशन किया जा चुका है। हमें विश्वास है कि अपने विगत सभी विशेषांकों की भाँति सुधी पाठकवृन्द **'पंथनिरपेक्षता और भारत विशेषांक'** में समाहित अध्ययन-सामग्री को भी पठनीय, मननीय और संग्रहणीय पायेंगे।

पंथनिरपेक्षता इस सनातन राष्ट्र की अविच्छिन्न एवं अखण्ड परम्परा रही है। यहाँ तक कि इस्लाम के जिहादी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सुदीर्घ कालखण्ड भी इस कालजयी संस्कृति के पुत्रों को इस श्रेष्ठ मार्ग से विचलित नहीं कर सके। फलस्वरूप १९४७ में मजहबी उन्माद के मध्यकालीन बर्बरतापूर्ण युग की पुनरावृत्ति करने वाले घटना चक्र के परिप्रेक्ष्य एवं परिवेश में अपनी पावन मातृभूमि के दुर्भाग्यपूर्ण पातकीय विभाजन की दुर्घटना के उपरान्त भी स्वतन्त्र भारत के संविधान निर्माताओं ने इस देश को अपने से पृथक हुए भाग पाकिस्तान तथा पृथक राज्य के अपने निर्माता के आदर्श को तिलांजलि देने वाले बंगलादेश की भाँति भारत को मजहबी राज्य घोषित करने की भूल नहीं की। फिर भी ब्रिटिश शासन-काल में रिलीजन को धर्म का पर्यायवाची मान लेने की हिमालयी भूल का दुष्परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी भाषा के सेकुलर और सेकुलरिज्म शब्दों का हिन्दी पर्याय धर्मनिरपेक्ष और धर्मनिरपेक्षता करते हुए व्यवहार में उसका अनुपालन अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण के रूप में किया जाने लगा। कुख्यात आपात्काल के दौरान सन् १९७६ में किए गए संविधान के बयालीसवें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान की उद्देशिका में 'पंथनिरपेक्ष' (सेकुलर) शब्द का जोड़ा जाना 'करेला वह भी नीम चढ़ा' की लोकोक्ति की सच्चाई को सिद्ध कर रहा है।

प्रस्तुत अंक में ३५ अधिकृत रचनाओं और ११२ पृष्ठों में समाहित पाठ्य-सामग्री में पंथनिरपेक्षता से संबंधित इन सभी पहलुओं के साथ-साथ यूरोप सहित पश्चिमी जगत में हुए उसके विकास की गाथा एवं संविधान सभा में इस विषय पर हुई चर्चा का यथावत तथ्यपूर्ण विवरण देने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत विशेषांक की सामग्री संग्रहीत करने में हमें अनेक बन्धुओं का सहयोग प्राप्त हुआ। फिर भी प्रख्यात लेखक एवं अनुज श्री शिवकुमार गोयल, सुविख्यात स्तम्भ लेखक श्री हरिकृष्ण निगम एवं श्री राजेन्द्र मोहन सक्सेना का हमें विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। उनको तथा अपने विद्वान लेखकवृन्द के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इस अंक में सर्वश्री शंकरशरण एवं अर्जुन देशप्रेमी की रचनाएँ 'दैनिक जागरण', विद्वान् न्यायमूर्ति श्री एम.एन. राव का लेख अंग्रेजी भाषा के दैनिक पत्र 'दि हिन्दू' तथा श्री वेदप्रकाश भाटिया की रचना राष्ट्रवादी विचारों के संवाहक अंग्रेजी साप्ताहिक 'आर्गनाइजर' से लिए गए हैं। अतः उक्त सभी विद्वान् लेखकों एवं समाचार-पत्रों के प्रति भी हम हार्दिक रूप से कृतज्ञ हैं।

इसके साथ ही हम विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका के परामर्शदात्री मंडल के सभी सदस्यों, न्यासियों एवं विज्ञापनदाताओं के प्रति हृदय से नतमस्तक हैं, जिनके अमूल्य सहयोग से यह अंक आप सभी के हाथों तक पहुँच सका है। सुधी पाठकवृन्द से नम्र निवेदन है कि प्रस्तुत अंक के गुणावदोष के विषय में अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराकर हमारा मार्गदर्शन करें।

☐ **विशेषांक सम्पादक**

सम्पादकीय

भारत सदा-सर्वदा पंथनिरपेक्ष रहा है। विभिन्न मत-पंथ के अनुयायी अपने-अपने तरीके से अपने उपास्य देव की आराधना अबाध रूप से करते रहे हैं। दूसरे मत-पंथ के प्रति सहिष्णुता के स्थान पर सम्मान देने की उदात्त भावना इस राष्ट्र में सदैव विद्यमान रही है। इसीलिए वह 'क्रूसेड' और 'जिहाद' से अपरिचित था।

पर 'स्व' का विस्मरण परकीय दासता की क्रूर अंध कालरात्रि के साथ-साथ इस राष्ट्र के निवासियों को दिग्भ्रमित भी कर बैठा। वह भारत के सनातन स्वरूप 'पंथ-निरपेक्ष धर्मराज्य' के स्वरूप को भूल गया। वह इस सच्चाई को भुला बैठा कि 'धर्म' समाज और राज्य की धारणा करने वाला होने से सदैव विधिसम्मत न्यायपूर्ण समाज और राज्य होता है, मजहबी राज्य नहीं।

अंग्रेज ने धर्म और पंथ के मध्य की लक्ष्मण-रेखा मिटाने का सुनियोजित प्रयास किया। किन्तु ईसाइयत की बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में बंगाल का विभाजन कराने में उसे मुँह की खानी पड़ी क्योंकि यह लक्ष्मण-रेखा उस कालखण्ड तक समाप्त नहीं हो सकी थी।

इसके तुरन्त बाद रूसी कम्युनिस्ट क्रान्ति ने इस राष्ट्र के बुद्धिजीवियों– प्रबुद्ध नहीं– की मनोरचना को अत्यधिक प्रभावित किया। यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति की चकाचौंध से प्रभावित यह वर्ग 'साहब वाक्यं प्रमाणम्' को निर्णायक तत्त्व मानकर पश्चिम की नकल करने के आत्मघाती मार्ग पर बढ़ चला। अपनी मनोरचना में एक वर्ग पश्चिमी देशों के उदारवाद के मुखौटे के साथ दूसरा वर्ग मार्क्सवादी विचारधारा का अंधानुयायी बनकर भारत की स्वतन्त्रता की माँग करते हुए भी अपने स्वत्व का विस्मरण कर बैठा।

फलतः पंथनिरपेक्षता की सही संकल्पना भी दूषित हो गई। उसे धर्मनिरपेक्षता का नाम देकर मुस्लिम तुष्टिकरण और अल्पसंख्यकवाद में परिवर्तित कर दिया गया। समाज और राष्ट्रतोड़क कम्युनिस्टों की तर्क-बुद्धि इसे बौद्धिक आयाम देने में जुट गई। राष्ट्रीय नेतृत्व भटक कर हिन्दू-मुस्लिम एकता की मृगमरीचिका के पीछे दौड़ लगाने लगा। वह कमाल अतातुर्क, वाई.एस. नायपाल, हमीद दलवई, अनवर शेख आदि के द्वारा बतायी गयी इस सच्चाई को भूल गया कि मजहब राष्ट्रीयता का निर्धारण नहीं करता। नायपाल, अनवर शेख और हमीद दलवई के मतानुसार तो अरबवासियों को छोड़कर शेष संसार के समस्त मुसलमान मतान्तरित हैं। मतान्तरण से पूर्वज, इतिहास, संस्कृति आदि नहीं बदला करते।

यह भ्रामक सोच खिलाफत आन्दोलन से शुरू होकर मातृभूमि के पातकीय विभाजन की मंजिल पर पहुँची। इसने समस्त राष्ट्र को झकझोर डाला। फलतः संविधान सभा में उसकी प्रतिध्वनि गूँज उठी। सरदार पटेल ने स्पष्टतम शब्दों में विभाजित भारत में **'एक राष्ट्र एक जन'** को मान्यता देकर मुस्लिम लीग की पृथक निर्वाचन की माँग को ठुकरा दिया। सर्वश्री लोकनाथ मिश्र और तजम्मुल हुसैन ने मजहबी स्वतन्त्रता के मूल अधिकार में मजहब के प्रचार की बात शामिल करने का विरोध किया। तजम्मुल हुसैन ने तो यहाँ तक कहा कि मजहब व्यक्ति और उपास्य के मध्य का निजी विषय है। अतः इस मूल अधिकार में यह लिखा जाए कि मजहब पर आचरण निजी तौर पर होगा। प्रो. हरिविष्णु कामथ ने धर्म और पंथ का अन्तर स्पष्ट करते हुए धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। डॉ. अम्बेडकर ने प्रो. के.टी. शाह के उस संशोधन को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया जिसमें संविधान में भारत को 'सेकुलर' राज्य घोषित करने की माँग की गई थी। कारण, उससे अल्पसंख्यकवाद की ध्वनि आ रही थी जिसका अनुपालन सन् १९२० से किया जा रहा था। अनुच्छेद २५(१) में प्रयुक्त 'सेकुलर' शब्द से उसके 'लौकिक मामलों' के होने का बोध होता है, 'पंथनिरपेक्ष' से नहीं। सरदार पटेल के 'एक राष्ट्र, एक जन' के सिद्धान्त को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से अनुच्छेद ४४ के द्वारा देश के समस्त नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने का समावेश संविधान में किया गया।

फिर भी संविधान सभा में श्री नेहरू के नेतृत्व में एक वर्ग सेकुलरिज्म अथवा पंथनिरपेक्षता के नाम पर अल्पसंख्यक तुष्टिकरण का पक्षधर था। अनुच्छेद २५ में मजहब के प्रचार का तत्त्व शामिल किया जाना इसका प्रमाण है। के.एम. मुंशी ने संविधान सभा में ही यह रहस्योद्घाटन किया कि **'मजहब के प्रचार'** की बात संविधान में शामिल करना आवश्यक है क्योंकि ईसाइयों को इसका अभिवचन दिया जा चुका है। मतान्तरण ईसाइयत का आधारभूत तत्त्व है।

इस पृष्ठभूमि में डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान के मूल पाठ में 'सेकुलर' शब्द को शामिल न करने का औचित्य समझा जा सकता है। किन्तु उसके तुरन्त बाद कांग्रेस में श्री नेहरू का एकाकी नियंत्रण कायम होने पर पंथनिरपेक्षता के नाम पर मुस्लिम किंवा अल्पसंख्यक तुष्टिकरण का रथ द्रुत गति से दौड़ने लगा। १९७६ के कुख्यात आपात्काल का दुरुपयोग कर संविधान की उद्देशिका में 'सेकुलर या पंथनिरपेक्ष' शब्द को समाहित करने से रामजन्मभूमि सहित इस राष्ट्र के समस्त सांस्कृतिक जीवनादर्शों का खुला विरोध किए जाने की मुहिम को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है जिसके फलस्वरूप 'पंथनिरपेक्ष' शब्द अब एक गाली में परिवर्तित हो गया है।

□ सम्पादक

श्रद्धाञ्जलि

यद्यपि इस धरा पर जन्म लेने वाला प्रत्येक प्राणी मरणशील है, फिर भी नव दधीचि की भाँति ऋषितुल्य जीवन व्यतीत करने वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चतुर्थ सरसंघचालक प्रोफेसर राजेन्द्र सिंह उपाख्य 'रज्जू भैय्या' इतना शीघ्र हम सभी को छोड़कर परमधाम सिधार जायेंगे, यह कल्पना कर पाना ही बड़ा कठिन है। फिर भी २९ जनवरी, १९२२ को उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद स्थित बनैल ग्राम में सुयोग्य पिता श्री बलबीर सिंह के सुयोग्य पुत्र के रूप में इस पुण्य धरा पर अवतरित होने वाले पूज्य रज्जू भैय्या श्रावण कृष्ण प्रतिपदा तदनुसार १४ जुलाई को इस असार संसार से विदा हो गए।

उनके तपोपूत जीवन के संबंध में तो एक सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना की जा सकती है क्योंकि वे एक ऐसे श्रेष्ठ और कुशल वैज्ञानिक थे जिन्हें श्री सी.वी. रमन सरीखे अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक ने अपने साथ शोध-कार्य करने का आमंत्रण दिया था। प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. होमी जे. भाभा के वे निकट सम्पर्क में थे। श्रेष्ठ अणु-वैज्ञानिक के रूप में उनकी ख्याति थी। भारत को आणविक शक्ति-सम्पन्न बनने के वे पुरोधा थे। प्रयाग विश्वविद्यालय में एक अत्यन्त सफल प्राध्यापक के रूप में वे एक सुदीर्घ कालखंड तक उक्त शिक्षा मंदिर सहित उ.प्र. और देश के युवा वर्ग के मार्गदर्शक रूप में उनके प्रेरणा-स्रोत बने रहे।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री रज्जु भैय्या का कार्यक्षेत्र भी बहुआयामी रहा। शिक्षा के साथ-साथ एक अत्यन्त कुशल संगठक और व्यक्तियों की सही परख करने वाला उनका व्यक्तित्व इतना अनूठा था कि आबाल-वृद्ध समाज के घटकों के वे परम श्रद्धा-भाजन बने रहे। सर्वश्री राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, लालबहादुर शास्त्री, डॉ. सम्पूर्णानन्द, चन्द्रभानु गुप्त, जयप्रकाश नारायण आदि उनकी प्रतिभा, कार्यकुशलता, ध्येय के प्रति निष्ठा एवं समर्पण आदि गुणों से अत्यन्त प्रभावित रहे। घनीभूत ऊर्जा के धनी उनके व्यक्तित्व की छत्रछाया में जहाँ एक ओर समाज के शोषित-पीड़ित एवं साधनहीन समाज बन्धुओं के उत्थान का कार्य निरन्तर गति पकड़ता गया वहीं कुख्यात आपात्काल की अंधकारपूर्ण कालिमा को चीरते हुए तथा अधिनायकवाद का उच्चाटन करके १९७७ में जनता पार्टी के गठन और उसे सत्तासीन कराने में आधुनिक कौटिल्य का स्वरूप देश-बान्धवों के सम्मुख प्रकट हुआ। भगवान रामलला के पावन जन्मस्थल पर भव्य श्रीराम मन्दिर निर्माण आन्दोलन उन्हीं के कार्यकाल में परवान चढ़ सका। भारत के प्रत्येक खण्ड, उपखण्ड एवं सुदूर ग्रामों सहित वनवासी, गिरिजनवासी क्षेत्रों में राष्ट्रीयता का मंत्र उनके सरसंघचालकत्व में ही सर्वदूर पहुँच सका। राष्ट्र की सीमाओं को पार कर विश्व के अन्यान्य भागों में हिन्दुत्व, हिन्दू जीवन-दर्शन, हिन्दू संगठन आदि के कार्य का विस्तार ही केवल उन्होंने नहीं कराया अपितु विश्व में उसको सम्मानजनक स्थान दिलाने में उन्होंने एक और विवेकानन्द की भूमिका को सफलता के साथ चरितार्थ किया। बिगड़ते हुए स्वास्थ्य के कारण सन् २००० में उन्होंने सरसंघचालक पद का दायित्व श्री कुप्.सी. सुदर्शन को सौंपकर अपने पूर्ववर्ती सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस द्वारा प्रस्थापित श्रेष्ठ परम्परा का अनुगमन कर अपने-आपको गौरवान्वित किया।

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका के तो वे प्रेरणास्रोत और मार्गदर्शक ही थे। उसके दो विशेषांकों का लोकार्पण अपने कर-कमलों द्वारा करके उन्होंने अपना आशीर्वाद और सद्मार्ग पर सतत अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान की थी। ऐसे श्रेष्ठ, परम तपस्वी, महाभाग के महाप्रयाण पर हमारा उन्हें शत-शत नमन।

विश्व हिन्दू परिषद VISHVA HINDU PARISHAD

Registered under Societies Registration Act 1860 No. S 3106 of 1966-67 with Registrar of Societies, Delhi

संकट मोचन आश्रम (हनुमान मन्दिर), सेक्टर-६, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली-११००२२ (भारत)

SANKAT MOCHAN ASHRAM, RAMKRISHNA PURAM-VI, NEW DELHI-110 022 (BHARAT)

दूरभाष : ९१-११-६१०३४९५, ६१७८९९२

फैक्स : ९१-११-६१९५५२७

तार : 'हिन्दू धर्म'

Phones : 91-11-6103495, 6178992

Fax : 91-11-6195527

E-mail : vhpnews@mantraonline.com

jaishriram@vsnl.in

Gram : 'Hindutva'

पत्र संख्या : वि.हि.प./१६बी/३

दिनांक : १० मई, २००३

आदरणीय डॉ. गौरीनाथ जी रस्तोगी,

जय श्रीराम !

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका का पाँचवे वर्ष का पुष्प **''पंथ निरपेक्षता और भारत''** आप प्रस्फुटित करने जा रहे हैं। इसके पूर्व भी जितने विशेषांक निकले, अत्यन्त हृदयग्राही और जानकारी देने वाले थे।

आपने विषय अत्यन्त समीचीन चुना है। भारत में एक समय जैसे समाजवाद की रट थी और सबकी अलग-अलग परिभाषा थी, आज ठीक वही भविष्य पंथ निरपेक्षतावाद का है। सत्य बात यह है कि यह शब्द हमने यूरोप से ग्रहण किया है। वहाँ राजा के धर्म के अनुसार प्रजा को भी स्वीकार करना पड़ता था। कालान्तर में राजा और प्रजा में विचार भिन्नता पैदा हुई और इसने ही जन्म दिया सेकुलरवाद को। भारत में सेकुलरिज्म का कोई स्थान नहीं था क्योंकि हमारे यहाँ व्यक्ति स्वतन्त्र बहुत पहले से था। ''मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना'' कहकर हमने सभी का सम्मान किया। इतना ही नहीं हमने तो ''एको ब्रह्म विप्राः बहुधा वदन्ति''। हमारे यहाँ राजाओं ने कभी पंथ के आधार पर अत्याचार नहीं किए। यह शब्द पूर्णतः विदेशी है, जिसे कतिपय बहुत से लोग भारत में घुसाने का प्रयास कर रहे हैं।

आशा है आपकी स्मारिका पंथनिरपेक्षतावाद का पूरा खुलासा करेगी ताकि हमारी वर्तमान पीढ़ी और आगे इस पंथ निरपेक्षतावाद नारे का तथ्यपरक ज्ञान प्राप्त कर लेगी। स्मारिका की सफलता की परमेश्वर से कामना करता हूँ।

भवदीय

आचार्य गिरिराज किशोर

(वरिष्ठ उपाध्यक्ष)

डॉ. गौरीनाथ जी रस्तोगी
विश्व संवाद केन्द्र, डी-२, पार्क रोड-६,
लखनऊ (उ.प्र.)

भारत में सर्वपंथ समभाव की परिकल्पना

□ डॉ. उदयनारायण उपाध्याय

विश्व में जितने भी धर्म या पन्थ हैं उनका कोई न कोई संस्थापक रहा है, उसके उद्‌भव के पीछे कोई कारण था तथा उसका उदय काल निश्चित है। परन्तु भारत का धर्म 'सनातन' है जो अनादि काल से अविच्छिन्न परम्परा में चला आ रहा है। वास्तव में यह भारतीय संस्कृति से उद्‌भूत 'सनातन धर्म, हिन्दुत्व अथवा हिन्दू धर्म' है। सृष्टि के प्रारम्भ से जब से भारत भूमि पर आर्य-संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ उसी काल से यह सनातन धर्म या हिन्दुत्व का आदर्श प्रतिष्ठापित है।

वास्तव में बिना हिन्दुत्व के भारतीय राष्ट्र का कोई अस्तित्व ही नहीं– हिन्दुत्व वह भूमि है जिसमें भारत की मूल जड़ें गड़ी हैं। स्वामी विवेकानन्द का मत है कि "India lives so long Hinduism lives" **"जब तक हिन्दुत्व जीवित है, भारत जीवित है।"** दूसरे शब्दों में हिन्दुत्व के कारण ही हमारा राष्ट्रीय वर्चस्व अक्षुण्ण बना है। हमारी राष्ट्रीय पहचान ही हिन्दुत्व से है जिसकी व्याख्या अपौरुषेय ग्रन्थ वेद से ही प्राप्त होती है।

"वेदऽखिलो धर्म मूलम् ।"

डॉ. एनी बेसेन्ट का स्पष्ट अभिमत है कि – "Without Hinduism India willl be a geographical expression of the past, a dim memory of a perished glory. **"हिन्दुत्व के बिना भारत अतीत की एक भौगोलिक इकाई, विनष्ट गौरव की एक मद्धिम याद मात्र रह जाएगा।।"** अस्तु "सर्वपंथ समभाव की परिकल्पना" की आधारशिला 'हिन्दुत्व' ही है क्योंकि हिन्दू धर्म (हिन्दुत्व) मूलतः एक जीवन-दर्शन अथवा जीवन प्रक्रिया है न कि धार्मिक विश्वास। अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भारतीय दार्शनिक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने स्पष्ट कहा है कि "It is more a way of life than a dogma. It is search after truth." **"यह एक मत-पंथ के स्थापन एक जीवन-दर्शन है। यह सत्य की खोज है।"** सर्वपन्थ समभाव वैदिक कालीन है– वेद आर्य सभ्यता एवं हिन्दू संस्कृति (आर्य संस्कृति) का मूलाधार है। वह ज्ञान-विज्ञान का उज्ज्वल धाम है तथा सम्पूर्ण आर्य वाङ्‌मय का प्राण है। वेदों में आधिभौतिक उन्नति की चरम सीमा, आधिदैविक अभ्युदय की पराकाष्ठा एवं आध्यात्मिक उन्नयन का चूड़ान्त रूप परिलक्षित होता है। यथार्थ रूप में वेदों में 'राष्ट्र एवं राष्ट्रीयत्व की अवधारणा' की विशद विवेचना की गई है। भूमि सूक्त में उल्लिखित **"माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः"** की अवधारणा तथा राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक परिकल्पना 'सर्वपन्थसमभाव' का ही द्योतक है। एक अन्य स्थल पर 'उपसर्प मातरम भूमि' इस तथ्य को प्रमाणित

करता है कि वैदिक काल में राष्ट्र एवं मातृभूमि के प्रति कैसी प्रतिबद्धता एवं श्रद्धा थी जो मानव इतिहास में– 'सर्वपन्थसमभाव' से अनुप्राणित उदात्त हिन्दू (आर्य) भावना के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण राष्ट्र (भारत) का एक ही 'धर्म' था– 'मातृभूमि की सेवा एवं राष्ट्र के कल्याण का चिन्तन'। महाकाव्य काल (रामायण तथा महाभारत) में भी संस्कृत भाषा के माध्यम से 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की परम्परा ने सम्पूर्ण राष्ट्र को 'समरसता एवं एकता के सूत्र' में बाँध कर **'धर्मार्थकाम मोक्षाणाम्'** के उद्देश्य से अनुप्राणित 'सर्वपंथ समभाव' की धारा को प्रवाहित रखा। इस प्रकार प्राचीन भारत में 'सर्वजन हिताय' की दृष्टि से राष्ट्र-रक्षा एवं उसके कल्याण हेतु कार्य सम्पादन ही शासक एवं प्रजा दोनों के लिए ''राष्ट्रीय धर्म' था। सम्राट् अशोक यद्यपि व्यक्तिगत रूप से बौद्ध मतावलम्बी था किन्तु उसने महाभारत में उल्लिखित 'राजधर्म' तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुरूप 'प्रजा सुखे सुखं राजः प्रजानाम् च हिते हितम्' के सिद्धान्त पर ही अपना 'राजधर्म' प्रतिष्ठापित किया था और स्वयं कहा है कि ''सर्व मुनिसे पजा ममी' यह मानसिकता भी ''सर्वपन्थसमभाव' के सिद्धान्त से ही अनुप्राणित थी।

सनातन धर्म की श्रेष्ठता

वास्तव में आज जो पंथनिरपेक्षता (Secularism) की अवधारणा एवं स्वरूप के विश्लेषण की त्रुटिपूर्ण एवं भ्रामक परम्परा के कारण विवाद खड़ा हो गया है उसका कोई औचित्य नहीं है। ज्ञातव्य है कि 'धर्म' शब्द का कोई पर्याय दूसरी भाषा में नहीं है। अंग्रेजी के रेलिजन (Religion) शब्द की परिभाषा (अर्थ) अत्यन्त संकुचित है तथा 'सम्प्रदायजनित' है। इसके विपरीत भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित हिन्दू धर्म (हिन्दुत्व) का स्वरूप निश्चित रूप से 'मानव धर्म' है जो किसी भौगोलिक इकाई अथवा साम्प्रदायिक सीमा से आबद्ध नहीं है क्योंकि उसका आदर्श है– ''वसुधैव कुटुम्बकम्''। यह शाश्वत है, चिरन्तन एवं विश्वसनीय है– यही नहीं यह स्थायी एवं सर्वव्यापी है। इसीलिए इसे आज भी 'सनातन धर्म' कहा जाता है। इसीलिए महाभारत का मानना है कि– **''सर्वे धर्मा राजधर्म प्रधाना।''**

हिन्दू की परिभाषा

वास्तव में हिन्दुत्व या सनातन धर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस प्रकार भारत का वह प्रत्येक नागरिक हिन्दू (आर्य) है जो भारत भूमि को अपनी जन्मभूमि समझता है। अब प्रश्न यह है कि हिन्दू की श्रेणी में कौन आता है। इस सन्दर्भ में स्वामी करपात्री जी ने स्पष्ट कहा है कि – ''ओंकार मूलमंत्राध्यः परलोक दृढ़ाशयी गोभक्तिः भारत गुरोः हिन्दूहीनत्व दृशितः''। (अर्थात् ओंकार जिसका मूलमंत्र है परलोक में जिसका विश्वास है, जो गोभक्त है, भारत को अपना गुरु स्वीकार करता हो, तथा हिन्दुत्व का अपमान नहीं सहन कर सकता, वही हिन्दू है।)

किन्तु ऐतिहासिक सत्य के निकट जो हिन्दू की परिभाषा है वह प्रातः स्मरणीय महान क्रान्तिकारी भारत माता के सपूत स्व. वीर सावरकर जी की है :

''आसिन्धुः सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।''

अर्थात् सिन्धु नदी से सिन्ध-कन्याकुमारी पर्यन्त भारत भूमि को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू है।

व्यावहारिक अनुसरण की आवश्यकता

वस्तुतः विविधता का सम्मान हिन्दू संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति का मूल उद्देश्य है जो निःसन्देह रूप से 'सर्वपन्थ समभाव' की उदात्त भावना से अनुप्राणित होता है, जैसे ''वन्दे मातरम्'' सभी सम्प्रदाय, जाति एवं धर्म के लोगों के लिए स्वातन्त्र्य-संग्राम का मन्त्र बन गया था। आज के परिवेश में सेकुलरिज़्म की वास्तविक एवं संवैधानिक परिभाषा 'पन्थनिरपेक्षता' ही स्वीकार योग्य एवं ग्राह्य है जो हमारे राष्ट्रीय सुरक्षा एवं जन-कल्याणार्थ परमावश्यक है। पंथनिरपेक्षता या सर्वपन्थ समभाव के सिद्धान्त के व्यावहारिक अनुसरण की जितनी आवश्यकता अपने राष्ट्र को है सम्भवतः उतनी अनिवार्यता संसार के किसी लोकतान्त्रिक देश को न हो।

अस्तु अपने देश भारत को यदि 'हिन्दू राष्ट्र' का स्वरूप प्रदान करना है तो हमें अपने उन सभी प्राचीन सांस्कृतिक, राष्ट्रवादी मूल्यों तथा मान्यताओं को सम्प्रति अक्षुण्ण बनाये रखना होगा जिनमें– 'सर्वपन्थ समभाव' की अवधारणा की विशिष्टता को राष्ट्रीय दृष्टि से उपयोगी एवं अनिवार्य बताया गया है। महाभारत के शान्ति पर्व में उल्लिखित 'राजधर्म' का भी संभवतः यही सन्देश है। □

– क्षेत्रीय संगठन मंत्री, लखनऊ उप-क्षेत्र
भारतीय इतिहास संकलन समिति
९७ दुर्गापुरी, लखनऊ

हिन्दुत्व में पंथनिरपेक्षता संरक्षित

□ डॉ शिवबालक मिश्र

पंथनिरपेक्षता को कई बार सेकुलरवाद और धर्मनिरपेक्षता के रूप में समझा और समझाया जाता है। इन शब्दों की परिभाषा और विवेचना इस अंक में अन्यान्य लेखों से मिल जाएगी। पंथनिरपेक्षता से हमारा तात्पर्य यही रहता है कि किसी भी पूजा पद्धति के प्रति हमारे मन में न तो दुराग्रह हो और न किसी अन्य के प्रति पक्षपात की भावना। ऐसी व्यवस्था वहीं सम्भव है जहाँ मतवैभिन्य की न केवल अनुमति हो बल्कि मतान्तर का सम्मान भी हो। श्रेष्ठ सामाजिक अवधारणाओं की ऐसी परिपक्वता उन्हीं समाजों में पाई जाती है जहाँ सांस्कृतिक चेतना, आध्यात्मिकता और मानवीय संवेदनशीलता का दीर्घकाल तक विकास हुआ हो।

पंथनिरपेक्षता को स्वीकार करने वालों के लिए यह मानना आवश्यक है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए एक से अधिक मार्ग सम्भव हैं। यह मानना होगा कि मंजिल एक ही हैं परन्तु रास्ते अलग-अलग हो सकते है। यह बात भारतीय मूल के सभी धर्म मानते हैं चाहे हिन्दू धर्म हो, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, खालसा पंथ या कोई अन्य। यहाँ की मान्यता है कि ईश्वर एक ही है परन्तु ज्ञानी लोग उसे विविध प्रकार से व्यक्त करते हैं।

विश्व में जितनी भी पूजा पद्धतियाँ हैं वे सभी समस्त भारत में पाई जाती हैं। भारत में हिन्दुओं ने सभी पूजा-पद्धतियों का सदा ही आदर किया है, भले ही उनके मानने वालों ने कृतघ्नता ही दिखाई हो। यह हिन्दू चिन्तन में समाहित पंथनिरपेक्षता और मत संबंधी सहिष्णुता ही थी जिसके कारण सैकड़ों और यहाँ तक कि हजारों वर्षों से अन्यान्य पंथावलम्बी यहाँ सहृदयता से रहते रहे हैं। यहाँ के वैचारिक पक्षों में प्रमुख पश्चिमी देशों का वर्चस्वमयी ईसाई चिन्तन, मध्यपूर्व के देशों से प्रसारित इस्लामी सोच, कतिपय देशों के कम्युनिस्ट विचार और चिरस्थापित भारतीय मूल की धार्मिक अवधारणाएँ- इनमें से केवल भारतीय मूल के विचार ही ऐसे हैं जिनमें पंथनिरपेक्षता व्यवहार में देखने को मिलती है

कम्युनिस्ट सेकुलरवाद

कम्युनिस्टों की कल्पना में आस्था, पूजा और परम्परा के लिए स्थान नहीं होता। उनके लिए मन्दिर, मस्जिद अथवा गिरिजाघर का कोई महत्त्व नहीं। सब कुछ श्रम और पूँजी के चश्मे से देखा जाता है। उन पर जब मुसीबत आती है तो उन्हें बचाने वाला भगवान भी नहीं होता। सब कुछ ढह जाता है जैसे रूस, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, मंगोलिया, हंगरी जैसे अनेकानेक देशों में विगत कुछ वर्षों में हुआ। इस व्यवस्था में राज्य का कोई आस्था केन्द्र नहीं होता और लोगों के पंथिक विचारों का कोई महत्त्व नहीं होता। तो फिर जब पंथ नहीं होंगे तो पंथनिरपेक्षता का प्रश्न ही नहीं उठता। भारतीय सन्दर्भ में ऐसे सेकुलरवाद का कोई मतलब नहीं क्योंकि यहाँ पंथ भी हैं, पूजा-पद्धतियाँ हैं और पंथों के बीच समन्वय की आवश्यकता भी है।

इस्लाम की सोच

इस्लाम मतावलम्बी यह मानते है कि उनका पंथ सब प्रकार से पूर्ण है, उसमें जीवन के सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इस्लाम की स्पष्ट मान्यता है कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, हजरत मुहम्मद साहब के बाद कोई दूसरा पैगम्बर नहीं हुआ है और पवित्र कुरआन के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म-ग्रंथ नहीं है। इस अवधारणा के कारण दूसरों को कोई कठिनाई न होती यदि यह मान्यता व्यक्तिगत आस्था तक सीमित होती। परन्तु दूसरों को कठिनाई और पंथनिरपेक्षता पर चोट तब पहुँचती है जब भिन्न मत वालों को भी यही मान्यता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता है।

पंथनिरपेक्षता के सन्दर्भ में पहली कसौटी यह है कि कोई मत, सम्प्रदाय, पंथ, मजहब किसी अन्य विचार वालों को जीवित रहने देता है कि नहीं। इतिहास के पृष्ठों का अवलोकन करें तो पाते हैं कि गुरु गोविन्द सिंह के सपूतों के समक्ष दो ही विकल्प थे या तो दीवार में चुना जाना अथवा इस्लाम को स्वीकार करना। केरल का मोपला आन्दोलन प्रमाणित करता है कि पाँच हजार हिन्दुओं के समक्ष दो ही विकल्प थे, या तो तलवार से सिर कलम कराना अथवा इस्लाम को स्वीकार करना। गुरु अर्जुन देव, गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्द सिंह

को अपनी प्राणाहुति केवल इसलिए देनी पड़ी कि उन्होंने अपना धर्म छोड़ कर इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। यदि ये घटनाएँ सत्य हैं तो मानना पड़ेगा कि इस्लाम दूसरे पंथों, सम्प्रदायों और धर्मों के मानने वालों को तभी तक जीवित रहने का अधिकार देता है जब तक दार-उल-हरब को दार-उल-इस्लाम में बदलने का काम पूरा नहीं हो जाता। अर्थात् जैसे ही इस्लाम को मानने वालों में शक्ति आती है वे अपने से भिन्न विचारों को सहन नहीं करते। इस प्रकार जब दूसरे पंथ ही नहीं होंगे तो निरपेक्षता किसके साथ ?

इस्लाम के सन्दर्भ में मजहबी सहिष्णुता को समझने के लिए विचार करना होगा कि इस्लाम की अवधारणा में काफिरों का क्या स्थान है। क्या मुसलमान और काफिर के बीच में भाई-चारा सम्भव है। शायद नहीं, और इसलिए एक मुसलमान जब भाई-चारे की बात करता है तो उसका तात्पर्य मुस्लिम ब्रदरहुड अर्थात् इस्लामी भाईचारा से होता है। इस बात को स्वामी श्रद्धानन्द जी के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। १९२० के दशक में जब खिलाफत आन्दोलन चल रहा था तो स्वामी श्रद्धानन्द जी ने न केवल इस आन्दोलन का समर्थन किया था बल्कि जामा मस्जिद में उसके पक्ष में तकरीर भी की थी। मुस्लिम समुदाय ने इसका कोई एहसान नहीं माना बल्कि जब एक मुसलमान के द्वारा स्वामी जी की हत्या की गई तो हत्यारे के वकील ने अदालत में तर्क दिया था कि चूँकि एक मुसलमान ने काफिर को मारा है अतः वह दंड का भागी नहीं कहा जा सकता है। यह बात सदैव याद रहनी चाहिए कि भारत का मुसलमान यहाँ के हिन्दुओं को काफिर ही मानता है। कुछ वर्ष पहले पटना के एक मुस्लिम विद्वान ने कहा था कि इस बात का फतवा जारी होना चाहिए कि भारत के हिन्दू काफिर नहीं हैं तो उनके विरुद्ध आन्दोलन छिड़ गया था। वहाँ के छात्रों और प्राध्यापकों तक ने उनका विरोध किया था। इन बातों का पंथनिरपेक्षता, सहिष्णुता और सह-अस्तित्व के सन्दर्भ में बहुत ही महत्त्व है।

दूसरे धर्मों के प्रति इस्लाम की सहिष्णुता को समझने के लिए उसके मूल स्थान सऊदी अरब पर दृष्टि डालनी होगी। विचार करना होगा कि वहाँ पर कितने मन्दिरों, गिरिजाघरों अथवा बौद्ध मठों के निर्माण की इजाजत दी गई है। विचार इस बात पर भी करना होगा कि इजराइल के साथ पड़ोसी मुस्लिम देशों के सतत संघर्ष के कारण क्या है ? लेबनान, तुर्की, और साइप्रस में ईसाइयों के साथ मुसलमानों के निरन्तर संघर्ष क्यों होते रहते हैं ? इन सभी के मूल में सहिष्णुता का अभाव दिखाई देगा। भारत के कोणार्क और खजुराहो की खंडित मूर्तियों तथा तोड़े गए हजारों मन्दिर इस बात की गवाही दे रहे हैं कि शक्ति-सम्पन्न इस्लाम को अपने अतिरिक्त कोई दूसरी पूजा-पद्धति सहन नहीं हो सकती और सहिष्णुता के अभाव में न तो सर्वपंथ समभाव आ सकता है और न पंथनिरपेक्षता।

भारत विभाजन

भारत विभाजन का आधार न तो आर्थिक था, न भाषायी और न सामाजिक। यह विभाजन शुद्ध रूप से मजहबी कारणों से हुआ था। आगा खाँ, सर सैयद अहमद खाँ और मुहम्मद अली जिन्ना का मानना था कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग कौमें हैं और उनका सह-अस्तित्व सम्भव नहीं है। इन द्विराष्ट्रवादियों का कहना था कि हिन्दू और मुसलमानों का अलग-अलग इतिहास है तथा वे अलग-अलग महापुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत का अधिसंख्य मुस्लिम समुदाय इन महानुभावों की व्याख्या से सहमत था क्योंकि जब अलग मतदान की व्यवस्था के अन्तर्गत १९३७-३८ में मुसलमानों ने मुसलमानों को वोट दिया तो जिन्ना की मुस्लिम लीग के सभी प्रत्याशी विजयी हुए और कांग्रेस जो मजहबी सहिष्णुता की बातें करती थी उसके सभी मुस्लिम प्रत्याशी हार गए। विभाजन के बाद पाकिस्तान में जो हिन्दू आबादी थी उसकी तो कल्पना मात्र ही की जा सकती है। केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। विभाजन के समय लाहौर की आबादी ग्यारह लाख थी, जिसमें ५ लाख हिन्दू , ५ लाख मुसलमान और लगभग एक लाख सिख थे। इन सभी बातों के विस्तार के लिए **पियर एलिएट** और **कॉलिंस** की पुस्तक **"फ्रीडम ऐट मिडनाइट"** का सन्दर्भ लिया जा सकता है। लाहौर में आज की आबादी में हिन्दुओं का प्रतिशत नगण्य है। तो फिर कहाँ गई लाहौर की हिन्दू आबादी। निश्चित रूप से कुछ को मार डाला गया होगा, कुछ पलायन करके भारत आए होंगे और अधिसंख्य को धर्मान्तरित होना पड़ा होगा। दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने ही देश में कश्मीर घाटी में मुस्लिम आबादी में मात्र २ प्रतिशत हिन्दुओं का रहना सम्भव नहीं हो पाया है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अपने से भिन्न मत वालों के लिए उनके दिल में कितनी जगह है।

विभाजन के बाद पाकिस्तान में इस्लामी राष्ट्र की स्थापना

हुई, परन्तु भारत में पंथनिरपेक्ष व्यवस्था स्वीकार की गई। कुछ लोगों का मानना हो सकता है कि भारत में पंथनिरपेक्षता पंडित जवाहर नेहरू के कारण आई। परन्तु यदि भारत वासियों की मानसिकता में मजहबी सहिष्णुता न होती तो नेहरू क्या दुनिया का कोई तानाशाह भी यहाँ पंथनिरपेक्षता की स्थापना नहीं कर सकता था। यहाँ के लोगों ने सहज भाव से पंथनिरपेक्षता को इसलिए स्वीकार कर लिया क्योंकि यहाँ की आबादी का बहुसंख्य भाग हिन्दू था। और जिन्ना की इच्छा के बावजूद पाकिस्तान में सेकुलरवाद नहीं आ सका क्योंकि वहाँ की आबादी का बहुसंख्य भाग मुसलमान था। इस कड़वी सच्चाई को मानना ही होगा।

ईसाई चिन्तन

ईसाई चिन्तन को विचारधारा का जो धरातल मिला था उसमें सहिष्णुता और मतभिन्नता के लिए अधिक स्थान नहीं था। वह ऐसा धरातल था जहाँ मतान्तर के लिए सुकरात को जहर पीना पड़ा, गैलीलियो को प्रताड़ित होना पड़ा और ईसामसीह को सूली पर चढ़ना पड़ा। ऐसी वियारधारा से विकसित पंथ में अपने से इतर पूजा-पद्धतियों को समभाव से देखना तो दूर उन्हें अस्तित्व में रहने तक की इजाजत कठिन थी। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड को ही ले लीजिए जहाँ पांथिक स्वतंत्रता की काफी ढफली बजाई जाती है वहाँ धर्मनिन्दा अर्थात् ब्लैस्फैमी की सजा तभी मिलती है जब कोई व्यक्ति ईसाई धर्म को अपमानित करता है। किसी मन्दिर अथवा मस्जिद को अपमानित करे तो उस पर यह कानून लागू नहीं होता। स्पष्ट है कि पंथनिरपेक्षता नहीं है। अधिकांश ईसाई बहुल देशों में यही स्थिति है।

ईसाई धर्मावलम्बियों के विषय में इतना तो मानना पड़ेगा कि उन्होंने भारत में विध्वंस कम किया क्योंकि उनका असहिष्णुता का तरीका भिन्न रहा है। ईसाइयों का तरीका है कि शक्ति के स्थान पर प्रलोभन, छल-कपट और मिथ्या प्रचार का सहारा लेकर स्थानीय धर्म-संस्कृति के प्रति हीनभाव पैदा करना। असहिष्णुता का तरीका जो भी रहा हो, लक्ष्य एक ही था कि भूभाग से अन्य पंथों को समाप्त करके अपने पंथ की स्थापना करना। भारत के उत्तर-पूर्वी प्रदेशों पर विचार करें तो देखते हैं कि वहाँ के लोगों ने ईसाई पंथ को स्वीकार करने के पश्चात् अपने को शेष भारतीयों से भिन्न समझना आरम्भ कर दिया।

हिन्दुत्वबोध

भारत की धरती पर पिछले १० हजार वर्षें में जिस सांस्कृतिक चिन्तन का विकास हुआ है उसे चाहे जिस नाम से पुकारा जाय उसके स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चाहे आप हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, भारतीय संस्कृति, आर्य संस्कृति अथवा फिर हिन्दुत्व के नाम से पुकारें उसके मूल तत्त्व नहीं बदलेंगे। सत्य, अहिंसा सहिष्णुता, सर्वोपकार, विश्वबन्धुत्व जैसे गुणों का समावेश होने के कारण हिन्दुत्व कभी भी संकीर्ण नहीं हो सकता। विश्व का एकमात्र हिन्दूराष्ट्र नेपाल इस बात का सबूत है कि वहाँ सहजभाव से वेदमंत्र और अजान सुनाई पड़ते है। वहाँ मन्दिरों के साथ-साथ मस्जिदें और गिरिजाघर हैं। भारत यदि हिन्दूराष्ट्र बनेगा तो विधर्मियों के प्रति व्यवहार में कोई विकार नहीं आएगा। हिन्दू जब **'सर्वे भवन्तु सुखिन'**; कहता है तो मुसलमान और ईसाई भी उसमें सम्मिलित रहते हैं। जब **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की बात कही जाती है तो कोई भी व्यक्ति उस कुटुम्ब से बाहर नहीं रहता। इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दू अवधारणा में मुनष्य और मनुष्य में कोई भेद नहीं है। सबसे बड़ी बात यह है कि समय के साथ यदि अवधारणा में कोई विकृति आ भी जाय तो हिन्दू को सुधार करने का अधिकार है। असके विपरीत ईसाई यह मानता है कि ईश्वर के बेटे ईसा मसीह द्वारा बताए गए रास्ते के अलावा कोई दूसरा रास्ता हो ही नहीं सकता। मुसलमानों का मानना है कि पैगम्बर साहब के बताए रास्ते पर जो नहीं चलता वह काफिर है और कुफ्र की सजा बहुत कठिन बताई गई है। ऐसे हालात में सह-अस्तित्व की गुंजाइश कहाँ है ?

दुनिया के हिन्दू आबादी वाले देशों पर विचार करें तो पाते हैं कि गयाना, फीजी और मॉरीशस आदि में हिन्दू आबादी का बहुत बड़ा भाग होते हुए भी हिन्दुओं ने कभी अलगाववादी बात नहीं की। तमम कष्ट सहकर भी अपने लिए अलग देश नहीं मांगा। हिन्दू मानसिकता समन्वयवादी है इसीलिए कहीं भी सहअस्तित्व में कठिनाई नहीं आती। किसी एक भौगोलिक सीमा के अन्दर भी हिन्दू धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो व्यक्ति को पूरी आजादी देता है। चाहे एक ईश्वर में विश्वास करने वाला एकेश्वरवादी अथवा अनेक देवी-देवताओं में विश्वास करने वाला अनेकेश्वरवादी हो, सगुण और साकार ईश्वर में विश्वास करने वाला या फिर निर्गुण और निराकार ब्रह्म का उपासक हो, आस्थावान हिन्दू अथवा नास्तिक हो, सभी के लिए हिन्दुत्व में स्थान है। यही कारण है कि हिन्दुत्व के द्वारा ही पंथनिरपेक्षता की सुरक्षा हो सकती है।

(शेष पृष्ठ ८३ पर)

पश्चिमी जगत में पंथनिरपेक्षता का अर्थ

पंथनिरपेक्षता अथवा सेकुलरिज्म शब्द यूरोपीय जीवन की देन है और चर्च तथा राज्य के पारस्परिक संघर्ष एवं वहाँ पर १५वीं-१६वीं शताब्दी में घटित पुनर्जागरण अथवा चर्च सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप पंथनिरपेक्षता की संकल्पना का विकास हुआ है। **'द न्यू एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, माइक्रोपीडिया'** के खंड ९ (१९७८) में पंथनिरपेक्षता या सेकुलरिज्म का वर्णन एक आन्दोलन के रूप में किया गया है। इस आन्दोलन में व्यक्ति और समाज के पारलौकिक जीवन की उपेक्षा करके उनके लौकिक जीवन को महत्त्व दिया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि पंथनिरपेक्षता मध्य युग की उस प्रवृत्ति के विरुद्ध एक जबर्दस्त प्रतिक्रिया थी जो मानव-जीवन पर अपना ध्यान केन्द्रित करती है। **'समकालीन अंग्रेजी के लांगमैन्स शब्दकोश'** (१९८७) में पंथनिरपेक्षता का अर्थ **''सामाजिक संगठन की एक ऐसी व्यवस्था जो सभी प्रकार के मजहबों को अपने से दूर रखती है''** बताया गया है। इसी तरह पंथनिरपेक्ष या सेकुलर का अर्थ बताते हुए कहा गया है कि इसका आशय **'चर्च से संबंधित या नियंत्रित न होना है।'** फ्रैंक और वैगनाल्ड के **'स्टैण्डर्ड डेस्क शब्दकोश'** में पंथनिरपेक्षता का अर्थ निम्न शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है : **''(क) नैतिकता का निर्धारण मज़हबी व्यवस्थाओं या नियमों से पृथक रखकर किया जाना चाहिए; (ख) सार्वजनिक शिक्षा अथवा नागरिक मामलों में मज़हब की दखलन्दाजी नहीं होनी चाहिए।''** इस परिभाषा से साम्य रखते हुए इसी शब्दकोश में पंथनिरपेक्ष का अर्थ **''(क) इस संसार या मौजूदा जीवन, लौकिक, सांसारिक, आध्यात्मिकता से विलग; (ख) चर्च के नियंत्रण से मुक्त, नगरीय (सिविल); (ग) मज़हब से असम्बद्ध, अधार्मिक; (घ) चर्च के आदेशों से असम्बद्ध''** बताया गया है। **चेम्बर्स ट्वैन्टियथ सेंचुरी डिक्शनरी'** में पंथनिरपेक्ष का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कहा गया है कि **''प्रस्तुत जगत से सम्बद्ध अथवा ऐसी वस्तुओं से सम्बद्ध जो आध्यात्मिक नहीं हैं, नगरीय (सिविल), चर्च से असम्बद्ध, मजहब से सम्बद्ध नहीं, चर्च के नियमों से स्वतंत्र''** होने की स्थिति को पंथनिरपेक्षता कहेंगे। **वेब्सटर के सेविन्थ न्यू कालेजिएट शब्दकोश** में पंथनिरपेक्षता का अर्थ **''मजहब की उपेक्षा अथवा मजहब और मजहबी मान्यताओं का बहिष्कार''** बताया गया है। आक्सफर्ड के **'संक्षिप्त आक्सफर्ड शब्दकोश'** और **'एडवान्स्ड लर्नर डिक्शनरी आफ करेण्ट इंगलिश'** में भी पंथनिरपेक्ष और पंथनिरपेक्षता की ऐसी ही परिभाषाएँ दी गई हैं।

आधिकारिक अर्थ

इन समस्त उक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंथनिरपेक्ष और पंथनिरपेक्षता से आशय उस व्यवस्था से है जिसमें मानव जीवन तथा उससे संबंधित विषयों का समाधान मजहबी मान्यताओं से विलग रहकर किया जाता है। **'इंगलिश सेकुलरिज्म'** के पृष्ठ ६० पर इसी तथ्य को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है :

''प्रश्नों या समस्याओं के वे समाधान जो इस जीवन के अनुभवों के आधार पर सुनिश्चित किए गए हैं।'' इसी भाँति **'प्रिंसिपुल्स ऑफ सेकुलरिज्म'** के पृष्ठ १७ पर कहा गया है कि **''पंथनिरपेक्षता मनुष्य की शारीरिक, भौतिक, नैतिक और बौद्धिक प्रकृति का उच्चतम विकास अपने जीवन का अनिवार्य दायित्व समझकर करती है.... और इस निमित्त वह मानव विकास से संबंधित भौतिक साधनों का चयन करती है और उन सभी व्यक्तियों के समक्ष उन्हें एक मानक के रूप में प्रस्तुत करती है जो अपने जीवन का निर्धारण तर्क और सेवा के आधार पर करते हुए अपना विकास करने को कृतसंकल्प हैं।''** इसी बात को और स्पष्ट करने के प्रयोजन से **'इंगलिश सेकुलरिज्म'** के पृष्ठ ३५ पर यह भी कहा गया है कि **''पंथनिरपेक्षता इस जीवन से संबंधित कर्त्तव्यों की वह संहिता या नियमावली है जो पूर्ण रूप से मानवीय विचारों पर आधारित है और उनके लिए सहायक है जो महजबी मान्यताओं को अनिश्चित या अपर्याप्त, अविश्वसनीय और अयथार्थ मानते हैं।''** **अतः इसके तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं :**

१. **मानव के इस जीवन का भौतिक साधनों द्वारा विकास;**
२. **विज्ञान को मानव के लिए, ईश्वर समान मानना अर्थात् वैज्ञानिक उपलब्धियों पर पूर्ण आस्था; और**
३. **अच्छा काम करने को ही श्रेष्ठ मानना। दूसरे शब्दों में इस अच्छाई से बढ़कर कोई अन्य अच्छाई है या नहीं के पचड़े में न पड़कर वर्तमान जीवन की अच्छाइयों को**

ही श्रेष्ठ मानना और उसे प्राप्त करने का प्रयास करना पंथनिरपेक्षता है।"

होलियॉक और ब्रैडला

फिर भी 'पंथनिरपेक्षता' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग **जार्ज जेकब होलियॉक** ने सन् १८४६ में किया था। उन्नीसवीं शताब्दी में **चार्ल्स ब्रैडला** के साथ मिलकर होलियॉक ने पंथनिरपेक्ष आन्दोलन को आगे बढ़ाया। किन्तु शीघ्र ही दोनों में मतभेद हो गए। फिर भी वे स्वतन्त्र रीति से पंथनिरपेक्षता के आन्दोलन को ब्रिटेन में गति देते रहे। इसका प्रभाव यूरोप सहित अमेरिका पर भी हुआ। सन् १८८० में **चार्ल्स ब्रैडला** को नार्थम्टन निर्वाचन क्षेत्र से ब्रिटेन की कामन्स सभा का सदस्य चुना गया। लेकिन उसने निर्धारित शपथ लेने से इन्कार कर दिया। फलतः उसे कामन्स सभा में प्रवेश नहीं मिला। अगले वर्ष उक्त चुनाव-क्षेत्र के मतदाताओं ने **ब्रैडला** को पुनः कामन्स सभा के लिए चुनकर भेजा। इस बार वह निर्धारित शपथ लेने को भी तैयार हो गए। फिर भी उनके नास्तिक होने के आधार पर उन्हें शपथ न दिलायी जा सकी। बहरहाल, १८८६ में ब्रिटिश संसद की कामन्स सभा के अध्यक्ष (Speaker) पद पर एक नवीन सदस्य का चुनाव होने पर ही उन्हें शपथ दिलायी जा सकी और तब वे कामन्स सभा की गतिविधियों में भाग ले सके। अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व सन् १८९० में ब्रिटेन की नेशनल सेकुलर सोसायटी के अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण करते समय अपने सम्मान मे आयोजित बिदाई समारोह में भाषण देते हुए **चार्ल्स ब्रैडला** ने कहा था **"यूरोप में इस समय खतरे की घंटी रोमन कैथोलिक चर्च की ओर से बज रही है जोकि वहाँ के राजनीतिक जीवन में जबर्दस्त हस्तक्षेप कर रही है.... अतः सावधान हो जाओ क्योंकि इस महाकाय चर्च की शक्ति को कोई भी व्यक्ति नजरन्दाज नहीं कर सकता। उसके मुखिया और सहायकों की क्षमताओं से सभी लोग परिचित हैं और वह लोकतन्त्र को एक शस्त्र के रूप में प्रयोग करता है। अतः ब्रिटेन भी विचार स्वातन्त्र्य, भाषण स्वातन्त्र्य और कार्य स्वातन्त्र्य के खतरों से बचा हुआ नहीं है। इस देश में संघर्ष स्वतन्त्र चिन्तन और इंगलैंड के चर्च अथवा स्वतन्त्र चिन्तन एवं राजतन्त्र के मध्य नहीं होगा। अपितु जैसा कि मैं लम्बे समय से कहता चला आ रहा हूँ और आज पुनः उसे दुहरा रहा हूँ, यह संघर्ष स्वतन्त्र चिन्तन और रोम (रोमन कैथोलिक चर्च का केन्द्र) के मध्य होगा।"**

अमेरिकी पंथनिरपेक्षता का स्वरूप

अमेरिका में **'अमेरिकी सेकुलर यूनियन'** और **फ्री थॉट फेडरेशन** पंथनिरपेक्षता के क्षेत्र में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संगठन हैं। उनके साथ स्थानीय स्तर की अनेक इकाइयाँ अथवा संगठन संबद्ध हैं। इन दोनों संगठनों के अध्यक्ष ई.पी. पीकॉक हैं। इस संगठनों को मूल आधार राज्य को चर्च से अलग रखने का प्रभावी आन्दोलन चलाना है। इस दृष्टि से उनकी नौ मुख्य माँगें निम्नलिखित हैं:

१. गिरजाघर और अन्य मजहबी इकाइयों की सम्पत्ति कराधान से मुक्त नहीं रहेंगी।

२. सार्वजनिक धन से संचालित अमेरिकी कांग्रेस या संसद, राज्यों के विधानमंडलों, सेना और नौ सेना, कारागारों, अनाथालयों और अन्य संस्थानों में पादरियों को कार्यरत नहीं रहने दिया जाएगा और राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों तथा स्थानीय स्वाशासन की इकाइयों द्वारा संचालित मजहबी इकाइयाँ समाप्त कर दी जायेंगी।

३. किसी मजहब-विशेष द्वारा चलाए जाने वाले शैक्षणिक और निःशुल्क सेवा की इकाइयों को सरकारी अनुदान नहीं दिया जाएगा।

४. नैतिकता के उच्चादर्शों और आचरण के श्रेष्ठ नियमों के पालन पर बल देने के बाद भी विद्यालयों में मजहबी शिक्षा, उपदेश और बाइबिल का पाठ नहीं होने दिया जाएगा।

५. अमेरिका के राष्ट्रपति और संघीय राज्यों के राज्यपालों द्वारा मजहबी समारोहों, उपवासों और दिवसीय प्रार्थनाओं के लिए अधिकारियों की नियुक्ति का काम बन्द कर दिया जाएगा।

६. न्यायालयों और सरकार के अन्य विभागों में मजहब के आधार पर ली जाने वाली शपथ समाप्त कर दी जाएगी और उसके स्थान पर मिथ्या साक्ष्य देने से संबंधित दंड-विधान के साथ सामान्य शपथ लेने की व्यवस्था की जाएगी।

७. रविवार अथवा अवकाश के दिनों में मजहबी शिक्षाओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से लागू कराने वाले सभी कानूनों को निरस्त कर दिया जाएगा।

८. ईसाई नैतिकता से संबंधित सभी कानूनों को रद्द कर

दिया जाएगा और सभी कानून स्वाभाविक नैतिकता, समान अधिकार और निष्पक्ष न्याय से संबंधित नियम या कानून लागू किए जायेंगे।

९. संयुक्त राज्य अमेरिका और अनेक संघीय राज्यों के संविधानों के अनुरूप ईसाइयत अथवा किसी अन्य मत-पंथ को किसी भी तरह के विशेषाधिकार या लाभ नहीं दिए जायेंगे। अमेरिका की सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था का प्रशासन और संचालन पूरी तरह से असाम्प्रदायिक या पंथनिरपेक्ष आधार पर किया जाएगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कानूनी व्यवस्था में जो भी परिवर्तन अपेक्षित हैं, उन्हीं पूरी तरह ईमानदारी के साथ तुरन्त लागू किया जाएगा।

नास्तिकता पर बल

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पंथनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग आधुनिक काल में शुरू हुआ है, उसके विभिन्न सिद्धान्तों और मान्यताओं का समर्थन सभी काल खंडों के स्वतन्त्र चिन्तन के समर्थक विद्वानों द्वारा किया गया है। **'इंगलिश सेकुलरिज्म'** नामक पुस्तक के अनुसार **''पंथनिरपेक्षता शब्द स्वतन्त्र चिन्तन को नैतिकता के क्षेत्र में लागू करने से संबद्ध है।''** ईश्वरीय सत्ता की मौजूदगी के संबंध में **चार्ल्स ब्रैडला** पूरी तरह नास्तिक थे। जबकि **होलियॉक** अज्ञेयवादी थे। होलियॉक के मतानुसार पंथनिरपेक्षता सामान्यतः प्रकृति के अध्ययन पर आधारित है और उसका मत-पंथ से कोई संबंध नहीं है। जबकि ब्रैडला के अनुसार पंथनिरपेक्षता मत-पंथ खंडन करती है। सन् १८७० में एक सार्वजनिक गोष्ठी में इन दोनों पंथनिरपेक्षतावादियों ने इस विषय पर सक्रिय रूप से भाग लिया था। उसमें ब्रैडला ने कहा था कि **यद्यपि मौजूदा समय में यह पूरी तरह सच है कि सभी पंथनिरपेक्षतावादी व्यक्ति नास्तिक नहीं हैं फिर भी मेरा यह सुनिश्चित मत है कि यदि किसी व्यक्ति में सोचने-समझने की कुछ भी शक्ति है तो पंथनिरपेक्षता पर आस्था रखने वाला व्यक्ति अंसदिग्ध रूप से नास्तिक होगा।''** इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पश्चिमी जगत में विकसित पंथनिरपेक्षता का सिद्धान्त असंदिग्ध रूप से नास्तिक ही होगा। □

सांस्कृतिक विरासत। हमारा सबसे अनमोल खज़ाना।

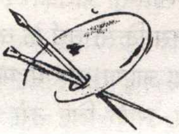

इंडियलऑयल ने इसे भली-भाँति समझा है। तभी हर साल और साल के हर दिन हम ललित कला, नृत्य और संगीत में अपनी महान विरासत को पुनः जागृत कर उसकी पहचान बनाए रखने में तत्पर हैं।

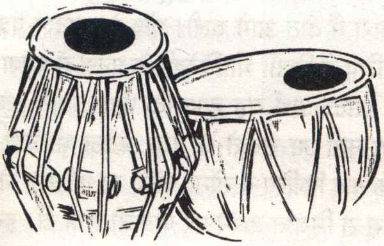

समय की सीमाओं को पार करती कला प्रदर्शनियाँ हों या नए सुर-ताल में ढले शताब्दियों पुराने रागों की झंकार। इंडियनऑयल हर उस प्रयास से जुड़ा है जो रोजमर्रा की जिन्दगी के सांस्कृतिक ताने-बाने को और पुष्ट करके संजोए रखता है। यही धरोहर भावी पीढ़ियों के लिए हमारा अमूल्य उपहार होगी।

इंडियनऑयल

इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड

दृष्टि भविष्य की ओर

यूरोप में पंथनिरपेक्षता के उदय की कहानी

सेक्युलरवाद की आधुनिक धारणा का स्रोत मूलतः मध्य युग में यूरोप की स्थिति में है जब रोमन कैथलिक चर्च का प्राधान्य था। रोमन कैथलिक चर्च के धर्माध्यक्ष पोप के पास न केवल धार्मिक सत्ता थी प्रत्युत लौकिक सत्ता भी थी, राज्य भी था। जो कुछ विरासत में मिला था उसमें छोटी-मोटी स्वतंत्र या अर्द्धस्वतंत्र जागीरें पोप ने भी उसी प्रकार मिला लीं जिस प्रकार अन्य राज्यों के शासकों ने मिलाईं। पोप भी अन्य राज्याध्यक्षों की भाँति व्यवहार करते थे। उस समय चर्च नियंत्रण की एक अत्यन्त संगठित व्यवस्था थी। निरन्तरता तथा परम्परा के आधार पर चर्च का मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक प्रभाव राज्यों तथा साम्राज्य की सीमाएँ पार कर सारे यूरोप में फैल गया था। सम्राट से लेकर दास तक से चर्च अपने प्रति निष्ठा का दावा करता था। साथ में समुचित दंड की धमकी भी रहती थी। वास्तव में आज भी पोप की राजनीतिक सत्ता है। वैटिकन सिटी उनका स्वतंत्र राज्य है। भारत में भी उनका राजदूत नई दिल्ली में रहता है।

शक्ति की पराकाष्ठा

एक संगठित बल के रूप में ईसाई चर्च पश्चिम में अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर **पोप इन्नोसेंट तृतीय** (११९८-१२१६) के कार्यकाल में पहुँचा। पोप ने सरलता से इंगलैण्ड एवं फ्रांस के राजाओं को अनुशासित किया, पवित्र रोमन साम्राज्य के तीन सम्राटों को नियुक्त किया या पदच्युत किया तथा इटली का अधिकांश भाग अपनी व्यक्तिगत देखरेख में ले लिया। उन्होंने बहुत से निर्णय लिये जो कि चर्च के कानून में ज्यों के त्यों ले लिए गए। इसके फलस्वरूप समस्त मानव जीवन चर्च के घेरे में आ गया।

संघर्ष की शुरुआत

बौनीफेस-अष्टम, जो १२८१ में पोप बने, के कार्यकाल में सबसे अधिक कटुता फ्रांस के फिलिप से झगड़े में आई। अंततः पोप के ग्रीष्मकालीन प्रासाद पर फिलिप के भेजे लोगों ने धावा बोला और यद्यपि वे पोप को बंदी बना सकते थे या और कुछ चोट पहुँचा सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और भाग गये। पोप को अपनी इस बेइज्जती से ऐसा धक्का लगा कि एक महीने बाद उनका रोम में देहान्त हो गया।

पोप तथा फ्रांस के राजा फिलिप का परस्पर संघर्ष चर्च और राज्य के संघर्ष का एक विशिष्ट उदाहरण है। मूलतः प्रश्न यह था कि शासन कौन चलायेगा ? देश की राजनीतिक सत्ता राजा या कोई भी, अथवा धार्मिक सत्ता जिसका अध्यक्ष पोप था। फ्रांस और पोप के झगड़े का कुछ अध्ययन करने से इस संघर्ष के मूल स्वरूप का पता चलता है।

फ्रांस के फिलिप तथा इंगलैण्ड के एडवर्ड प्रथम में युद्ध चल रहा था। युद्ध के व्यय के लिए फिलिप को धन की आवश्यकता थी। उसने फ्रांस के पादरी वर्ग से उनकी सालाना आमदनी के दसवें हिस्से की माँग की। पादरी वर्ग ने तुरन्त पोप से शिकायत की तथा पोप ने एक आदेश-पत्र (बुल) जारी किया जिसमें यह घोषित किया गया कि राज्य असंदिग्ध रूप से परम धर्मपीठ के अधीन है तथा किसी इहलौकिक शक्ति या राजा के अधिकार क्षेत्र में चर्च के लोग और उसकी सम्पत्ति नहीं आते।

यह आदेश-पत्र एडवर्ड तथा फिलिप दोनों पर लागू होता था। पर एडवर्ड ने इंगलैण्ड के पादरी वर्ग को अपनी सालाना आमदनी का पाँचवाँ हिस्सा देने पर मजबूर किया। यह धमकी दी गई कि जिन्होंने इस नियम को नहीं माना उनकी सारी ज़मीन-जागीर जिस पर एडवर्ड का सामन्ती अधिकार निर्विवाद था, जब्त कर ली जायेगी तथा जिस किसी चर्च के व्यक्ति ने विरोध किया उसको बन्दी बना लिया जाएगा। यह भी महत्वपूर्ण है कि एडवर्ड ने जो कुछ किया उसके लिए उसे देश के जनसाधारण अथवा अयाजक वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था।

परन्तु फ्रांस में बात आगे चली। पोप के आदेश-पत्र के उत्तरस्वरूप फिलिप ने किसी भी विदेशी के फ्रांस में प्रवेश पर रोक लगा दी। इसका अर्थ यह हुआ कि पोप के दूत अथवा अधिकारी फ्रांस नहीं आ सकते थे तथा अंग्रेज भी नहीं आ सकते थे। इसके बाद फिलिप ने सोना, चाँदी या फौज के किसी सामान को फ्रांस से निर्यात करने पर पाबन्दी लगा दी। इससे पोप को इन वस्तुओं की सप्लाई पर रोक लग गई, और ऐसे स्रोत से आने वाली सप्लाई जो एक महत्वपूर्ण स्रोत था।

पोप ने समाधानात्मक रुख अपनाया। परन्तु फिलिप ने कुछ महीनों के अन्दर एक गुमनाम पत्रिका में अपनी स्थिति स्पष्ट की। इस पुस्तिका में स्पष्ट रूप से इस सिद्धान्त को

प्रस्तुत किया गया कि इहलौकिक राजा का शासन पुरोहित वर्ग के इस दावे के पहले का है कि जनसाधारण अथवा अयाजक वर्ग पर पुरोहिती नियंत्रण होना चाहिए। इसके विपरीत पुस्तिका के अनुसार, पुरोहित वर्ग, जनसाधारण की भाँति, राज्य का एक हिस्सा है और जो कोई भी राज्य की सहायता करने से इनकार करता है, वह व्यर्थ है।

आदेश-पत्र

लगभग एक वर्ष तक शान्ति रही। पर कुछ दिन बाद संघर्ष फिर चल पड़ा। पोप ने एक आदेश जारी किया, जिसमें फिलिप को चेतावनी दी गई कि "मेरे प्रिय पुत्र किसी के समझाने से यह न समझ लेना कि इस पृथ्वी पर कोई हमसे वरिष्ठ नहीं है, और तुम चर्च संबंधी तंत्र के सर्वोच्च प्रधान के अधीन नहीं हो।" यह आदेश-पत्र फिलिप को पढ़कर सुनाया गया। उसके समर्थक इस पर बहुत क्रोधित हुए कि उनके राजा जो स्वयं चाहें वह करने को स्वतंत्र नहीं हैं।

फिलिप ने फ्रांस के पुरोहित वर्ग, सामंत वर्ग और मध्य वर्ग के प्रतिनिधि, इन तीनों की एक बैठक बुलाई और इस प्रकार एक मंच का प्रबन्ध कर दिया जिस पर से फिलिप के एक सलाहकार ने फ्रांस की राष्ट्रीय भावना को एक वाग्मितापूर्ण अपील की। पोप के आदेश-पत्र के उत्तर में कहा गया था कि हम इहलौकिक मामलों में किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करते। इस पर जोर दिया गया कि क्या कुछ हमारा है, क्योंकि वह हमारे मुकुटधारी राजा के अधिकार में आता है। पोप बोनीफेस के लिए अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया गया, जैसे, "जो अपने आप को पोप कहता है" और "उसको कोई अभिवादन नहीं" महत्वपूर्ण बात यह है कि तीनों वर्ग जिनकी बैठक का उल्लेख हो चुका है, राजा के साथ थे। फ्रांसीसी राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो गई थी या कर दी गई थी।

पोप ने रोम में धर्मसभा के सामने एक आदेश-पत्र प्रस्तुत किया जिसमें सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित रूप में कहा गया था कि हमारा मानना है कि केवल एक पवित्र एवं प्रेरक कैथलिक चर्च है जिसके बाहर मुक्ति नहीं है और न पाप की माफी है। आगे कहा गया है कि चर्च के पास दो तलवारें हैं, एक आध्यात्मिक जो पुरोहित के हाथ में है, और दूसरी इहलौकिक अथवा भौतिक जो राजाओं और सैनिकों के हाथ में होती है। परन्तु इस दूसरी तलवार का उपयोग पुरोहित की सहमति से करना चाहिए। हम यह घोषित करते हैं कि मुक्ति के हेतु यह सर्वथा आवश्यक है कि प्रत्येक मानव रोम के धर्माध्यक्ष के अधीन रहे।

जवाबी कार्रवाई

फ्रांस के राजा को जब इस घोषणा का पता चला तो उसने देश भर में वक्ता भेजे जिन्होंने लम्पट एवं अपव्ययी पोप की अधीनता से फ्रांस के लोगों के स्वतंत्र होने का पक्ष प्रस्तुत किया। बड़ी चतुराई से फ्रांसीसी लोगों की राष्ट्रीय भावना की अपील की गई और लोगों की एक समान प्रतिक्रिया राजा के अनुकूल थी। राजा के मित्रों को पता था कि पोप फिलिप को धर्म से बहिष्कृत कर देगा। बहिष्करण का आदेश पत्र ८ सितम्बर को प्रकाशित होने वाला था। ७ तारीख को पोप के ग्रीष्म प्रासाद पर आक्रमण कर उसे व्यर्थ कर दिया गया। इस आक्रमण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

यूरोप में सेकुलरवाद के इस विकास में सोलहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में घटित एक घटना ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया। सन् १४८५ से पहले वहाँ पर राज्यसत्ता पर अधिकार जमाने के लिए दो राज परिवारों में सशस्त्र संघर्ष चल रहा था। 'गुलाबों के युद्ध' अथवा 'वार आफ रोज़ेज़' के नाम से प्रसिद्ध

यह संघर्ष उनके मध्य सन् १४५५ से १४८५ तक चलता रहा था। अतः उससे मुक्ति पाने के उद्देश्य से सम्राट हेनरी सप्तम ने अपने सबसे बड़े पुत्र आर्थर का विवाह दूसरे राजवंश की राजकुमारी से कर दिया। लेकिन इस विवाह के कुछ वर्षों बाद ही युवराज आर्थर की मृत्यु हो गई। इससे सम्राट् हेनरी सप्तम को यह डर सताने लगा कि भविष्य में कहीं फिर दोनों राज़-परिवारों में युद्ध की नौबत न आ जाय। इस संभावित संकट से मुक्ति पाने के लिए सम्राट हेनरी सप्तम ने विधवा बहू का विवाह अपने दूसरे बेटे से करा दिया जो आगे चलकर इंग्लैण्ड का शासक बनने पर हेनरी अष्टम के नाम से जाना गया।

हेनरी अष्टम कैथरीन नामक अपनी भाभी से शादी नहीं करना चाहता था। वह उससे आयु में भी बड़ी थी। किन्तु वह अपने पिता की आज्ञा का विरोध न कर सका। फलस्वरूप पिता की मृत्यु के बाद राजसत्ता संभालने पर उसने पत्नी कैथरीन को तलाक देना तय किया। इसके लिए उसे पोप से अनुमति माँगनी पड़ी क्योंकि उस समय तक ईसाई जगत के सभी निवासियों के इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का नियन्त्रण पोप की अगुवाई में चर्च करता था। परन्तु पोप ने हेनरी अष्टम को तलाक देने की अनुमति नहीं दी। इससे उसकी परेशानी बढ़ गई।

वूल्जे की उक्ति

इसी दौरान हेनरी अष्टम के एक परामर्शदाता और हाउस आफ लार्ड्स का सदस्य **कार्डीनल वूल्जे** उसकी सहायता को आगे आया और उसने बाइबिल से उद्धरण देते हुए उसे बताया कि "बाइबिल में निर्देश दिया गया है कि **जो भाग ईश्वर का है, वह ईश्वर को दो और जो सीज़र अर्थात् राजा का है वह सीज़र अथवा राजा को दो**" (What is unto God is unto God and what is unto Ceaser unto Ceaser)। इसका आशय यह है कि पारलौकिक मामलों में चर्च सर्वोच्च है और इहलौकिक मामलों में राजा। चूँकि तलाक और विवाह जैसे विषय लौकिक जगत से संबंधित हैं अतः उस पर चर्च प्रमुख पोप से अनुज्ञा लेने की काई आवश्यकता नहीं है और आप स्वयं राजा अथवा सम्राट् हैं, अतः इस विषय में आपका निर्णय एवं आदेश ही अन्तिम है।

रोमन चर्च से विच्छेद

कार्डीनल वूल्जे ने इस प्रकार सम्राट् हेनरी अष्टम को यह समझाया कि वह अपनी रानी कैथरीन को तलाक देकर अपनी इच्छानुसार किसी भी स्त्री से विवाह कर सकता है।

इस पर पोप ने इंग्लैण्ड के राजा हेनरी अष्टम के अपनी पत्नी कैथरीन को तलाक देने संबंधी निर्णय को असंवैधानिक घोषित कर उसे निषिद्ध कर दिया। किन्तु उसके इस फतवे का हेनरी अष्टम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उलटे उसने रोमन कैथोलिक चर्च और उसके मुखिया पोप से संबंध विच्छेद करते हुए प्रोटेस्टेंट मत को अपना लिया। इंग्लैण्ड की संसद ने भी अपने राजा हेनरी अष्टम के इस निर्णय पर अपनी मुहर लगा दी जबकि तत्कालीन हाउस आफ लार्ड्स में उस समय पादरी जगत के सदस्यों की संख्या ही ६० नहीं थी अपितु वे उक्त सदन में बहुमत में भी थे। इस घटना के संबंध में यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि १५२९ ईसवी में घटी इस घटना के समय इंग्लैण्ड की संसद के दोनों सदनों– कामन्स सभा और लार्ड सभा– में लार्ड सभा ही अधिक शक्तिशाली थी। इन पादरियों की लार्ड सभा में नियुक्ति भी राजा द्वारा की जाती थी, चर्च के मुखिया पोप द्वारा नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चर्च और राज्य के संघर्ष में राष्ट्रीयता की भावना ने काम किया। इसका संबंध राष्ट्रीय राज्यों (नेशन स्टेट) के उदय से है, जो इस समय के यूरोप की एक महत्वपूर्ण घटना है। फिलिप तथा हेनरी अष्टम और पोप के संघर्ष के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि फिलिप पोप को इसलिए हरा सका कि फ्रांसीसी लोगों का समर्थन उसको प्राप्त था। यही बात इंग्लैण्ड के एडवर्ड और हेनरी अष्टम के पोप तथा चर्च के लोगों के विरुद्ध जाने या उनकी उपेक्षा करने में सफल होने के विषय में भी कही जा सकता है। अतः राष्ट्रीय राज्यों का उदय एक सेक्युलरवादी परिवर्धन था।

पोप का दृष्टिकोण यह था कि समस्त ईसाई देशों पर उसका नियंत्रण है क्योंकि ईसाई धर्म को मानने वालों के लिए उसकी सर्वोच्च सत्ता है। राष्ट्रीय राज्यों का अधिकार क्षेत्र राज्य की सीमा तक सीमित था क्योंकि राज्य का अध्यक्ष राजा या कोई और राजनीतिक सत्ता होती थी। पोप का अधिकार क्षेत्र देशों की सीमाओं से परे तक माना जाता था क्योंकि उसकी सत्ता का स्वरूप धार्मिक था। राज्य के अध्यक्ष का अधिकार क्षेत्र देश की समस्त जनता अथवा नागरिकों तक माना जाता पर क्योंकि उसकी सत्ता इहलौकिक थी तथा देश के सब नागरिक चाहे उनका धर्म कोई हो, उस क्षेत्र में आते थे। इस प्रकार पोप अथवा चर्च का स्वरूप धार्मिक था तथा राज्य का स्वरूप "सेक्युलर" अथवा "धर्मेतर" था। □

'पंथनिरपेक्षता' का सही अर्थ

आज स्वतंत्रता के पाँच दशक से भी अधिक समय बीत जाने के बाद भी 'सेक्युलर' शब्द के वास्तविक अर्थ पर मतैक्य नहीं है। जिसे एक राजनीतिक दल 'सेक्युलर' कहता है उसे दूसरा राजनीतिक दल **'नकली सेक्युलरवाद'** की संज्ञा देता है। जिसे एक दल 'सकारात्मक सेक्युलरवाद' कहता है तो उसे दूसरा दल **'साम्प्रदायिकता'** मानता है। संसद में जो दल अपने आपको **'सेक्युलर'** कहते हैं, उनमें तथा ऐसे दलों में, जिसको वे 'सेक्युलर' नहीं मानते हैं, आए दिन नोक-झोंक होती रहती है। पिछले चुनाव अभियान में 'सेक्युलर' तथा 'सेक्युलरवाद' का व्यापक रूप से प्रयोग किया गया। समाचार-पत्रों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। अतएव यह आवश्यक है कि 'सेक्युलरवाद' के विषय में हमारे विचार सुस्पष्ट हों। इसके लिए सेक्युलरवाद की पश्चिमी परिकल्पना और उसकी पृष्ठभूमि को पहले समझना उपयुक्त होगा।

सेक्युलरवाद के संबंध में पश्चिमी और भारतीय अवधारणाओं की चर्चा से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि यूरोपीय सेक्युलरवाद धर्म से भिन्न एवं इहलौकिक है, जबकि आम भारतीय इस जीवन से परे जीवन की बात स्वाभाविक ढंग से करता है।

हमारी बहुत प्राचीन धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्परा है। इस परम्परा का भारतीय मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यद्यपि यह सत्य है कि भारतीय दर्शन के इतिहास में जड़वाद तथा निरीश्वरवाद जैसे सम्प्रदायों की भी भूमिका रही है।

एंक सद् विप्राः बहुधा वदन्ति

महात्मा गांधी ने धर्म के प्रति सही दृष्टिकोण को "सर्वधर्म समभाव" कहा, अर्थात् सब धर्मों को बराबर आदर देना। "सर्वधर्म समभाव" का सिद्धान्त यूरोपीय धर्मेतर सेक्युलरवाद के सिद्धान्त से भिन्न है। वास्तव में गांधी जी का "सर्वधर्म समभाव" का सिद्धान्त सुप्रसिद्ध वैदिक उक्ति "एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" की परम्परा को जारी रखता है। "सर्वधर्म समभाव" को हम सेक्युलरवाद की भारतीय परिकल्पना कह सकते हैं। "सर्वधर्म समभाव" प्राचीन भारत की परम्परा में निहित उदारता एवं सहिष्णुता का द्योतक है। गांधी जी ने "सर्वधर्म समभाव" को बहुत महत्त्व दिया और उसे अपने व्रतों में सम्मिलित किया। हमारे स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव भी इसी दिशा में हुआ। हमारा उद्देश्य औपनिवेशिक शासन से छुटकारा तथा लोकतंत्र की स्थापना था। लोकतंत्र मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति एक वोट है। इस प्रकार राज्य की सरकार बनाने में प्रत्येक नागरिक का योगदान समान है। वह किसी भी धर्म को मानने वाला हो।

भ्रम का कारण

"सर्वधर्म समभाव" किसी धर्म के विरुद्ध नहीं है। यह सब धर्मों को बराबर आदर देने के पक्ष में है। अतएव कहा जा सकता है कि सेक्युलरवाद की भारतीय परिकल्पना अधिक सकारात्मक है। विशेषकर भारत के लिए यह अधिक उपयुक्त है क्योंकि यहाँ इस्लाम और ईसाई धर्म के आगमन के पहले से अनेक धर्मों को मानने वाले रहते आए हैं। "सेक्युलर" का अनुवाद "धर्मनिरपेक्ष" किये जाने के कारण भ्रम पैदा हुआ। एक तो धर्मनिरपेक्ष के अर्थ में कुछ निषेधात्मक तत्त्व प्रतीत हुआ है। दूसरे धर्मनिरपेक्ष होना धर्म के प्रति उदासीन होना माना गया। भारतीय समाज मूलतः धार्मिक आस्था पर आधारित एक समाज है।

नेहरू जी का कथन

संविधान के निर्माण के एक दशक के बाद नेहरूजी को यह बात कुछ खटकी। उन्होंने १९६१ में रघुनाथ सिंह, एम.पी. की पुस्तक **"धर्मनिरपेक्ष राज्य"** की प्रस्तावना में लिखा कि **"शायद 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द अंग्रेजी के 'सेक्युलर' शब्द का भाव ठीक तरह से व्यक्त नहीं करता। कुछ लोग यह समझते हैं कि यह धर्म के खिलाफ कोई बात है। जाहिर है कि ऐसा समझना गलत है। इसका मतलब यह है कि यह एक ऐसा राज्य है जो सब धर्मों और मजहबों का एक सा आदर करता है।"** इस प्रकार नेहरू जी ने भी "सर्वधर्म समभाव" का समर्थन किया। नेहरूजी की शिक्षा-दीक्षा तथा पालन-पोषण की पृष्ठभूमि आधुनिक अथवा पाश्चात्य थी। भारत के लिए उनका आदर्श एक ऐसा समाज था, जो अपनी सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का समाधान करने हेतु विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का पूरी तरह प्रयोग करे।

परन्तु अपनी आधुनिकता के बावजूद वह अपने प्राचीन से

संबंध विच्छेद नहीं करना चाहते थे। अपनी वसीयत (विल एंड टेस्टामेंट) में उन्होंने कहा कि "**मुझे उस महान विरासत पर गर्व है जो हमारी रही है और है, तथा मुझे बोध है कि हम सब की भाँति मैं भी उस अखण्डित शृंखला की एक कड़ी हूँ जो भारत के स्मरणातीत भूतकाल में इतिहास के आरम्भ तक जाती है। वह शृंखला मैं तोड़ूँगा नहीं क्योंकि मैं इसे बहुमूल्य समझता हूँ और इससे प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न करता हूँ।**"

दुर्भाग्य होगा यदि....

१९५९ में बर्नार्ड हालीवुड को लिखे एक पत्र में नेहरूजी ने कहा "**भौतिक कल्याण, शिक्षा का विकास, स्वास्थ्य, उद्योग इत्यादि प्रगति के आवश्यक आधार हैं किन्तु मैं उत्सुकता से यह आशा करता हूँ कि यह सब किन्हीं नैतिक मूल्यों तथा, यदि मैं कुछ स्पष्ट भाषा में कहूँ, जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण को बलिदान करके नहीं होगा। मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि भारत एक ऊँचे नैतिक या आध्यात्मिक स्तर पर काम करता है, परन्तु भारत ने निश्चित रूप से इन मूल्यों के विषय में सैकड़ों-हजारों वर्ष बहुत कुछ चिन्तन किया है तथा कम से कम सिद्धान्त के रूप में उनका अनुमोदन किया है। यह एक दुर्भाग्य होगा यदि भौतिक कल्याण का अनुसरण करने में भारत इन मूल्यों को भूल जाए।**"

इस प्रकार हम देखते हैं कि जवाहरलाल नेहरू पर भी भारत की प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा की पकड़ के लक्षण मिलते हैं।

विस्तार पर गर्व

१९४८ में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण देते हुए नेहरूजी ने कहा था– "**मुझे भारत पर गर्व है, केवल उसकी प्राचीन शानदार विरासत के कारण नहीं, परन्तु इस कारण भी कि उसमें इस विरासत में कुछ और जोड़ने के हेतु अपने मन तथा अन्तरात्मा के दरवाजे और खिड़कियों को खुला रखने की असाधारण क्षमता है, जिससे दूर के देशों से ताजी तथा शक्ति प्रदान करने वाली हवाएँ आती रहें।**"

आगे चलकर उन्होंने कहा– "**मैंने कहा कि मुझे अपनी विरासत पर गर्व है तथा अपने पूर्वजों पर भी, जिन्होंने भारत को बौद्धिक एवं सांस्कृतिक प्रमुखता प्रदान की।**" सुनने वालों से उन्होंने प्रश्न किया : "**आप इस अतीत के विषय में क्या महसूस करते हैं। क्या आप अनुभव करते हैं कि आप भी इसमें भागीदार हैं तथा यह उतना ही आपका है जितना मेरा, या कि आप इससे अपने-आपको को पराया समझते हैं और इसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं, इसको समझे बिना या बिना उस पुलक का अनुभव किये जो इस बोध से आता है कि हम एक बड़े खजाने के उत्तराधिकारी एवं न्यासी हैं।**"

उन्होंने आगे कहा : "**आप मुसलमान हैं और मैं हिन्दू हूँ। हम भिन्न मजहबी आस्थाओं का अनुसरण कर सकते हैं या किसी भी मत-पंथ का अनुसरण न करें, पर इससे हमारी सांस्कृतिक विरासत वही रहेगी, उतनी ही आपकी जितनी मेरी है।**"

□

प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता प्रो. कल्याणदत्त की पुस्तक 'आमार कम्युनिस्ट जीवन' (बंगला), पर्ल पब्लिकेशन्स, पृ. १० प्रथम आवृत्ति, कलकत्ता, १९९९ :

पाकिस्तान की माँग के लिए १९४६ की १६ अगस्त को मुस्लिम लीग द्वारा सीधी कार्रवाई (Direct Action) जिसे The Great Calcutta Killings कहा है के समय बिदरपुर डाकयार्ड के मुस्लिम मजदूरों (जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों ही सदस्य थे) ने हिन्दू मजदूरों पर हमला किया। आश्चर्यचकित हिन्दुओं ने वामपंथी ट्रेड-यूनियन की सदस्यता का कार्ड दिखाकर प्राण रक्षा की भीख माँगी और कहा : "अरे कामरेडों ! तुम हमारी हत्या क्यों कर रहे हो ? हम सभी एक ही यूनियन में हैं।" किन्तु इन मुजाहिदों को 'दारुल इस्लाम' मजदूरों के राज्य से अधिक प्रिय था। सभी हिन्दुओं की हत्या कर दी गई।

संविधान सभा में पंथनिरपेक्षता पर चर्चा

संविधान सभा में पंथ अथवा रिलीजन और आध्यात्मिकता का विस्तार से उल्लेख करने का श्रेय नेताजी सुभाषचन्द्र बसु के अनन्य सहयोगी और समाजवादी विद्वान प्रो. हरि विष्णु कामथ को है। यों तो कुछ अन्य सदस्यों ने भी राज्य के सेक्युलर स्वरूप पर टिप्पणियाँ की, किन्तु प्रो. कामथ ने इस संबंध में जो कुछ कहा उसका विशेष उल्लेख आवश्यक है।

सेक्युलर राज्य को किसी विशेष पंथ को प्रश्रय नहीं देना चाहिए यह कहते हुए श्री कामथ ने एक संशोधन द्वारा यह मांग की कि राज्य को अपने नागरिकों को, इस आधार पर कि वह सेक्युलर है, आध्यात्मिक शिक्षण या प्रशिक्षण देने से वंचित नहीं रखना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि सेक्युलर राज्य का अर्थ यह नहीं है कि वह ईश्वरविहीन या अधार्मिक या धर्मविरोधी राज्य हो। उन्होंने का कि रिलीजन का सही अर्थ चेतना से संबंधित है।

धर्म चक्र प्रवर्तनाय

श्री कामथ ने रिलीजन और धर्म में भेद करते हुए कहा था कि धर्म व्यापक अर्थ में आत्मा के वास्तविक मूल्यों को समाविष्ट करता है। संविधान सभा की मोहर के ऊपर अंकित **'धर्म-चक्र प्रवर्तनाय'** शब्दों की ओर इंगित करते हुए प्रो. कामथ ने कहा कि इसमें जो भावना निहित है, वह प्रत्येक नागरिक में उत्पन्न की जानी चाहिए। उन्होंने संसद भवन के एक स्तूप पर अंकित एक संस्कृत श्लोक को भी उद्धृत किया जो इस प्रकार है :

ना सा सभा यत्र न संति वृद्धा,
वृद्धां न ते ये न वदन्ति धर्मम्।

अर्थात् वह सभा नहीं है जिसमें वृद्ध नहीं हैं, वह वृद्ध नहीं है, जो धर्म का उच्चारण नहीं करते।

श्री कामथ ने आगे कहा कि वह धर्म ही हमारा रिलीजन होना चाहिए, धर्म जिसके बारे में कवि ने कहा है कि :

यः येनैदं धार्यते जगत् ।

अर्थात् वह जिससे जगत का धारण होता है।

श्री कामथ ने अपने भाषण में महायोगी श्री अरविंद को भी उद्धृत किया और कहा :

जिस प्रधान धारणा ने भारत के लोगों के जीवन, संस्कृति एवं सामाजिक आदर्शों को संचालित किया है, वह है मुनष्य द्वारा उसके वास्वविक आध्यात्मिक स्वरूप की खोज और उस खोज के हेतु जीवन का एक साधन एवं ढाँचे के रूप में उपयोग जिससे मनुष्य अज्ञानपूर्ण प्राकृतिक स्थिति से आध्यात्मिक सत्ता तक उठ सके"।

"The master idea that has governed the life, the culture, social ideals of the Indian people has been the seeking of man for his true spiritual self and the use of life as a frame and means for discovery and for man's ascent from the ignorant natural into the spiritual existence".

संविधान सभा में राज्य के "सेक्युलर" स्वरूप के संबंध में कुछ और सदस्यों ने अपने विचार प्रकट किए। इनमें **प्रो. के.टी. शाह, श्री लोकनाथ मिश्र, श्री तजम्मुल हुसैन** के नाम उल्लेखनीय हैं।

के.टी. शाह के संशोधन

के.टी. शाह ने संविधान में "सेक्युलर" शब्द का समावेश कराने के दो प्रयत्न किये और दोनों ही विफल हुए। १५ नवम्बर, १९४८ को उन्होंने अनुच्छेद (१) की धारा (१) में "सेक्युलर, फेडरल, सोशलिस्ट" शब्द जोड़ने का संशोधन रखा। उस संशोधन के अनुसार "भारत एक सेक्युलर, फेडरल तथा समाजवादी राज्यों का यूनियन" होगा। उनके इस संशोधन के विरोध में डॉ. अम्बेडकर ने जो दो आधार दिये उनका संबंध समाजवाद से था, सेक्युलर से नहीं। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि संविधान को उस सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे को सुनिश्चित नहीं करना चाहिए जो विधिवत निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निर्धारित किया जाना है। यह सम्भव है कि भविष्य में समाजवादी ढांचे से भी अधिक श्रेष्ठ कोई सामाजिक व्यवस्था सोची जा सके। अतः उसे स्वीकार करने के लिए जन प्रतिनिधि उस समय स्वतंत्र होने चाहिएं और उन्हें हमेशा के लिए संविधान में निश्चित व्यवस्था से नहीं बाँधा जाना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर का दूसरा तर्क यह था कि संशोधन अनावश्यक है क्योंकि समाजवाद के सभी लक्ष्य संविधान प्रारूप के अनुच्छेद ३१ में आ चुके है। उस अनुच्छेद का संबंध राज्य द्वारा सम्पत्ति के

अधिग्रहण के अधिकार से था।

यह आश्चर्य का विषय है कि प्रो. शाह ने अपने इस संशोधन को संविधान सभा में विचारार्थ क्यों प्रस्तुत नहीं किया ? इससे भी बड़े आश्चर्य की बात यह है कि उन्होंने डॉ. अम्बेडकर से "सेक्युलर" शब्द को स्वीकार न करने के कारण देने के लिए अनुरोध नहीं किया।

के.टी. शाह ने एक अन्य संशोधन पेश करके यह मांग की थी कि चूँकि भारत में राज्य सेक्युलर है, अतः उसका किसी पंथ, सम्प्रदाय या विश्वास के पालन से कोई संबंध नहीं होगा और वह रिलीजन से सम्बन्धित सभी मामलों में पूरी तरह तटस्थता का व्यवहार करेगा। राज्य एक लौकिक संस्था है और उसका सम्बन्ध मत, मजहब या सम्प्रदाय सम्बन्धी मामलों से नहीं होना चाहिए। श्री शाह के संशोधन पर अन्य किसी सदस्य ने भाषण नहीं किया। संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

के.टी. शाह ने एक और संशोधन द्वारा यह मांग की थी कि पंथ का प्रचार करने की छूट किसी स्कूल या कालेज या अन्य शिक्षण संस्थान अथवा अस्पताल या अनाथालय को नहीं होनी चाहिए और न ऐसी संस्थाओं को होनी चाहिए जहाँ कच्ची उम्र या अपरिपक्व मस्तिष्क के लोगों को उनके अध्यापकों, नर्सों, डाक्टरों या उनकी देख-रेख करने वालों द्वारा प्रभावित किया जा सके। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह बंधन उन्हीं संस्थाओं पर लागू होगा जो सरकारी खर्च से चलते हों या जिन्हें खजाने से सहायता मिलती हो। उनका यह संशोधन भी पारित नहीं हुआ।

एक राष्ट्र, एकजन

एक अन्य सदस्य **श्री तजम्मुल हुसैन** ने तो यह मांग की कि मूलभूत अधिकार में जहाँ व्यक्ति को अंतःकरण की स्वतंत्रता और पंथ के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक दिया गया है वहाँ आचरण करने और प्रचार करने की जगह यह जोड़ दिया जाए कि पंथ पर आचरण **"निजी तौर पर"** होगा। उन्होंने कहा कि इस देश में लोगों को पंथ का प्रचार करने की छूट देना उचित नहीं होगा। उनका मत था कि रिलीजन एक निजी मामला है, जो व्यक्ति और उसके निर्माता के बीच में है, उसका दूसरों से कोई संबंध नहीं है। यदि पंथ या मजहब का प्रचार करने की छूट दी गई तो मुसीबत खड़ी होगी। यह मुसीबत खड़ी हो चुकी है। तजम्मुल हुसैन का कहना था कि भारत एक सेक्युलर राज्य है और उसका मजहब से कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए। तजम्मुल हुसैन ने एक संशोधन द्वारा यह भी मांग की कि कोई व्यक्ति न तो कोई ऐसा निशान या चिह्न धारण करेगा और न ऐसा नाम ही रखेगा और न ऐसे कपड़े ही पहनेगा जिससे पता लग सके कि उसका मजहब क्या है ? उनके इस संशोधन पर मौलाना हसरत मोहानी ने, जो स्वयं दाढ़ी रखते थे, यह चुटकी ली कि श्री हुसैन को अपने संशोधन पर पहले स्वयं ही आचरण करना चाहिए। उन्हें अपना नाम बदलना चाहिए क्योंकि उससे कोई भी कह सकता है कि वह मुसलमान हैं। इस पर तजम्मुल हुसैन ने तपाक से जवाब दिया कि जब सारा देश मेरा संशोधन स्वीकार कर लेगा तो मैं भी अपना नाम बदल लूँगा और तब फिर कोई नहीं जान सकेगा कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ ?

अपमानजनक

संविधान सभा में सबसे उग्र भाषण **श्री लोकनाथ मिश्र** का हुआ। उन्होंने तो जैसे विचाराधीन प्रावधान के विरुद्ध युद्ध का एलान कर दिया। उन्होंने संबंधित अनुच्छेद को हिन्दू पराधीनता का घोषणा-पत्र बताया। उन्होंने कहा कि यह बहुत ही अपमानजनक अनुच्छेद है और संविधान के प्रारूप का सर्वाधिक कलंकपूर्ण भाग है। उन्होंने कहा कि सेक्युलर का अर्थ यह नहीं हो सकता कि हमारा पंथ या मजहब से कोई संबंध

ही न हो। उनका कहना था कि मजहब के प्रचार के कारण भारत अपनी वर्तमान दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में पहुँचा है और उसका विभाजन हुआ है। उन्होंने कहा कि यदि इस्लाम इस देश पर अपने को नहीं थोपता तो भारत एक सेक्युलर तथा सामंजस्यपूर्ण राज्य रहता। तब विभाजन का कोई प्रश्न ही नहीं था।

मजहब के प्रचार की छूट क्यों ?

वस्तुतः लोकनाथ मिश्र मजहब का प्रचार करने की छूट देने के विरुद्ध थे। उन्होंने पूछा कि क्या भारत को हम इसलिए सेक्युलर बना रहे हैं कि यहाँ एक से अधिक धर्म हैं और हम यह तय नहीं कर पा रहे है। कि उनमें से किसको स्वीकार करें ? उन्होंने कहा कि या तो हम किसी भी मजहब को न मानें और यदि मानते हैं तो हिन्दू धर्म को मानें, क्योंकि भारत के बहुसंख्यक लोग उसको स्वीकार करते हैं।

अभी लोकनाथ मिश्र का भाषण पूरा भी नहीं हुआ था कि संविधान सभा की बैठक दूसरे दिन के लिए स्थगित हो गई। दूसरे दिन श्री मिश्र ने अपना भाषण आरम्भ ही किया था कि प्रधानमंत्री **श्री नेहरू** ने उन्हें टोका और अध्यक्ष से पूछा कि श्रीमान, क्या सदन में दस्तावेजों को पढ़ने की अनुमति है ? उपाध्यक्ष डॉ. एच.सी. मुखर्जी ने नेहरू जी की आपत्ति को स्वीकार नहीं किया और कहा कि श्री मिश्र एक विशेष दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर रहे हैं और उन्हें इसका अवसर दिया जाना चाहिए। स्पष्टतः श्री मिश्र के विचार नेहरू जी को पंसद नहीं थे और इसलिए उन्होंने दस्तावेजों से पढ़ने पर आपत्ति की।

श्री मिश्र ने दूसरे दिन भी मजहब के प्रचार की छूट देने का विरोध किया और कहा कि आयरलैंड के संविधान में वहाँ के बहुसंख्यक नागरिकों की आस्था की विशेष स्थिति को स्वीकार किया गया हे। उन्होंने कहा कि सोवियत रूस में मजहब विरोधी प्रचार की छूट है। हम मजहब प्रचार की स्वतंत्रता तो दे रहे हैं, किन्तु मजहब विरोधी प्रचार को प्रतिबंधित कर रहे हैं। यदि लोग अपने मजहब का प्रचार करना चाहते हैं तो करें, किन्तु संविधान में इसे मूलभूत अधिकार के रूप में नहीं रखा जाना चाहिए।

मुस्लिम लीग का घातक रवैया

संविधान सभा में मुस्लिम लीग के कुछ सदस्यों का लक्ष्य बड़ा सीमित जान पड़ता था। सभी नागरिकों को, जिनमें मुसलमान भी शामिल हैं, बिना किसी मजहबी भेदभाव के समान अधिकार, अवसर और प्रतिष्ठा की गारण्टी करने के लिए संविधान सभा की सराहना करने के बजाय उनकी सारी चिंता इस बात को लेकर थी कि भेदभाव को हटाने के लिए लाई गई समता की लहर कहीं उनकी कुछ मान्यताओं (जिनको वे मजहबी समझते थे) को ठेस न पहुँचाये। इसलिए उन्होंने अनुच्छेद के इस अंश का विरोध किया।

"इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी। जो :

मजहबी आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य लौकिक क्रिया-कलाप का विनिमयन या निबंधन करती है।"

मुस्लिम लीग के सदस्यों को भय था कि कहीं इस उपबंध का लाभ उठाकर सरकार व्यक्तिगत कानून के सुधार के प्रश्न को भी इसी परिधि में न ले आये और एक समान सिविल कोड बना दे। उन्होंने इस आशय का एक संशोधन प्रस्तुत किया और उसे मतदान के लिए भी रखा।

श्री के. संथानम ने उस समय तो मुस्लिम लीग के सदस्यों की मांग को यह कहकर रद्द कर दिया कि संविधान सभा पहले ही राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत यह कह चुकी है कि राज्य सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। यह संशोधन उसको सीधा नकारता हैं। अतः उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। डॉ. अम्बेडकर ने भी इसी आधार पर संशोधन को अमान्य कर दिया। हम जानते हैं कि समान नागरिक संहिता बनाने का निदेशक सिद्धान्त अनुच्छेद ४४, के रूप में संविधान में शामिल है।

श्री संथानम ने "प्रचार" पर उठाई गई आपत्तियों का उल्लेख करते हुए सदस्यों को आश्वस्त करने का प्रयास किया और कहा कि संबंधित अनुच्छेद में "मतान्तरण" शब्द नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि ईसाई मिशनरियों ने इस देश में सामूहिक मत परिवर्तन किया था और उसका विरोध हुआ था। संविधान अंतःकरण की स्वाधीनता देता है, उस पर अंकुश सम्भव नहीं है। किन्तु यदि कोई मजहबी समुदाय सामूहिक मत परिवर्तन के लिए धन या दबाव के अनुचित तरीकों को प्रयुक्त करता है तो सरकार उस पर रोक लगा सकती है।

प्रचार और मतान्तरण

इस चर्चा में सत्तापक्ष की ओर से **श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** तथा **श्री कन्हैयालाल मानिकलाल मुंशी** ने हस्तक्षेप किया और "प्रचार" के अधिकार को रखने की जोरदार वकालत की। श्री कृष्णमाचारी ने श्री संथानम का बिना नाम लिए उनके इस आश्वासन को अस्वीकार कर दिया कि चूँकि संविधान में "मतपरिवर्तन" शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है इसलिए सदस्यों को अनावश्यक रूप से आशंकित नहीं होना चाहिए। श्री कृष्णमाचारी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हम नागरिकों को मजहब का प्रचार करने और मजहब का परिवर्तन करने का मूलभूत अधिकार दे रहे हैं, और यह अधिकार केवल एक विशेष समुदाय को नहीं, सभी मतावलंबियों को प्राप्त होगा। श्री कृष्णमाचारी ने यह चेतावनी भी दी कि यदि प्रदत्त अधिकारों का दुरुपयोग हुआ तो सभी सम्प्रदायों को एक राष्ट्र के रूप में एकात्म करने के कार्य में ही बाधा नहीं पड़ेगी, ऐसा करने वाले अपने समुदाय और अपने मजहब के प्रति भी अन्याय करेंगे।

ईसाइयों को दिया गया वचन

श्री मुशी ने यह रहस्योद्घाटन किया कि भारतीय ईसाइयों को यह वचन दिया जा चुका है कि उन्हें अपने मजहब का "प्रचार" करने का मूलभूत अधिकार होगा। उन्होंने कहा कि सर्वसम्मति के लिए ऐसा करना आवश्यक था। उन्होंने यह भी कहा कि मतपरिवर्तन ईसाई पंथ का अभिन्न अंग है। उन्होंने कहा कि संविधान के अन्तर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारण्टी दी गई है। उसका उपयोग करके कोई समुदाय किसी को स्वेच्छा से अपना मजहब स्वीकार करने के लिए तैयार कर सकता है। अंत में श्री मुंशी ने कहा कि **"कुछ भी परिणाम हो, हमें समझौते का सम्मान करना है। सर्वसम्मति के लिए यह आवश्यक है।"**

श्री मुंशी के रहस्योद्घाटन से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री लोकनाथ मिश्र ने बहुत तीखा भाषण देने के बाद अपने स्वर को अचानक मृदु क्यों बना लिया और "प्रचार करने" के अधिकार को क्यों स्वीकृति दे दी। ऐसा लगता है कि कांग्रेस पार्टी में "मतपरिवर्तन" के अधिकार को लेकर काफी मतभेद थे। किन्तु सर्वसम्मति कायम करने की नेतृत्व की इच्छा ने उन्हें समझौतावादी रुख अपनाने के लिए विवश किया।

संविधान सभा इस प्रश्न पर एक मत थी कि भारत एक **"सेक्युलर"** राज्य है और उसे **"सेक्युलर"** ही रहना चाहिए। किन्तु इस सर्वसम्मति में **"सेक्युलर"** का स्वरूप क्या होना चाहिए इस पर परस्पर विरोधी विचारों की कोई सीमा नहीं थी। एक छोर पर **प्रो. शाह** थे जिनका प्रबल मत था कि राज्य का मजहब से कोई संबंध नहीं होना चाहिए। अपनी बेबाक राय के कारण शायद प्रो. शाह संविधान सभा में अकेले पड़ गये थे। दूसरे छोर पर **प्रो.कामथ** खड़े दिखाई देते हैं जो धर्म को उसके व्यापक रूप में खुले तौर पर स्वीकार करने का पुरजोर प्रतिपादन करते हैं। इन दो छोरों के बीच में अन्य सदस्य थे जो भिन्न-भिन्न कारणों से राज्य **"सेक्युलर"** है, होना चाहिए, इस पर बल देते हुए भी **"सेक्युलर"** की परिभाषा अपने-अपने ढंग से करते थे और इन परिभाषाओं में गहरी खाई होने के बावजूद यह समझते थे कि **"सेक्युलर"** के समर्थन में वे सब एक हैं। इस भावना से संविधान सभा की कार्रवाई में एक लक्ष्यता आयी और देश में एक राष्ट्र की भावना को पुष्टि मिली।

आम सहमति

संविधान सभा में इस प्रश्न पर आम सहमति थी कि "सेक्युलर" राज्य ईश्वर-विरोधी या धर्मविरोधी नहीं होगा। श्री मुंशी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि संविधान की उद्देशिका में ईश्वर को स्थान दे दिया जाय तब भी राज्य "सेक्युलर" ही रहेगा। उनके शब्दों में, **"सेक्युलर राज्य ईश्वरविहीन नहीं है। वह ऐसा राज्य नहीं है जो धर्म को उखाड़ने या उसकी उपेक्षा करने के लिए संकल्पित है। वह ऐसा राज्य नहीं है जो इस देश में मजहबी आस्था का ध्यान रखने से इंकार करता है।"** उन्होंने आगे कहा कि **"हमें इस तथ्य को मानना चाहिए कि भारत एक धार्मिक प्रवृत्ति वाला देश है। "सेक्युलर" राज्य की बात करते हुए भी हमारे जीवन और चिन्तन की शैली बहुतांश में जीवन के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित है।"** **श्री अनन्तशयनम आयंगर** ने कहा कि संविधान सभा के सभी सदस्य किसी न किसी मत-पंथ में विश्वास रखते हैं। खेद का विषय यह है कि हम एक विश्व धर्म का विकास नहीं कर सके हैं इसलिए राज्य बच्चों के लिए मजहबी शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकेगा। उन्होंने कहा कि हम सब एक ईश्वर के अस्तित्व में, प्रार्थना में, ध्यान में विश्वास करते हैं। **श्री महावीर त्यागी, रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा, श्री सिधवा** आदि सदस्यों ने भी इसी आशय के भाव व्यक्त किये। □

पंथनिरपेक्षता की सही संकल्पना

□ हो.वे. शेषाद्रि

"धर्मनिरपेक्षता" शब्द को लेकर देश में विवादों की आँधी चल रही है और उसकी भ्रामक या विकृत अवधारणा के जो कुप्रभाव राष्ट्र-जीवन पर पड़ रहे हैं, या भविष्य में पड़ सकते हैं– उन्हें देखते हुए, यह अत्यन्त प्रासंगिक और सामयिक है कि इस विषय की एक स्पष्ट अवधारणा जनमानस के समक्ष उपस्थित की जाये।

गलत अनुवाद से अनर्थ

शब्दों की अपनी संस्कृति होती है। उनके वास्तविक अर्थ को समझने के लिए इस संस्कृति को उसके परिवेश और परिस्थितिगत संदर्भों में देखना आवश्यक होता है। किसी विशिष्ट परिवेश, परिस्थितियों, परम्पराओं एवं चिन्तन से उत्पन्न शब्द और उसकी पूरी अवधारणा को भिन्न राष्ट्रीय-सामाजिक परिवेश, परिस्थितियों, परम्परा, चिन्तन एवं संस्कृतिगत संदर्भों पर आरोपित नहीं किया जा सकता। दुर्भाग्यवश, यही दुर्घटना 'सेक्युलरिज्म' शब्द के साथ घटी है। 'धर्मनिरपेक्षता' के रूप में उसके भाषानुवाद ने तो और भी अनर्थ किया है।

यूरोप में राज्य-व्यवस्था पर चर्च के अत्याधिपत्य के विरोध में 'सेक्यूलर स्टेट' या 'पंथनिरपेक्ष' राज्यों का जन्म हुआ। पोप के चर्च तन्त्रीय आधिपत्य से मुक्त इन राज्यों पर रिलीजन का कोई प्रभाव या दबाव नहीं रहा। राज्य को रिलीजन से परे रखा गया।

इस दृष्टि से यदि देखें, तो भारत की स्थिति भिन्न है। यहाँ कोई भी राज्य किसी मजहबी व्यवस्था से परिचालित नहीं हुआ। अरबों, तुर्कों, मंगोलों आदि के आक्रमण के पूर्व का इतिहास इस प्रकार के पंथ-संबंधी आधिपत्य को कोई प्रमाण नहीं देता। अशोक का राज्य-काल मात्र अपवादस्वरूप है जब बौद्ध मत के प्रचार-प्रसार के लिए राजतंत्र का प्रयोग किया गया। कारण, स्पष्ट है कि पंथ-रिलीजन की विदेशी परिकल्पना से भारत का कोई परिचय तब तक नहीं हुआ था। समस्या तो 'रिलीजन' शब्द के धर्म के रूप में भाषानुवाद से उत्पन्न हुई।

रिलीजन और धर्म

अपने मूल स्वरूप में 'रिलीजन' वस्तुतः एक उच्चतर अदृश्य शक्ति के प्रति व्यक्त उस आस्था का नाम है जो किसी विशेष पैगम्बर, विशेष प्रकार की मान्यताओं और पूजा-अर्चना की विशेष पद्धति से जुड़ी होती है। उस विशेष मत को मानने वालों के लिए स्वर्ग का पथ प्रशस्त होता है और न मानने वाले नरक दण्ड के अपराधी माने जाते हैं। इस प्रकार पंथ-चिन्तन कितना एकांगी, अहंवादी और संकीर्ण होता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इतना ही नहीं, पंथ की यह धारणा भेदमूलक होती है और मनुष्य जाति को उच्चतर-निम्नतर श्रेणियों में विभाजित भी करती है।

इसके विपरीत धर्म की अवधारणा बहुत व्यापक होती है। वह किसी विशेष मत या उपासना पद्धति तक सीमित नहीं। इसके अन्तर्गत उच्चतर सत्य की प्राप्ति के लिए किए गए प्रत्येक प्रयास का आदर किया जाता है फिर चाहे उसका कुछ भी नाम क्यों न हो, कोई भी उपासना-पद्धति क्यों न हो। धर्म की यह उदार संकल्पना जहाँ प्रत्येक को अपनी आस्था के अनुरूप आचरण करने की स्वतन्त्रता प्रदान करती है, वहाँ दूसरों की आस्था के प्रति सहिष्णुता की शिक्षा भी देती है।

इस अर्थ में 'धर्म' अपनी व्याप्ति के प्रयास में उन सभी मूल्यों और कार्यों को समेट लेता है जिनका लक्ष्य लोक-मंगल और लोकहित होता है, जो मनुष्य के उत्थान के लिए किये जाते हैं। मानव-मात्र के कल्याण की यह दृष्टि सार्वलौकिक और सार्वभौमिक ही नहीं सार्वकालिक भी होती है। इसी से धर्म को शाश्वत और सनातन कहा जाता है। इसी से धर्म मानव-धर्म कहलाता है। 'रिलीजन' का सम्बन्ध व्यक्तिगत आस्था से होता है किन्तु 'धर्म' व्यक्ति से समाज तक प्रसार पाता है। समस्या तब उठती है जब इन दोनों शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में कर हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी समस्त भारतीय मनीषा को नकार कर भारतीय परिस्थितियों पर जबर्दस्ती एक कृत्रिम व्यवस्था के रूप में इस पाश्चात्य संकल्पना को लादना चाहते हैं। इस क्रम में वे पूर्व और पाश्चात्य समाज-व्यवस्थाओं के अन्तर को भूल जाते हैं, जबकि पूर्व और पश्चिम के दार्शनिक चिन्तन की दिशा और गति प्रारम्भ से ही भिन्न रही है।

'धर्म' के अन्तर्गत कर्त्तव्य, न्याय, विधि, लोकहित, जनकल्याण के साथ-साथ श्रेष्ठ परम्पराओं और जीवन-मूल्यों की अवधारणा भी सिमट आती है। राज्य के साथ धर्म 'विधि' रूप में जुड़ता है। जन-उत्थान और जनता की सुख-समृद्धि के

लिए प्रयत्नशील कल्याणकारी राज्य को ही धर्म-राज्य कहते हैं। यह लोकहितकारी दृष्टि को प्रजा के हित में राजा का हित और प्रजा के सुख में राजा का सुख देखती है- राजधर्म कहलाती है। इसलिए राज्य का 'धर्मनिरपेक्ष' या 'निधर्मी' होना संभव ही नहीं; क्योंकि 'राज-धर्म' के बिना कोई भी राज्य चल ही नहीं सकता। धर्म की इस संकल्पना और 'रिलीजन' की कल्पना में जमीन-आसमान का अन्तर है। वस्तुतः 'सेकुलर' राज्य का सही अनुवाद होकर 'सम्प्रदाय या पंथ निरपेक्ष राज्य' और इस अर्थ में 'सर्व धर्म समभाव' का प्रयोग भी 'सर्व सम्प्रदाय समभाव' के रूप में करना उचित होगा क्योंकि संपूर्ण मानवता का 'धर्म' तो एक ही है। 'सम्प्रदायों' की भिन्नता अलग बात है।

हिन्दू धर्म से तात्पर्य

इस सनातन 'धर्म' के साथ 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग पिछले दो हजार वर्षों से किया जाने लगा है। इसकी आवश्यकता तब पड़ी जब विविध मजहबी मत-मतान्तरों वाली जातियाँ भारत में आने लगीं। 'हिन्दू' धर्म केवल इस बात का प्रतीक है कि मानव जीवन के उत्थान की इस शाश्वत आचार-संहिता की संकल्पना सर्वप्रथम हिन्दुओं ने की। जिस प्रकार बहुत से वैज्ञानिक आविष्कारकों का नाम उनके सिद्धान्तों अथवा आविष्कारों के साथ जोड़ दिये जाते हैं, जैसे- न्यूटन का सिद्धान्त या फराडे का सिद्धान्त, वैसे ही धर्म के साथ 'हिन्दू' शब्द भी जुड़ गया।

इस व्यापक, उदार और सबको साथ लेकर चलने वाली हिन्दू राजनीति को कभी भी व्यक्तिगत या सम्प्रदायगत विश्वासों और मान्यताओं को पूरे समाज पर बलात् आरोपित करने के प्रयास सह्य नहीं हो सकते। फिर यह धर्म केवल अन्य मतों या सम्प्रदायों के प्रति एक नकारात्मक तटस्थता का भाव ही नहीं रखता, बल्कि अपनी-अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं के प्रति समर्पित लोगों को पूरी निष्ठा के साथ उसी पथ पर अग्रसरित होने की प्रेरणा भी देता है। इसी से स्वतंत्र भारत के संवैधानिक उद्देश्यों में पंथ निरपेक्षता की भावना को अपनाया गया। ऐसा मात्र इसलिए संभव हुआ कि यह विभाजित देश हिन्दू-बहुल था अन्यथा शेष दो भागों (पाकिस्तान और बंगलादेश) ने कौन-सा राजनीतिक स्वरूप अपनाया यह सब जानते हैं।

हिन्दू मानस

हिन्दू-मानस प्रकृतया सहिष्णु और सम्प्रदाय या पंथ-निरपेक्ष है। इसलिए हिन्दू-पुनर्जागरण न केवल इस देश के अहिन्दुओं के धार्मिक उत्थान में सहायक होगा बल्कि निश्चित रूप से उन्हें सहज आत्मीयता से अपना कर राष्ट्र-जीवन में समरस होने में सहायता भी प्रदान करेगा।

अभी पूरे देश में हिन्दू-जागरण की जो लहर फैली है उसे पंथनिरपेक्षता विरोधी, रूढ़िवादी, साम्प्रदायिक और अल्पसंख्यक विरोधी सिद्ध करने के जो राष्ट्रव्यापी प्रयास किये जा रहे हैं वह घृणित स्वार्थों की तुच्छ राजनीति द्वारा सम्पूर्ण हिन्दू मानस की घोर उपेक्षा और अवमानना की घृणित दुराग्रहपूर्ण कुचेष्टा मात्र है।

घातक षड्यंत्र

सन् १९४४ से पूर्व ब्रिटिश शासकों ने मुस्लिम लीग के साथ मिलकर हिन्दू-भावनाओं पर सम्मिलित रूप से घातक आघात किये। स्वतन्त्र भारत में यह काम रूढ़िवादी मुस्लिम समुदाय और वोट की राजनीति से प्रेरित तुष्टिकरण में विश्वास रखने वाले राजनीतिज्ञों द्वारा किया जा रहा है। १९४७ से पूर्व राष्ट्रीयता का आह्वान करने वाले प्रत्येक स्वर या प्रतीक को इन्हीं तत्वों द्वारा 'हिन्दू' करार देकर प्रकारान्तर से साम्प्रदायिक घोषित कर दिया जाता था। यहाँ तक कि समानाधिकार के प्रजातान्त्रिक प्रस्ताव को भी मुस्लिम लीग ने यह कहकर ठुकरा दिया कि यह बहुसंख्यकों की प्रतिस्थापना या हिन्दू साम्प्रदायिक शासन का प्रतीक है।

भारत के अहिन्दू सम्प्रदायों को राष्ट्र जीवन में समरस न होने देने की साजिश के पीछे 'वोट' की जो क्षुद्र राजनीति थी उसने एक ओर तो जी भर कर उनका शोषण किया और उनका सम्यक् विकास नहीं होने दिया, दूसरी ओर एक बहुत ही घातक षड्यन्त्र रचा। यह षड्यन्त्र मुस्लिम समुदाय की मूल पहचान से जुड़ा था। ऐतिहासिक भ्रान्तियाँ उत्पन्न कर स्वार्थ साधने वाली इस राजनीति ने एक ओर तो स्वतंत्र भारत की उदीयमान पीढ़ियों को पराधीनता का, धूमिल पराभूत राष्ट्रीय अस्मिता का इतिहास पढ़ाया तो दूसरी ओर मुस्लिम समुदाय की मानसिकता को सीधे आक्रमणकारियों से जोड़कर उन्हें भारतीय जीवन के मूलाधार से विच्छिन्न करने की कोशिश की। काफी हद तक वे इसमें सफल भी हुए। परिणाम यह हुआ कि हमारे मुस्लिम बन्धु यह भूल गये कि वे इसी धरती की संतान हैं और इस देश के लोगों ने मतान्तरण कर इस्लाम को स्वीकार किया था। यही कारण है कि वे कभी भी अपने भारतीय पूर्वजों और पूर्व परम्पराओं से तथा अपनी संस्कृति से

(शेष पृष्ठ ५० पर)

धर्म और सेकुलरिज्म

□ दत्तोपंत ठेंगड़ी
संथापक, भारतीय मजदूर संघ

जब कभी हम कोई चर्चा करें, तब हमारी चर्चा का विषय स्पष्ट और सटीक होना चाहिए। आज हमारी चर्चा का विषय है : धर्म।

यह एक ऐसा शब्द है जिसकी थोड़ी बहुत व्याख्या जरूरी है। इसका कारंण यह है कि उच्च स्तर के अधिकांश बुद्धिजीवी धर्म के नाम से चिढ़ने लगे हैं और इसे रिलीजन से जोड़ दिया जाता है तथा यह कोई ऐसी भावना समझ ली जाती है जो सेकुलरिज्म की विरोधी है। सेकुलरिज्म पर काफी बहस चल रही है और जब तक हम 'सेकुलर', 'रिलीजन', 'धर्म' आदि शब्दों में निहित अर्थ को अच्छी तरह समझ नहीं लेते, तब तक इस विषय पर हम जो भी चर्चा करेंगे, वह व्यर्थ होगी।

सेकुलरिज्म

हमारे देश में 'सेकुलरिज्म' शब्द के बारे में काफी भ्रान्ति हैं। हमारे देश की संविधान सभा में जब इस शब्द पर बहस हुई, तब से लेकर श्री पी.सी. चटर्जी की पुस्तक 'सेकुलर वैल्यूज फार सेकुलर इण्डिया' पुस्तक सहित आज भी सेकुलरिज्म की अवधारणा के बारे में निरन्तर सार्वजनिक रूप से बहस चल रही है।

'सेकुलर' शब्द का सीधा-सादा अर्थ है– वह भावना जो किसी दूसरे लोक की नहीं हो या जो आध्यात्मिक न हो, भौतिक हो, जो सिविल हो और चर्च आदि से संबंधित न हो। 'सेकुलरिज्म' का अर्थ है हमारी ऐसी धारणा जो 'स्टेट', 'रिलीजन' से स्वतन्त्र होनी चाहिए। और यह कि चर्च और स्टेट दोनों को अलग-अलग होना चाहिए। भारत में 'स्टेट' हमेशा 'सेकुलर' रही है। **सरसंघचालक श्री गुरुजी** अक्सर कहा करते थे कि हिन्दुओं के इतिहास में 'स्टेट' हमेशा सेकुलर रही है और हिन्दू स्टेट निश्चित ही 'सेकुलर स्टेट' है।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने कहा था : "इसका अर्थात् सेकुलर स्टेट का यह आशय नहीं कि हम जनता की धार्मिक भावनाओं को ध्यान में नहीं रखेंगे। सेकुलर स्टेट का कुल मिलाकर अर्थ यह है कि इस संसद को किसी विशिष्ट रिलीजन को बाकी जनता पर लागू करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा। यह संविधान केवल इसी सीमा तक संसद के अधिकार को स्वीकार करता है। सेकुलरिज्म का अर्थ 'रिलीजन' को समाप्त करना नहीं होता है।"

रिलीजन

श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने जीवन-काल के उत्तरार्ध में 'रिलीजन' से सम्बन्धित सभी विषयों की जमकर भर्त्सना की। लेकिन वह 'रिलीजन' शब्द में निहित अर्थ के बारे में लिखते हैं : **"शब्दों के बारे में सभी लोग यह मानते हैं कि उनकी मदद से जो बात कही जाती है; वह अधूरी रह जाती है और उनके मायने भी हर आदमी अपनी तरह लगा लेता है। 'रिलीजन' शब्द (या और जुबानों में इस मायने के ओर शब्द) के मायने तरह-तरह के लोगों ने जितनी तरह से समझे और दिये हैं, उतना शायद ही किसी जुबान में किसी और लफ्ज के साथ हुआ हो। हमें शायद ही ऐसे आदमी मिलें जिनके मन में इस शब्द को सुनकर एक जैसे विचार उभरते हों। 'रिलीजन' शब्द के सही-सही मायने (अगर इसके कोई सही मायने हैं) क्या हैं, यह आज कोई नहीं जानता। इसके कुछ मायने लगाए जाते हैं, जो इसके ठीक उल्टे होते हैं। तब बात अधिक उलझ जाती है और लोग लम्बी-चौड़ी बहस करने लगते हैं, तरह-तरह की दलीलें पेश करते हैं। अच्छा तो यही हो कि हम इसका इस्तेमाल ही करना छोड़ दें और इसकी जगह थियोलौजी, फिलॉसफी, मारल्स, एथिक्स, स्पिरिच्युआलिटी, मेटा-फिजिक्स, डेयूटी सेरिमोनियल जैसे शब्दों का इस्तेमाल करना शुरू कर दें।"**

गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि "कोई भी आदमी रिलीजन के बगैर नहीं रह सकता। लेकिन कुड ऐसे लोग हैं, जो अपनी दलीलों की झोंक में कह बैठते हैं कि हमारा 'रिलीजन' से कोई सरोकार नहीं है। लेकिन यह ऐसा होता है कि जैसे कोई आदमी यह कहे कि मैं साँस लेता हूँ लेकिन मेरी नाक नहीं है। वह आगे लिखते हैं– 'सत्य के प्रति मेरी जो निष्ठा है, उसकी वजह से मैं सियासत में आया। मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं और यह बात मैं

विनयपूर्वक कहता हूँ कि जो लोग यह मानते हैं कि 'राजनीति' से रिलीजन का कोई सरोकार नहीं होता, उन्हें इसी बात का पता नहीं कि 'रिलीजन' के क्या मायने होते हैं ? जो लोग जिन्दगी और राजनीति से रिलीजन को निकाल देना चाहते हैं, उन लोगों के बारे में गांधी जी यह कहते हैं कि **"इन लोगों में से अधिकांश लोगों को 'रिलीजन' शब्द का यह आशय नहीं मालूम, जो मैं जानता हूँ और जो ज्यादा ठीक होता है।"** जाहिर है कि गांधी जी इस शब्द का प्रयोग 'नैतिक' अर्थ में या इससे कुछ और अधिक आशय से करते थे। और यह अर्थ उनके आलोचकों द्वारा सुझाये गये अर्थ से भिन्न था। एक ही शब्द अलग-अलग कई अर्थों में इस्तेमाल होने से हमें आपस में उस शब्द को समझना मुश्किल हो जाता है।

यहाँ मुझे प्रभु ईसा के वह वचन याद आते हैं, "शब्द तो मर जाता है, लेकिन उसकी आत्मा बार-बार जन्म लेती है।"

विलियम केप की टिप्पणी

मैं आपका ध्यान विलियम केप की इस टिप्पणी की ओर आकृष्ट कर रहा हूँ जिसे प्रो. हुमायूँ कबीर ने उद्धृत किया है। **"भिन्न-भिन्न जातियों और परस्पर-विरोधी विश्वास वाली व्यवस्थाओं का एक-दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करने और उन्हें एक-दूसरे में मिला देने की क्षमता के कारण ही हिन्दू संस्कृति विलक्षण रीति से एक सुदृढ़ संस्कृति के रूप में अनादिकाल से जीवित बनी हुई है। इसकी इस क्षमता का कारण यह है कि इसमें असमान तत्वों को समाहित करने की सामर्थ्य है और इस कारण इसमें विविधता होते हुए भी एकसूत्रता है। मनुष्य जाति के इतिहास में इस जैसी शायद ही कोई दूसरी संस्कृति मिले।"**

केप लिखते हैं : **"वस्तुतः सत्य के रूप असंख्य हैं और वास्तविकता का एक ही स्वरूप हो, यह कहना कठिन है। इसका कारण प्रसंगों की विविधता और तदनुरूप उनका निर्धारण है। हिन्दू विचारकों में जो सहिष्णुता है उसका मूल समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण के अनेक होने में निहित है। वह इन विविध दृष्टिकोणों से वास्तविकता के विशिष्ट स्वरूप तक पहुँचने का प्रयास करता है।"**

वह आगे लिखते हैं : **"वह (यूरोपीय विचारक) वास्तविकता की व्याख्या चरम सत्य और चरम त्रुटि के रूप में करना चाहता है। इसी कारण यूरोपीय दर्शन में विचारों में तीखापन और निरन्तर आलोचन-प्रत्यालोचन मिलता है, लेकिन इस कारण ही सत्य के प्रति उनके दृष्टिकोण में हठ और संकीर्णता मिलती है। किन्तु इसके विपरीत भारतीय दर्शन में आरम्भ से वास्तविकता के विविध रूपों को स्वीकार किया जाता है तथा इसे तरह-तरह के परस्पर-विरोधी वर्गों के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया गया है। भारतीय दर्शन-शास्त्र में सत्य के जितने रूप स्वीकार किये गये हैं उनकी तुलना यूरोपीय दर्शन-शास्त्र में नहीं मिलती।"**

यही कारण है कि पश्चिम के आदर्शों के आधार पर भारतीय परिस्थितियों या दर्शन को आंकने में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य बनी रहती है। इसलिए जब हम अपने राष्ट्र के भविष्य के बारे में कुछ सोचते हैं तब यह देखकर कि पश्चिम के मानदंड जहाँ एक ओर असफल रहे हैं वहीं दूसरी ओर उनके और हमारे इतिहास की भौतिक गतिविधि में अन्तर है। हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम कुछ नये लक्ष्य या आदर्श निश्चित करें।

हम अपनी संस्कृति, प्राचीन परम्पराओं, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के सन्दर्भ में अपनी उन्नति और विकास के लिए अपने आदर्शों का गहरा अध्ययन करें और उससे जहाँ भी सम्भव हो, लाभ उठाएँ। किन्तु हमें अपने भविष्य के लिए इन आदर्शों को अन्धे होकर नहीं अपनाना चाहिए।

हमें चाहिए कि हम धर्म को लक्ष्य के रूप में ग्रहण करने की पद्धति का इसलिए परित्याग नहीं करें कि कुछ लोग इसे भूल से 'रिलीतन' समझ बैठते हैं। इसे एक ऐसी संकल्पना कहते हैं जो सेकुलरिज्म के खिलाफ होती है।

सेकुलरिज्म का इतिहास

सेकुलरिज्म पर जो भी बहस होती है, वह पश्चिम से अनुप्राणित है। सेंट मार्क ने अपने एक उपदेश में कहा था, **"जो कुछ सीज़र (राजा) का है वह उसे और जो कुछ ईश्वर का है वह उसे समर्पित कर दो।"** राजा के बारे में यह अवधारणा यूनानी और रोम की अवधारणा से भिन्न है, जो वहाँ के निवासियों की जीवन पद्धति का आधार थी। मार्क के इस उपदेश की पुष्टि मिलान में ३१२ ई. के शिलालेख करते हैं।

सम्राट कांस्टेण्टाइन ने ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद ईसाई धर्म को अपने समस्त राज्य का राजधर्म घोषित किया और ३४६ ईसवी में उसने उन सभी पूजागृहों को बन्द कराने का आदेश दिया जो ईसाई धर्म के नहीं थे। इसके बाद यूरोप में एक ऐसा दौर शुरू हो गया जिसमें कभी चर्च तो कभी

स्टेट एक-दूसरे पर हावी होने लगे।

सेकुलरिज्म की विचारधारा का मूल **जेम्स मिल** और **बेंथम** के उपयोगितावाद में निहित है। उन्हें इसकी प्रेरणा **थॉमस पेन** और **रिचर्ड कार्लाइल** से मिली, जो ईश्वर की सत्ता में बिलकुल ही विश्वास नहीं करते थे।

उपयोगितावाद ने सेकुलरिज्म को दो आधार दिये। पहला : विचारों की स्वतंत्रता के साथ मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास और दूसरा : समाज के निर्माण में रिलीजन का कोई सरोकार न होना। यह कहा गया : "जिन प्रयोजनों के लिए घर है उन प्रयोजनों की पूर्ति उसके वास्तुकार के स्मरण के बिना भी हो सकती है।"

राजनीति के क्षेत्र में सेकुलरिज्म का उदय उन घटनाओं के कारण हुआ जो सन् १८३२ के सुधार कानून बनने के पहले हुईं और जिनके परिणामस्वरूप यह बिल बना था। सेकुलरिज्म की भावना को **राबर्ट ओवन** के समाजवाद और **चार्टिस्ट आन्दोलन** से भी प्रेरणा मिली। लेकिन सेकुलरिज्म को यह नाम काफी समय बाद मिला। इसकी संकल्पना को मूर्त रूप देने का श्रेय **जार्ज जेकन होलीओक** को है। **होलीओक** ने यह शब्द सन् १८५० में **ब्रेडला** से मिलने के बाद गढ़ा था। **होलीओक** का कहना था कि **"ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करना सेकुलरिज्म की धारणा की एक अनिवार्य शर्त है।"**

संयुक्त राज्य अमेरिका में रिलीजन से सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं का सूत्रपात हुआ। यूरोप में राजनीतिक स्वतंत्रता आई। संयुक्त राज्य अमेरिका में रिलीजन के भिन्न मत होने का कारण धार्मिक स्वतंत्रता, व्यक्ति और समाज के चिन्तन का एक अंग बन गई। लेकिन यूरोप में यह भाव 'रिलीजन' के प्रति लोगों की उदासीनता या विरोध के कारण हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १७९१ के पहले संशोधन और (एक शताब्दी से अधिक समय बीतने के बाद) **कैंटवेल बनाम कनेक्टीकट** मुकदमे में वहाँ के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय (१९४०) जिसमें चौदहवें संशोधन की पुष्टि की गई थी के द्वारा वहाँ सेकुलरिज्म की समस्या पर सरकार के दृष्टिकोण की थोड़ी बहुत जानकारी मिल जाती है।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भावी भारत के लिए बुनियादी ढाँचा ऐसा तैयार किया जाए कि जिस पर रिलीजन का कोई भी प्रभाव या प्रेरणा न हो। यह ढाँचा सनातन धर्म के सार्वजनीन नियमों के संदर्भ में तैयार किया जाना चाहिए। **डॉ. अम्बेडकर** ने कहा था– **'रिलीजन सटीक रूप से एक व्यक्तिगत मामला है जबकि धर्म का सम्बन्ध समाज से होता है।'**

लेकिन समस्या तब पैदा होती है जब हमारे कुछ बुद्धिजीवी भारतीय परिस्थितियों पर उसी प्रकार जोर-जबर्दस्ती से एक कृत्रिम व्यवस्था लादना चाहते हैं, जैसा कि यूरोपीय विचारकों ने किया था। विचारों और संकल्पनाओं के क्षेत्र में जो भी घटनाएँ होती हैं, वे पूर्व और पश्चिम में एक जैसी नहीं होतीं।

यूरोपीय विचारधारा का विकास

यूरोप में मध्यकालीन युग आस्था का युग था। इस युग में मुख्य विभूतियाँ थीं– **सेंट आगस्टीन, सेंट थामस एक्वीनास, बोथ्यूस, एरिजेना, अंसलेन, एबीलैंड, बोनबेतुरा और एवीरास**। पुनर्जागरण का युग प्रायः साहस या उद्यम का युग कहा जाता है। **दाविंस, मोरे, मेकियावेली, गैलीलियो** और **जियोडानो ब्रूनो** ने बौद्धिक क्रान्ति के बीज बोए थे। सत्रहवीं शताब्दी में दर्शन के क्षेत्र में भौतिकी और गणित की प्रधानता हो गई तथा परम्परागत धर्म का अध्ययन गौण हो गया। सत्रहवीं शताब्दी तर्क का युग था। इस युग में **पास्कल, हाब्स, डेकार्ट्स, स्पीनोजा** और **लाइबनीज** मुख्य विचारक हुए हैं।

अठारहवीं शताब्दी को लोग ज्ञान का युग कहते हैं। **लॉक, बर्कले, वाल्तेयर, ह्यूम, रीड, काडिले** और उनके जर्मन आलोचक इस युग के दार्शनिक थे। उन्नीसवीं शताब्दी आदर्श युग कही जाती है। इस युग में **कांट, फीश्ते, हीगल, शॉपनहावर, कामटे, मिल, स्पेंसर, मार्क्स, नीत्शे और किर्कगार्ड** प्रमुख विचारक थे। बीसवीं शताब्दी को विश्लेषण का युग माना गया है। इस युग में **पायर्स ह्वाइटेड, जेम्स, डिवे, बर्ट्रेंड रसेल, बिटग्रेस्टीन, क्रोसे, हर्बर्ट मार्क्यूस, फ्रांज, फैनन चे गुवेरा, आर.डी. लेईग सांतायन** आदि हमारी जानी-पहचानी विभूतियाँ हैं।

यूरोपीय दर्शन की यही यात्रा है। इस यात्रा का मूल जाने बिना यह समझना कठिन है कि ये बुद्धिजीवी पिछली शताब्दी में कुछ प्रगतिशील अवधारणाओं से क्योंकर चिपके रहे। जैसा कि हम जानते ही हैं कि भारतीय दर्शन का ऐतिहासिक विकास बिल्कुल भिन्न तरीके से हुआ है।

काप्रा के विचार

काप्रा हमारे युग के प्रमुख विचारक हैं। उनका मत है कि पश्चिम के विचारकों ने मूल तक सहजज्ञान पर आधारित विवेक

की अपेक्षा विज्ञान को, सहयोग की अपेक्षा प्रतियोगिता को, प्रकृति की सम्पदा का संरक्षण करने की अपेक्षा उसके मनमाने उपयोग को वरीयता दी है और अन्य कारणों की भाँति इन कारणों से गंभीर रूप से सांस्कृतिक असंतुलन उत्पन्न हो गया है जो मौजूदा संकट का, हमारे विचारों और भावनाओं में, हमारे मूल्यों और दृष्टिकोणों में, हमारे सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचों में, अन्तर का मूल कारण है। वह कहते हैं कि **"मौजूदा संकट संवेदनशील संस्कृति से संक्रमण है। व्यक्ति के रूप में, समाज के रूप में, सभ्यता के रूप में और समस्त भूमण्डलीय पर्यावरण तंत्र के रूप में हम ऐसे मोड़ पर आ खड़े हुए है, जहाँ से नया रास्ता शुरू होता है। क्या इस मोड़ पर पश्चिम के मानदण्ड दिग्भ्रान्त मनुष्य जाति की कुछ सहायता कर सकते हैं ?"**

इस महान विचारक का कहना है, **"इसलिए आज हमें मानदण्ड, यथार्थ के नए स्वरूप और हमारे विचारों, हमारी अवधारणाओं तथा हमारे मूल्यों में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है।"**

क्या इसका अर्थ यह है कि मनुष्य जाति के इतिहास में उत्पन्न इस विलक्षण क्रांति के समाधान के लिए पश्चिम के मानदण्ड साधन के रूप में कारगर नहीं रह गये हैं ?

पश्चिम का विचार दर्शन

हम देखते हैं कि पश्चिम के विचार-दर्शन की एक लम्बी यात्रा से जो परिणाम हमें प्राप्त हुए हैं, वह अपूर्ण हैं, त्रुटिपूर्ण हैं और उनसे कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

धर्म की अवधारणा विशिष्ट रूप से भारतीय अवधारणा है। धीरे-धीरे हमारे बुद्धिजीवी यह स्वीकार करने लग गये हैं कि धर्म रिलीजन से भिन्न है। 'रिलीजन' एक उच्चतर अदृश्य नियंत्रण शक्ति में आस्था है, उसकी स्वीकृति है या उस सत्ता का बोध है। हमारे साथ हमारी भावनाएँ और हमारे नैतिक आदर्श, हमारे आचार-विचार या पूजा की हमारी पद्धति या इस जैसी ही हमारी आस्थाएँ, या पूजार्चन की प्रणाली जुड़ी हुई है। **श्री एम. रामजोइस "लीगल एण्ड कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया"** नामक अपनी पुस्तक में लिखते हैं– 'धर्म' संस्कृत भाषा का शब्द है। इसके व्यापक अर्थ हैं। इस जैसा शब्द किसी भी भाषा में नहीं है। शब्द की परिभाषा करना व्यर्थ है। इसकी केवल व्याख्या की जा सकती है। इसके अनेक अर्थ होते हैं। इनमें से कुछ से सम्भवतः हमें इसके अर्थ की व्यापकता का आभास मिल सके। उदाहरणार्थ– 'धर्म' शब्द का प्रयोग न्याय (जस्टिस) के लिए किया जाता है। अर्थात् किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में क्या उचित है, क्या नैतिक है, रिलीजन पर आधारित है, पवित्र या न्यायोचित आचार है, प्राणियों के लिए सहायक है, दान या दया का रूप है ? क्या प्राणियों का, वस्तु का सहज गुण, उनकी विशेषता या चिह्न का, क्या कर्त्तव्य है, क्या विधि, क्या अनुमोदन प्राप्त हो ? इसका अर्थ राज्य-शासन भी है। महाभारत में कहा है कि परिभाषा करना कठिन है। धर्म की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि जो प्राणियों के उत्थान में सहायक हो, उसे धर्म कहते हैं। इसलिए, जो प्राणियों के कल्याण को सुनिश्चित करे, वही निश्चित रूप से धर्म है। हमारे विद्वान ऋषियों ने कहा है कि जो धारण करता है, वह धर्म है।

श्री राम जोइस आगे लिखते हैं कि **"जब धर्म शब्द का प्रयोग राजा या सम्राट् के कर्त्तव्यों या शक्तियों के प्रसंग में किया जाता है, तब उसे 'राजधर्म' कहते हैं। इसी प्रकार जब यह कहा जाता है कि जनता की सुख-समृद्धि के लिए और कल्याणकारी समाज की स्थापना के 'धर्म राज्य' का होना आवश्यक है, तब 'राज्य' शब्द के संदर्भ में धर्म का अर्थ केवल 'विधि' है और धर्म राज्य का अर्थ है–विधि का शासन।"**

भारतीय विचार

सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री गजेन्द्र गडकर का मत है कि संसार के अन्य रिलीजनों की तरह हिन्दू धर्म में किसी एक पैगम्बर के होने की घोषणा नहीं की गई है। इसमें किसी एक ईश्वर की पूजा का विधान नहीं है। इसी प्रकार इसमें किसी एक दार्शनिक अवधारणा की बात नहीं कही जाती है, न इसमें रिलीजन पर आधारित किसी विशिष्ट आचार-प्रणाली या प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। वस्तुतः यह किसी एक रिलीजन या जाति की संकीर्ण परम्पराओं की पुष्टि नहीं करता। यह जीवन-शैली के अलावा कुछ भी नहीं है। इतिहास में भारतीय दर्शन पर बार-बार यह जोर देकर कहा गया है कि हिन्दू धर्म की प्रेरणा का आधार सत्य की खोज है, जो चिरन्तन है और यह खोज इस विश्वास के आधार पर की जाती है कि सत्य के अनेक पक्ष होते हैं। सत्य एक है किन्तु ज्ञानीजन इसकी व्याख्या अलग-अलग रीति से करते हैं।

सी.के.एन. राजा ने **'एक्विटेड बाई हिस्ट्री'** नामक अपनी एक कृति में लिखा है– प्राचीन भारतीय विधि-शास्त्र मे

वर्णित धर्म को अंग्रेजी "लॉ" का पर्याय नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि धर्म शब्द का अर्थ और इसका प्रयोग दोनों ही व्यापक हैं। किन्तु अंग्रेजी में इस शब्द के सटीक तुल्यार्थी शब्द के अभाव में "लॉ" शब्द कुछ ऐसा है जो धर्म के कुछ निकट प्रतीत होता है।

यहाँ धर्म का आशय रिलीजन न होकर "विधि" है। जब हम भावी भारत के लिए किसी बुनियादी ढाँचे के बारे में कुछ भी निश्चय करते हैं तब धर्म के सार्वजनिक नियम ही हमारे आधार होने चाहिएँ।

क्या हम अपने को पश्चिमी दर्शन के व्यापक प्रभाव से मुक्त कर सकते हैं ? क्या हम पश्चिम की विचारधारा का अध्ययन करते समय अपनी विचारधारा की संकल्पना कर सकते हैं, जो विशिष्ट रूप से भारतीय चिन्तन प्रणाली कही जा सके ? हाँ, **महात्मा गांधी, पूज्य गुरुजी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय** ने यह कार्य कर दिखाया है। उदाहरणार्थ– **दीनदयाल जी** पश्चिम की समस्त विचारधाराओं से पूरी तरह परिचित थे।

समष्टि मानवतावाद

मार्क्सवादी और एडवर्ड से टिटो तक के संशोधनवादियों की विविध व्याख्याओं के साथ-साथ दीनदयाल जी **राबर्ट ओवन, फोरियर व कैबे** के सामाजिक प्रयोगों, **सेंट साइमन** के सिद्धान्तों, ग्रेच्यूएनेवूक के समाजवादी सैन्यवाद, **ओ कानर** के कृषि समाजवाद, **ओ ब्राइन** के सर्वहारा समाजवाद, **ब्लेंगुई** का अल्पसंख्यक चेतना सिद्धान्त, **लुईस ब्लास** के विकासवादी समाजवाद, **शुल्ज डेलित्च** के स्वयं सहायता सिद्धान्त, **ब्रूनो नायर, मोएज हेस** और **कार्ल गुन** नामक जर्मन त्रिमूर्तियों के यथार्थ समाजवाद से वे प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः परिचित थे। उन्होंने **लासले, सिम्मोंदी, लेमोनासा** और **प्रोधां** का भी अध्ययन किया था। उन्होंने मार्क्सवाद से पहले और उसके बाद की यूरोपीय विचारधाराओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया था, जिनमें पूँजीवाद, अराजकतावाद और समाजवाद की सभी कोटियाँ आ जाती हैं।

पं. दीनदयाल जी ने इन सभी विचारधाराओं और भारतीय दर्शन की विविध विधाओं को आत्मसात् किया और इसके बाद **समष्टि मानवतावाद** (Integral Humanism) की अवधारणा की थी। यह सनातन धर्म की अभिव्यक्ति है, द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति के बाद युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह अवधारणा आज हमारे लिए चर्चा का, व्याख्या का विषय है।

व्यवहार में, धर्म में, वे सभी आदर्श समाविष्ट हैं, जो शाश्वत हैं, विश्वसनीय आदर्शों के संबंध में निरंतर परिवर्तनशील सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था भी निहित है। उदाहरणार्थ : स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में नैतिकता एक ऐसा विधान है, जो विश्वसनीय है। लेकिन इस नैतिकता को सुरक्षित रखने और इसका संवर्धन करने के लिए जो ढाँचा बना हुआ है, वह न तो शाश्वत है और न ही विश्वसनीय। यह ढाँचा भिन्न-भिन्न युगों और वातावरण में भिन्न-भिन्न हो सकता है। हमारे अपने देश में ही समय-समय पर इस ढाँचे में फेरबदल होते रहे हैं। चर्च के धर्म में इस क्षेत्र में किए गए कठोर उपायों की प्रतिक्रियास्वरूप मार्क्स तथा यूरोप के अन्य विचारकों ने विवाह और परिवार की संस्था को बुरा बताया। इससे कुछ कम्युनिस्ट देशों में यह गलत धारणा उत्पन्न हो गई कि सच्चे कम्युनिस्ट के लिए नैतिकता का होना आवश्यक नहीं है। उन्होंने एक उल्टी सी बात कही। किन्तु **लेनिन** और **ट्राटस्की** जैसे कुछ गम्भीर नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस मत को बुरा बताया। इन नेताओं का मत रहा है कि जो अपने व्यक्तिगत जीवन में उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं है, उसके सार्वजनिक जीवन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। नैतिकता एक विश्वसनीय विधान है। विवाह आदि संस्थागत व्यवस्था समाज में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के अनुसार या उसके साथ-साथ बदलती रहती है। हमें धर्म के व्यवहार के बारे में इसी प्रकार के दृष्टिकोण को समझकर भावी भारत के लिए बुनियादी ढाँचे की प्रस्तावना पर विचार करना चाहिए। □

सेकुलर का अर्थ

"सेकुलर स्टेट का यह आशय नहीं कि हम जनता की धार्मिक भावनाओं को ध्यान में नहीं रखेंगे। सेकुलर स्टेट का कुल मिलाकर अर्थ यह है कि इस संसद को किसी विशिष्ट रिलीजन को बाकी जनता पर लागू करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा। यह संविधान केवल इसी सीमा तक संसद के अधिकार को स्वीकार करता है। सेकुलरिज्म का अर्थ– 'रिलीजन' को समाप्त करना नहीं होता है।"

– डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर

भारत में पंथनिरपेक्षता और अंग्रेजी साम्राज्य

□ डॉ. उपेन्द्र विनायक सहस्त्रबुद्धे

भारत की मान्य और 'सर्वश्रुत परम्परा 'सर्वपंथ समभाव' रही है और इस जनश्रुत परम्परा को अंग्रेजों ने रेलिजन और सेक्युलरिज्म जैसे शब्द-भाव सामर्थ्य से विकृत करने का न केवल प्रयास किया अपितु भारत में धर्मरिपेक्षता और सम्प्रदाय निरपेक्षता जैसे शब्दों को प्रचलन में लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी किया। भारतीयों के मन में आत्महीनता का भाव उत्पन्न करने के लिए अंग्रेजों ने अत्यन्त चालाकी के साथ कई सिद्धान्त गढ़ने का दुस्साहस भी किया जिससे भारतीय जनमानस में आत्महीनता की दुष्प्रवृत्ति ने धर्मनिरपेक्षता और पंथनिरपेक्षता के बीच के अन्तर को ही समाप्त कर दिया। अंग्रेजों के लिए धर्म और पंथ का भेद उनके चिन्तन की परिधि के बाहर था ऐसा कहना शायद उचित नहीं होगा क्योंकि उनके लिए धर्म का अर्थ भी Religion (रेलिजन) है और पंथ के लिए भी यही शब्द अंग्रेजी के उपयोग में लाया जाता है। जबकि उनकी ईसाइयत की अवधारणा भी कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट जैसे अर्थों में विभाजित है। स्वयं अंग्रेज भी सेक्युलर शब्द के ग्रहणीय भाव में ईसाई विरोध सहन करने का सामर्थ्य नहीं रखते हैं और उनके यहाँ रेलिजन और राज्य में संघर्ष में भले ही सेक्युलर का अर्थ रेलिजन से गृहीत किया गया प्रतीत होता है किन्तु सत्य यही है कि उनका आशय भी पंथ निरपेक्षता से ही रहा है। इतना ही नहीं, उन तमाम देशों में जहाँ कहीं भी ईसाई वर्ग सत्ता में है वहाँ पंथनिरपेक्षता ही यथार्थ में सेक्युलर स्टेट का अर्थ बना हुआ है।

सभी आक्रमणकारी

अंग्रेजों ने भारत में जैसी पारस्परिक मजहबी सहिष्णुता की परम्परा का अनुभव क्रिया था वह अंग्रेजों के लिए विस्मयकारी था और अंग्रेजों ने भारत में अपने शासन की निरन्तरता और चिरन्तनता के लिए यहाँ पर परस्पर फूट उत्पन्न करने के प्रयासों को जारी रखा। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद करने के सिवा उन्होंने हिन्दू जीवन-दर्शन को भी विभाजित करने का प्रयास किया और इन प्रयासों में अंग्रेजों ने भारतीयों में हीन भावना उत्पन्न करने में सफल प्रयास करते हुए सनातन आध्यात्मिक मान्यताओं पर आघात करते हुए द्रविड़ियन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। बिशप काल्डवेल ने १८५६ में अपनी पुस्तक **'कम्परेटिव ग्रामर ऑफ द्रविड़ियन लैंग्वेज'** में भाषा के आधार पर द्रविड़ियन सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए सिद्ध करने का प्रयास किया कि हिन्दू भी इस देश के मूल निवासी नहीं है और वे भी इस देश पर आक्रमणकारी हैं। अन्तर केवल ऐतिहासिक समय का है। काल्डवेल के इस सिद्धान्त की विवेचना डॉ. किटेल, डॉ. एच गुमइर्ट, श्री.बी.ए. स्मिथ जैसे विद्वानों ने की और द्रविडियन सिद्धान्त को पुष्ट किया। इससे प्रभावित होकर कनकसभाई पिल्लई ने भिन्न भाषा-भिन्न संस्कृति-भिन्न संस्कार और भिन्न समूह को आधार बनाकर भिन्न द्रविड़ देश की भूमिका भी बना डाली। शोधकर्ता फांसिस, व्हाइट एलिस एवं मिशनरी बेसची पोप राबर्ट काल्डवेल आदि ने द्रविड़ संस्कृति की रूपरेखा भी प्रकाशित कर दी। इसके बाद सन् १९१२ में कारड्यू, मुरे हैमिक, एच.एल.डब्ल्यू. गिलमैन और लिनेल डेविडसन जैसे आई.सी.एस. अधिकारियों ने 'मद्रास द्रविड़ियन एसोसिएशन' की स्थापना कर दी। इसका असर पूरे देश में होने लगा और आर्य-अनार्य विवाह से भारत के एकजुट सनातनी समाज में **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'** के पूर्व स्थापित संस्कार पर आघात हुआ और भारतीय राष्ट्रीयता के आधार को ही धक्का पहुँचा। अंग्रेजों की इस कुटिल योजना का सम्बन्ध पूरी तरह सेक्युलर शब्द की गलत व्याख्या को ही सम्पुष्टित करना था और इसने उन्हें लंबे समय तक सफलता दिलायी और अंग्रेजों की इन चालों के खिलाफ भारतीय विद्वानों का चिंतन ध्वस्त ही रहा, वाणी अवरुद्ध रही, कलम थम ही नहीं गयी अपितु कलम ने तो अंग्रेजों के भाव को ही प्रखर, पुष्ट और सार्थक करना शुरू कर दिया था। पंथनिरपेक्षता के बजाय सेक्युलर की व्याख्या धर्मनिरपेक्ष रूप से ही करते रहने में अंग्रेज अभी तक सफल हैं। लोकमान्य तिलक ने अपने चिंतन और लेखन सामर्थ्य से अंग्रेजों के इस सिद्धान्त को गलत साबित कर दिया। मगर अंग्रेज बने रहने में ही गर्व महसूस करने वाले आज भी सच्चाई को कबूल करने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। वास्तव में धर्मनिरपेक्षता अथवा पंथनिरपेक्षता मे से कौन सा शब्द भारत के लिए प्रभावी उपयुक्त और उपयोगी रहा हे इसकी विवेचना और चिंतन भरतीयों के बजाय अंग्रेजों ने अधिक गंभीरता से की है और उनकी यह गंभीरता निश्चित रूप से भारत पर अपनी सत्ता कायम रखना रहा है। अंग्रेजों ने जब भारत की धरती पर एक व्यापारिक कंपनी के माध्यम से अपने

कदम रखे थे तब भी अंग्रेज यह समझने लगे थे कि भारत भले ही अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभाजित है किन्तु यहा की बहुत बड़ी बात पंथ की निरपेक्षता रही है और जिन-जिन मुस्लिम शासकों ने पंथनिरपेक्षता के रूप को कूटनीतिक रूप से अपनाया वह तो 'महान्' कहलाया और वास्तव में जिस मुसलमान ने पंथनिरपेक्ष मानसिकता के समाज में पंथिक शासन को जबरदस्ती थोपने का प्रयास किया उसके खिलाफ जनमानस में विद्रोह ही पनपता रहा। अकबर, दाराशिरोह और औरंगजेब का भविष्य उपर्युक्त स्थितियों में समझा जा सकता है। वैसे तो अकबर की पंथनिरपेक्षता की कूटनीति को समझने वाले राणाप्रताप ने अकबर के खिलाफ अनवरत संघर्ष जारी रखा था।

धर्म का कवच

अंग्रेजों ने जब १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता सग्राम को शिकस्त देने में सफलता प्राप्त की तब सर्वत्र हिन्दू और मुसलमानों में भेद क़रने और स्थापित भेद का भरपूर लाभ उठाने के लिए न्याय प्रणाली में जूरी सिस्टम तक का उपयोग किया। बाद में अंग्रेजों का यही फार्मूला भारत के विभाजन का भी कारण बना और अंग्रेजों के इस जाल में कांग्रेस भी बुरी तरह से उलझी रही और अंग्रेजों की पंथनिरपेक्षता की स्थापित अवधारणा के नक्शेकदम पर भारत में पंथनिरपेक्षता के स्थान पर धर्मनिरपेक्षता का राग आज तक यथावत अलापा जा रहा है जब कि वर्तमान में यह शब्द राजनीतिक स्वार्थ साधने का प्रतीक बन चुका है और लोग इस शब्द का यथार्थ भी जानने लगे हैं। स्टेट और नेशन की भाँति धर्मनिरपेक्षता और पंथनिरपेक्षता में जीवन का अन्तर है। नेशन अपने आप में जीवन का प्रतीक है। उसी प्रकार धर्म का कार्य राष्ट्र के जीवन से रहता है और धर्म के बिना राष्ट्र निर्जीव हो जाता है। किन्तु पंथों की अधिकता से भी धर्म को सबलता मिलती है और बहुपंथीय राष्ट्र भी जीवन की विविधता को ही प्रकट करते हैं जब कि धर्मविहीन राष्ट्र प्रायः मृतप्राय या चेतनाशून्य हो जाते हैं। हमारे देश की हजारों वर्षों की गुलामी के ब्राद भी राष्ट्र का स्वातंत्र्य ही वह तत्त्व रहा हैं जिसने राजनीतिक स्वातंत्र्य के प्रयासों को निरन्तर बनाये रखा और धर्म ही वह तत्त्व रहा है जिसके कारण साम्प्रदायिक हमलों और सांस्कृतिक प्रदूषण के बाद भी हमारी सांस्कृतिक मर्यादा बनी रही है।

सृष्टि का मूल भारत

मानवसृष्टि का जब विचार होता है तब यह तथ्यात्मक विचार हमारे समक्ष उपस्थित होता है कि मनु से ही मानव की उत्पत्ति हुयी अर्थात् इस सृष्टि का मूल भी भारत है और यही जीव-दर्शन का आध्यात्मिक केन्द्र भी बना। जनमानस में श्रेष्ठ जन ही देवता कहलाये। उस काल में राज्य की समग्रता के कारण उनका सीमाओं में विभाजन नहीं था और समान धर्म-संस्कृति के कारण तत्कालीन धर्म का उल्लेख कहीं-कहीं 'परस्पर प्रीत धर्म' और 'राष्ट्र धर्म' के रूप में भी आया है जब कि तत्कालीन समय में देव संस्कृति-मानव और दानव संस्कृतियों का विभाजन पुष्ट रूप में मिलता है। वैदिक और परवर्ती साहित्य में भी 'राष्ट्र' का उपयोग समस्त मानव जाति के लिए ही होता रहा है और प्रायः राजा और राष्ट्र समानार्थी रहे। किन्तु जब अनेक क्षेत्रीय राज्यों को अस्तित्त्व प्राप्त हुआ तब भी राष्ट्र की समग्रता बनी रही और अनेक राज्यों के बाद भी सांस्कृतिक परिवेश के आधार पर 'राष्ट्र' का चरित्र एक समान बना रहा। इस बीच अनेक राज्यों के राज्याध्यक्षों का पंथ वैभिन्य रहा। किन्तु सर्वधर्म समभाव की भावना में धर्म शब्द में पंथ का भाव भी प्रकट होता रहा। तथापि पंथनिरपेक्षता का राजकीय चरित्र राष्ट्रधर्म के विकास और निरन्तर संस्थापना में सहायक बना रहा। यह परम्परा तब तक निर्बाध रूप से चली और चलती रही जब तक देश पर इस्लामी लुटेरों के हमले नहीं हुए। मुस्लिम आक्रान्ताओं के कालखण्ड में यह देश सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में परकीय शासन के विरुद्ध संघर्षरत रहा। इस्लामी आक्रमण से देश में पंथिक शासन को स्थापित करने के प्रयासों के कारण अनेक गंभीर प्रसंग भी उपस्थित हुए। किन्तु जब १८५७ में अंग्रेजों के खिलाफ इस देश ने असफल युद्ध किया तब इस देश के मुसलमान भी उस युद्ध में शामिल थे और समूचा युद्ध प्रतीकात्मक रूप से बहादुर शाह जफर के नेतृत्व में लड़ा गया और जफर को मुगलिया सल्तनत का अंतिम बादशाह भी कहा गया है। इस एक युद्ध के समय देश का वातावरण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए राष्ट्र का पंथनिरपेक्षता के साथ राजकीय स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष रूप निरूपित किया जाता है और अंग्रेजों ने इसी पंथनिरपेक्षता को सेक्युलर शब्द की आड़ में नष्ट करके धर्मनिरपेक्षता की अपनी अवधारणा को स्थापित किया तथा पंथनिरपेक्षता के स्वरूप को ही तोड़ दिया।

धर्म राज्य का अर्थ

भारत में धर्मपूर्ण राज्य का अर्थ यही रहा कि 'राज व्यवस्था का संचालन समाज हित में किया जाय। राज्य के किसी भी वर्ग को अतिशय रूप में अधिकार नहीं होने चाहिएं। राज्य के कानून राज्य के सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होने चाहिएं यही परस्परता राष्ट्रधर्म-प्रजाधर्म-लोक संस्कार और सास्कृतिक राष्ट्र को प्रकट करती है और यही धर्म है।

जबकि पंथ राष्ट्र जनों की सांस्कृतिक भेद क्षमता और सामर्थ्य को विभिन्न ढाँचों में बाँधने का काम करता है। वस्तुतः भारत में राज्य संचालन पर इस विभिन्नता का कोई प्रभावी परिणाम नहीं होना चाहिये, ऐसी मान्यता स्थापित और क्रियाशील रही थी यही स्थापित मान्यता पंथनिरपेक्षता कहलाती है।

वैदिक काल में जब राष्ट्र शब्द का उपयोग होने लगा था तो सम्पूर्ण समाज की मानवीय संस्कृति ही 'सनातन धर्म' कहलाती थी और उस समय में भी समाज में विविध क्षेत्रीय संस्कारों का स्वरूप दिखाई पड़ता था। यही क्षेत्रीय संस्कार अपनी पृथकताओं के साथ पंथ कहलाते थे और राज्यों का संचालन पंथों के भेदभाव से परे रहकर किया जाता था जब कि राष्ट्र का संचालन तब भी राजधर्म और धर्मनिष्ठा से होता था। राज्य अपने राष्ट्र के कारण उस समय भी धर्माधिष्ठित होते थे किन्तु उनका संचालन धर्मनिष्ठ होते हुए भी पंथनिरपेक्ष होता रहा। कालान्तर में राज्यों के छोटे-छोटे स्वरूपों में अनेक राज्यों के गणतंत्र भी सामने आये। इस राज्य संगठन के दौर में भी पंथनिरपेक्षता भारतीय शासन व्यवस्था का आधार रहा जिससे सामाजिक विघटन पर अंकुश लगता था और राज्यों के बीच सीमा भेद के होने के बाद भी राज्य की प्रजा समग्र रूप से एक राष्ट्र ही रही क्योंकि सीमाओं के कारण राज्यभेद और राजा की पृथकता तो थी किन्तु सामान्य जनता में पृथकत्व का अभाव था। सर्वधर्म समभाव के आदर्श के कारण ही जन इच्छा शक्ति के परिणामस्वरूप विकास के काल में गणतंत्रीय शासन व्यवस्था का निर्माण हो सका था।

परकीय शासन

भारत में पंथनिरपेक्षता और अंग्रेजी मानसिकता को समझने के लिए उस कालखण्ड की राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों का आकलन और संदर्भ विवेचन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्रासंगिक है। १६-१७वीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड की आम हालत अच्छी नहीं थी। शहरों का विकास नहीं हुआ था और जनसंख्या की कमी के बावजूद भुखमरी के हालात थे। १६वीं शताब्दी में ब्रिटेन का जनजीवन सामान्यतः असभ्यों जैसा ही था और भारत जैसे सभ्य और सुसंस्कृत समाज से उसका पाला पड़ा था। सोलहवीं शताब्दी तक भारत को लगातार युद्धों से सामना करना पड़ रहा था। महमूद गजनवी- मोहम्मद बिन कासिम व मोहम्मद गोरी जैसे लुटेरों के आक्रमण में भारत के वैभव पर क्षीणता के गंभीर छींटे पड़े थे। १५२६ में इब्राहिम लोदी को पश्चिमी एशिया से आए बाबर के हाथों पानीपत में पराजित होना पड़ा था। बाद के दौर में भारत में इस्लाम के विस्तार के अनेक प्रयासों ने भारत की शासन प्रणाली को प्रायः मजहबी उन्मादी बना रखा था। अंग्रेजों ने औरंगजेब की मौत के बाद कमजोर हुए मुस्लिम शासन की दीनता का लाभ उठाकर व्यापारिक कोठियों की आड़ में अपना राज विस्तार शुरू कर दिया। मुस्लिम उत्पीड़न से त्रस्त भारतीय समाज में अंग्रेजों की घुसपैठ का जवाब १८५७ में हिन्दू-मुसलमानों ने साथ-साथ दिया मगर बाद में आंग्रेजों की राजनीतिक सत्ता ने पूरे देश पर कब्जा कर लिया।

शब्द-जाल

अंग्रेजी राज में अंग्रेजों ने पहले तो यहाँ की विभिन्नता को समझने का प्रयास किया। किन्तु बाद में उन्होंने उपासना पद्धतियों की भिन्नता को विविध धर्म के रूप में निरूपित करते हुए जैन-सिख-बौद्ध मतावलंबियों को धर्मावलम्बी के रूप में स्थापित कर दिया। अंग्रेजों को इस प्रकरण में सर्वाधिक सफलता इस देश के मुसलमानों में अलगाववाद पैदा करने में मिली और सिविल सर्विसेज की परीक्षा में संस्कृत और अरबी को भी शामिल करने की माँग ने अंग्रेजों को अपने इस मकसद में सफलता का पहला पड़ाव भी हासिल हो गया। कांग्रेस के जन्म के बाद कथित रूप से राष्ट्रीय संगठन के चरित्र को दर्शाने के लिए कांग्रेस ने अपना तीसरा अध्यक्ष एक मुसलमान को बनाने के लिए तैय्यब जी को स्वीकार कर लिया। उस दौर में तो भारत को क्षेत्रीय भिन्नताओं के आधार पर आर्य, द्रविड़, मुसलमान, बंगाली, सिख, जैन, मारवाड़ी जैसे २३ धर्मों में बाँटने की कोशिशों को अंग्रेजों ने भरपूर मदद पहुँचायी और उन्होंने शासन व्यवस्था को धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था का नाम देना शुरू कर दिया। कांग्रेस ने अपने संगठन में १८९९ की २६ सितंबर को लखनऊ में प्रारंभ हुए सम्मेलन में मुसलमानों के प्रतिनिधित्व की महत्ता के माध्यम से हिन्दू-मुसलमान के बीच धर्मनिरपेक्षता के अंग्रेजी फार्मूले को न केवल स्वीकार किया अपितु सिख-बौद्ध और जैनियों के मध्य में विभाजन की अवास्तविक सीमा रेखा को वास्तविक विभाजन रेखा के रूप में महत्त्व देना शुरू कर दिया। १९१९ तक अंग्रेजों को पंथनिरपेक्षता के बजाय देश में समानान्तर धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को स्थापित करने का पर्याप्त अवसर मिल गया। इतना ही नहीं, अंग्रेजों के इस शब्द-षड्यंत्र के जाल में भारतीय जनमानस बुरी तरह से फँसता चला गया। आज हमारे देश का उच्च चिंतकवर्ग इसी शब्द जाल में फंसकर धर्मनिरपेक्षता और पंथनिरपेक्षता के बीच उलझकर रह गया है।

□

पंथनिरपेक्षता का निहितार्थ

□ अटलबिहारी वाजपेयी

हमारा संविधान किस सीमा तक ऐसे राज्य की स्थापना करता है जो सेकुलरवाद अथवा 'सर्वधर्म समभाव' पर आधारित है। संविधान के अनुच्छेद १४, १५, १६ और २५ "सर्वधर्म समभाव" का प्रतिपादन करते हैं। उनमें धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध और कानून के समक्ष बराबरी और विधियों के समान संरक्षण की व्यवस्था की गई है। साथ ही वह प्रतिष्ठा और अवसर की समता सभी नागरिकों, फिर वे किसी भी धर्म के हों, प्राप्त कराने की गारण्टी देता है। वास्तव में संविधान की उद्देशिका (प्रीएम्बल) में प्रतिष्ठा (स्टेटस) एवं अवसर की समता सम्मिलित है तथा यह भी कहा गया है कि भारत के सब नागरिकों को यह समता प्राप्त करानी है। इस स्थिति में यदि संविधान के निर्माताओं ने यह सोचा हो कि उद्देशिका में अलग से "सेकुलर" शब्द को सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है तो यह बात समझ में आती है।

आपात्काल की उपज

किन्तु संविधान बनने के २५ वर्ष बाद एक संशोधन के द्वारा संविधान की उद्देशिका में **'पंथनिरपेक्षता'** शब्द जोड़ने का फैसला किया गया। उन दिनों देश में आपातस्थिति लागू थी। लोकसभा का ५ साल का कार्यकाल समाप्त हो चुका था और वह एक वर्ष का बढ़ाया हुआ कार्यकाल जी रही थी। विरोधी दलों के अधिकांश प्रमुख नेता नजरबन्द थे। सत्तापक्ष के कुछ नेताओं को भी विरोध के जुर्म में जेल में बन्द कर दिया गया था। प्रेस पर सेंसरशिप लागू थी। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश था। संसद में इस आशय की शिकायतें की गई थीं कि संविधान संशोधन पर चर्चा के लिए जिन सभाओं और बैठकों का आयोजन हुआ था उनके लिए भी प्रशासन द्वारा इजाजत नहीं दी गयी। विधि मंत्री श्री गोखले ने यह कहकर सरकार का बचाव करने का प्रयत्न किया कि वे बैठकें किसी और उद्देश्य से बुलायी गयी थीं।

वस्तुतः संविधान संशोधन का उद्देश्य उसकी उद्देशिका में केवल कुछ नये शब्द जोड़ने का नहीं था। विधेयक के साथ "उद्देश्यों और कारणों" का जो कथन संलग्न था उसके अनुसार शासन का "उद्देश्य देश में सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति लाना रहा है।" सरकार के अनुसार "स्वार्थी तत्त्व अपने स्वार्थ के लिए सार्वजनिक अहित करने में लगे हुए हैं।" विधि मंत्री श्री गोखले के वक्तव्य के अनुसार– "सरकार के लिए कुछ बातें आवश्यक हो गयी हैं। इसीलिए संविधान में समाजवाद, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्र की अखण्डता के उच्च आदर्श अभिव्यक्त रूप से रखे जा रहे हैं।"

वास्तविक उद्देश्य

यह सभी जानते हैं कि संविधान संशोधन का उद्देश्य नीति निर्देशक तत्त्वों को मौलिक अधिकारों पर प्राथमिकता देना, संविधान में संशोधन करने की संसद की इच्छा को सर्वोपरि बनाना और किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने के न्यायपालिका के अधिकार में कटौती करना था।

यद्यपि विधि मंत्री श्री गोखले ने लोकसभा में संशोधन विधेयक पेश करते हुए यह कहा कि समाजवाद और सेकुलरवाद का समावेश शब्दों का खेल नहीं है, किन्तु उन्होंने इन दोनों को समाविष्ट करने की आवश्यकता पर प्रकाश नहीं डाला। ध्यान देने की बात यह है कि समाजवाद और सेकुलरवाद दोनों का उल्लेख एक ही सांस में किया गया। उनकी न तो पृथक चर्चा की गयी और न उन्हें परिभाषित करने का ही प्रयत्न हुआ।

इस संबंध में लोकसभा में जो बहस हुई उसमें भी अनेक सदस्यों ने यह प्रश्न पूछा था कि आखिर सेकुलरवाद को लाने की आवश्यकता क्या है ? कम्युनिस्ट पार्टी के श्री इन्द्रजीत गुप्त ने तो यहा त्तक कहा कि भारत सेकुलरवाद लोकतंत्र ही है। सभी धर्मावलम्बियों को, यहाँ तक कि धर्म को न मानने वाले को भी राज्य समान आदर और अधिकार देता है। फिर उन्होंने पूछा कि सेकुलरवाद को संविधान में लाने का एक ही अर्थ निकाला जा सकता है कि हम लोकतंत्र के सेकुलरवादी स्वरूप को अधिक दृढ़ करना चाहते हैं और यह कि हम सभी धर्मों को मानने वालों को यह आश्वासन देना चाहते हैं कि हम संविधान के सेकुलरवादी तत्त्व को और भी बलशाली करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि भारत अपने अन्य पड़ोसियों की तरह एक मजहबी या धार्मिक राज्य नहीं है। उन्होंने इस पर बल दिया कि सरकार बताये कि यह सेकुलरवाद का समावेश करके विभिन्न मतावलम्बियों विशेषकर अल्पसंख्यकों को क्या आश्वासन देना चाहती है।

जिन सदस्यों ने भारत को सेकुलर घोषित करने का समर्थन किया उन्होंने भी "सेकुलर" को उसके शब्दकोशीय अर्थ से पृथक् करके देखने का आग्रह किया। सबसे उल्लेखनीय भाषण को सरदार स्वर्णसिंह का हुआ। वे संविधान संशोधन के संबंध में बनी सरकारी समिति के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट कहा कि हमारा 'सेकुलर' शब्दकोश के 'सेकुलर' से भिन्न है, दोनों समानार्थी नहीं हैं। उन्होंने यहाँ तक कहा कि शब्दकोश का सेकुलर जहाँ तक मेरा प्रश्न है, बहुत अधिक प्रशंसनीय परिकल्पना नहीं है। फिर उन्होंने यूरोप में चर्च और राज्यों के बीच हुए संघर्ष का उल्लेख करते हुए कहा कि पश्चिम का 'सेकुलर' इस पृष्ठभूमि के कारण हमें स्वीकार नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि हमारे देश में 'सेकुलर' ने एक निश्चित अर्थ प्राप्त कर लिया है और वह यह है, कि हमारे संविधान के अधीन कानून की नजर में अलग-अलग धर्मों को मानने वाले समान होंगे। उन्होंने यह भी कहा कि हमारे सेकुलर में कोई धर्मविरोधी ध्वनि नहीं होगी और यह सब धर्मों के समादर के अर्थ में व्यवहार में आयेगा।

संविधान सभा में हुई चर्चाओं में जो चर्चा सेकुलर परिकल्पना के सबसे अधिक निकट कही जा सकती है वह अल्पसंख्यकों और उनके मूल अधिकारों पर विचारार्थ बनी सलाहकार समिति के प्रतिवेदन पर, विशेषतः मुस्लिम लीग के कुछ सदस्यों की माँग पर हुई कि मुस्लिम सदस्य पृथक् निर्वाचन के आधार पर चुने जायें। समिति के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल थे और प्रतिवेदन प्रस्तुत करते और उस पर विवाद का उत्तर देते हुए जो भाषण उन्होंने दिया वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। (सरदार पटेल के भाषण का उक्त अंश अलग से एक लेख में दिया गया है– सं.)।

प्रश्न यह है कि जब संविधान सभा में, और उसके बाहर देश में भी, इस प्रश्न पर लगभग मतैक्य था कि राज्य इस अर्थ में सेकुलर होना चाहिए कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा और यह कि वह धर्म के आधार पर नागरिकों में किसी तरह का भेदभाव नहीं करेगा, संविधान के निर्माण के पाँच दशक बाद सेकुलरवाद को लेकर इतना तीव्र विवाद क्यों उठ खड़ा हुआ है ?

विवाद के कारण

इसके मुख्यतः तीन कारण दिखायी देते हैं। सिद्धान्ततः यह स्वीकार करते हुए भी कि भारतीय परिकल्पना का सेकुलरवाद सर्वधर्म समभाव से प्रेरित होगा और धर्मविरोध का रूप नहीं लेगा, शासन द्वारा अपनायी गयी नीतियों और उनके कार्यान्वित करने के ढंग से इस आशंका ने जन्म लिया कि राज्य धर्म को प्रगति के मार्ग में एक रोड़ा समझता है और उसे दूर रखना चाहता है। सर्वधर्म समभाव के मूल में सब धर्मों और उनके मानने वालों के बीच में जो समानता अभिप्रेत थी, उसका भी व्यवहार में पालन नहीं हुआ। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों समुदायों में, सही या गलत, यह भावना जड़ पकड़ने लगी कि सत्ता की होड़ में राजनीतिक दल तराजू के पलड़ों को बराबर रखने के बजाय कभी एक तरफ और कभी दूसरी तरफ झुका देते हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए छोटे परिवार के आदर्श को कार्यान्वित करने के लिए प्रोत्साहित और निरुत्साहित करने की किसी योजना को इस आधार पर व्यवहार में लाने से इनकार करना कि उससे कुछ वर्गों की धार्मिक आस्थाओं को ठेस लगेगी, सेकुलरवाद के सिद्धान्त को ही हास्यास्पद बना देता है। प्राचीन काल में विवाह के अवसर पर वधू को "अष्ट पुत्रवती" होने का आशीर्वाद यदि आज की स्थिति में धर्म-सम्मत मानकर व्यवहार में लाया जायेगा तो कुछ वर्षों में देश की दशा क्या होगी इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

समान नागरिक संहिता का प्रश्न

संविधान के निदेशक तत्त्व के अनुसार राज्य को सभी नागरिकों के लिए समान सिविल कानून का प्रयास करना है। ऐसा करने में राज्य की अब तक की विफलता ने भी इस धारणा को बनाने में सहायता दी है कि सामाजिक सुधारों की दिशा में भी इसलिए पग नहीं उठाए जा रहे कि उनसे कुछ वर्गों के असंतुष्ट हो जाने और फलस्वरूप चुनाव में घाटा होने की आशंका है। वन्दे मातरम् राष्ट्रगीत के गायन पर आपत्ति भी उस मनोवृत्ति का ही परिचय देती है जिसकी चरम परिणति भारत के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन में हुई। भारत को "सेकुलर" बनाने के पीछे यह भी भावना थी कि विभाजित भारत अविभाज्य रहेगा और धर्म, जाति, भाषा के आधार पर अब किसी नये विभाजन की मांग नहीं उठेगी।

मुझे लगता है कि प्रारम्भ में ही "सेकुलर" का अनुवाद **"धर्मनिरपेक्ष"** के बजाय **"सम्प्रदायनिरपेक्ष"** या **"पंथनिरपेक्ष"** कर दिया जाता तो अनेक आशंकायें जन्म नहीं लेती। "सेकुलर" शब्द के अर्थ के बारे में भले ही भिन्न-भिन्न मत रहे हों किन्तु उस मतभिन्नता में इस बात पर एकता थी कि राज्य का स्वरूप असाम्प्रदायिक होना चाहिए। इस प्रश्न पर आज भी एक मत

है। संविधान के नये हिन्दी संस्करण में "सेकुलर" का अनुवाद "पंथनिरपेक्ष" करके इस भूल के परिमार्जन का प्रयास हुआ है। आवश्यक है कि "सेकुलर" शब्द के सही अनुवाद को सब स्वीकार करें और उसे प्रचारित करें।

नकारात्मक रवैया

"सेकुलर" की सही परिकल्पना की समझ न होने के कारण ही कुछ तत्त्व भावनाओं से जुड़े कुछ प्रश्नों पर नकारात्मक रवैया अपनाते हैं जिससे समूची परिकल्पना पर ही प्रश्न चिह्न लग जाता है। राजकीय समारोहों के उद्घाटन के अवसर पर दीप प्रज्वलन की परिपाटी या नये जहाज के जलावतरण की मंगलमय वेला में नारियल तोड़ कर प्रसन्नता प्रकट करना किसी उपासना पद्धति का भाग न होकर भारतीय संस्कृति और परम्परा का अंग है। "तमसो मा ज्योतिर्गमय" अंधकार से प्रकाश की ओर– यह मानव की प्रगति यात्रा का दिशानिर्देश है। चिरकाल से मनुष्य अंधकार की शक्तियों को नन्हा सा दीप जलाकर चुनौती देता आया है। सार्वजनिक समारोहों में दीप का प्रज्वलन इसी का प्रतीक है। इसी प्रकार ऐसे अवसरों पर चुने हुए वैदिक मंत्रों के पाठ का जो विरोध करते हैं उनसे मैं पूछना चाहूँगा कि यदि कोई मंत्र हमें "संगच्छध्वं संबदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" (साथ चलने, साथ बोलने और साथ सोचने) की प्रेरणा देता है तो उस पर आक्षेप क्यों होना चाहिए ?

व्यर्थ का विवाद

कभी-कभी राष्ट्रीय त्योहारों को लेकर व्यर्थ का विवाद खड़ा कर दिया जाता है। दिवाली, दशहरा, होली जैसे सामाजिक समारोहों को किसी विशिष्ट पूजापद्धति से जोड़ना ठीक नहीं है। पौराणिक काल से प्रचलित ये त्योहार हमारी सांस्कृतिक समृद्धि और विविधता के द्योतक हैं। प्रायः सभी त्योहार ऋतुओं के परिवर्तन और नई फसल के शुभागमन से संबंधित हैं। उनके साथ लोकगीतों और लोकनृत्यों की परम्परा रही है। पंजाब में बैसाखी, असम में बिहू, केरल में पोंगल, तमिलनाडु में उगादी ऐसे ही त्योहार हैं। ईद तथा क्रिसमस त्योहार का समारोह पक्ष सामाजिक मेल-मिलाप तथा सद्भावना को बढ़ावा देता है। अब तो गणेशोत्सव तथा दुर्गापूजा भी राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित होने लगे हैं। इन त्योहारों के साथ जो धार्मिक-क्रियाकलाप जुड़ गये हैं उनमें और त्योहारों के सामाजिक समारोहों में भेद न समझना इन त्योहारों को राष्ट्रीय स्वरूप देने में सहायक होगा।

विशेष अधिकारों का प्रावधान

सेकुलरवाद को लेकर आज जो चर्चा हो रही है उसमें विवाद का एक मुख्य मुद्दा धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग के लिए विशेष अधिकारों का प्रावधान है। अनुच्छेद ३०(१) उनके लिए विशेष अधिकार की व्यवस्था करता है जो किसी अल्पसंख्यक वर्ग के हैं, चाहे वह धर्म पर या भाषा पर आधारित हों। ३०(१) में यह व्यवस्था है कि सभी अल्पसंख्यक वर्ग, जो धर्म या भाषा पर आधारित हैं, को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं उनका प्रबन्ध करने का अधिकार होगा। हम सेकुलरवाद की विवेचना कर रहे हैं इसलिए धर्म पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे।

अनुच्छेद ३०(१) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार का विषय उच्चतम न्यायालय के कई निर्णयों का विषय रहा है।

न्यायपालिका के निर्णय

यह कहा गया है कि यह अनुच्छेद दो अधिकार देता है : अपनी रुचि की संस्थाएँ स्थापित करने का तथा उनका प्रबन्ध करने का। "स्थापित" करने के अधिकार से आशय है सत्ता में लाने का अधिकार। जैसे कि जस्टिस खन्ना ने **"सेंट जैवियर्स कालेज बनाम गुजरात राज्य"** में व्याख्या की है : किसी संस्था का प्रबन्ध करने के अधिकार से आशय है कि उस संस्था का कार्यसाधक प्रबन्ध करने का अधिकार। संस्था का प्रबन्ध नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए ताकि संस्थापक या उनके द्वारा मनोनीत व्यक्ति संस्था को उस रूप में ढाल सकें जैसे वे अपने विचार से उपयुक्त समझें तथा जैसा कि वे अपने विचार से यह समझें कि समुदाय के हित में सामान्य रूप से संस्था के हित में विशेष रूप से क्या होगा। "अपनी रुचि की शिक्षा संस्था" "शिक्षा संस्था" को विशेषित करती है और यह बताती है कि अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित एवं प्रबंधित शिक्षा संस्थाओं का किसी एक विशेष वर्ग का होना आवश्यक नहीं है। अल्पसंख्यकों को यह अधिकार एवं स्वतंत्रता है कि वे अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करें और उनका प्रबन्ध करें।

अस्तु, प्रबन्ध की स्वायत्तता की व्यवस्था धर्म पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग की संस्थाओं के लिए अनुच्छेद ३०(१) में है। यह अवश्य कहा गया है कि राज्य पर इन शिक्षा संस्थाओं के लिए युक्तिसंगत नियंत्रण लागू करने के विषय में कोई रोक नहीं है। शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्ध करने का अधिकार के अन्तर्गत कुप्रबन्धन करने का अधिकार नहीं आ सकता। संस्था की

श्रेष्ठता निश्चित करने के लिए राज्य नियंत्रण लागू कर सकता है। शिक्षा संस्थाओं के लिए मानकों अथवा आदर्शों का प्रतिपादन करना अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध करने के अधिकार के विरुद्ध नहीं है। **"केरल राज्य बनाम अति श्रद्धेय मदर प्राविंशियल"** में अल्पसंख्यक लोगों के प्रतिनिधियों ने, जो आवेदक थे, मान लिया कि एक सीमा तक शिक्षकों की नौकरी की शर्तें तथा विद्यार्थियों के स्वास्थ्य संबंधी व्यवस्था एवं उनका शारीरिक प्रशिक्षण नियंत्रित किया जा सकता है। यह भी कहा गया है कि शिक्षा के मानक अथवा आदर्श प्रबन्ध का एक भाग नहीं है।

जब राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय की राय, कुछ प्रश्नों के विषय में जो "केरल एजुकेशन" बिल की कुछ धाराओं की संवैधानिक वैधता से सम्बद्ध थे, जानने के लिए मामला न्यायालय के पास गया तब यह कहा गया कि अल्पसंख्यक वर्ग का अपनी शिक्षा संस्थाओं का प्रबंध करने का अधिकार राज्य के उस अधिकार से असंगत नहीं है जिसके आधार पर राज्य इस बात पर बल दे सकता है कि कुप्रबंध से बचाव के लिए समुचित कदम उठाने जायें, इसके पहले कि किसी शिक्षा संस्था को अनुदान दिया जाए।

परन्तु साथ में यह भी कहा गया कि इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य की विधायिका अपनी विधायी शक्ति का अप्रत्यक्ष रूप में उपयोग करते हुए मूल अधिकारों की अवहेलना कर सकती है, क्योंकि जो प्रत्यक्ष रूप में करना इसकी शक्ति में नहीं है वह यह अप्रत्यक्ष रूप में भी नहीं कर सकती है। राज्य द्वारा अल्पसंख्यक वर्ग की संस्थाओं को मान्यता देने के विषय में न्यायालय का मत था कि यह निःसंदेह सत्य है कि राज्य द्वारा मान्यता पाने का कोई मूल अधिकार नहीं हो सकता। परन्तु, केवल ऐसी शर्तों पर मान्यता न दिया जाना जो वास्तव में प्रबन्ध करने के अधिकार को त्याग देने के बराबर है, वस्तुतः एवं वास्तव में अनुच्छेद ३०(१) का अतिक्रमण है। इस प्रकार अनुच्छेद ३०(१) जैसे कि न्यायालय द्वारा उसकी व्याख्या की गई है, धार्मिक अल्पसंख्यक संस्थाओं के विषय में प्रबंध के अधिकार की भरपूर गारण्टी देता है।

राज्य युक्ति संगत नियंत्रण के हेतु नियम बना सकता है, इसका आशय केवल यह भी हो सकता है कि उदाहरणार्थ– शिक्षकों तथा प्रिंसिपल की नियुक्ति हेतु न्यूनतम अर्हता निर्धारित कर दी जाए। परन्तु इससे यह निश्चित नहीं होता कि सबसे अधिक योग्य व्यक्ति नियुक्त होगा। संस्था किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर सकती है जो अपेक्षाकृत कम योग्य है परन्तु जिसे संस्था के लिए उपयुक्त समझा जाता है। उदाहरणार्थ एक धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग जैसे ईसाई द्वारा स्थापित कालिज प्रिंसिपल की नियुक्ति के लिए यह शर्त लगा सकता है कि वह ईसाई धर्म के किसी सम्प्रदाय विशेष का हो। मैं समझता हूँ कि यह धर्म के आधार पर भेदभाव करना होगा तथा इसलिए सेकुलरवाद अथवा "सर्वधर्म समभाव" के विरुद्ध होगा।

इस संबंध में जस्टिस खन्ना की टिप्पणियों का हवाला देना प्रासंगिक होगा जो उन्होंने **'सेंट जेवियर्स कालेज बनाम गुजरात राज्य'** में दी है कि "अमेरिकन संविधान तथा कैनेडियन बिल आफ राइट्स" के संदर्भ में यह कहा गया है कि धार्मिक स्वतंत्रता को संवैधानिक संरक्षण देने से धार्मिक असमर्थता का अंत हो गया इसने कुछ नये विशेषाधिकार नहीं दिये। इसने धार्मिक समता दी, न कि नागरिक निरापदता। आगे जस्टिस खन्ना कहते हैं कि मोटे तौर पर समझें तो उपर्युक्त कथन पर अधिक आपत्ति नहीं की जा सकती तथा यह एक व्यवहार्य मानदण्ड, बहुत से उदाहरणों में दे सकता है। परन्तु कठिनाई उन उदाहरणों में आती है जो स्पष्ट नहीं होते।

इसमें संदेह नहीं कि असमर्थताओं को दूर करने की व्यवस्था सकारात्मक विशेषाधिकार की सृष्टि नहीं करती। परन्तु कभी-कभी दोनों पक्षों का ऐसा सम्मिश्रण हो जाता है कि यह खतरा रहा है कि जो एक विशेषाधिकार प्रतीत होता है उसको न मानने से ऐसी व्यवस्था का अतिक्रमण होता है जो किसी असमर्थता को दूर करने के लिए रखी गई है तथा इस प्रकार उस व्यवस्था के प्रति संविधान की गारण्टी समाप्त हो जाती है। आगे चलकर जस्टिस खन्ना की महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है कि "इसके अतिरिक्त, अमेरिका और कनाडा में कुछ भी स्थिति हो, हमारे संविधान में कुछ ऐसे अनुच्छेद हैं जो न केवल अल्पसंख्यकों की असमर्थताएँ दूर करने के लिए हैं बल्कि उनके लिए सकारात्मक अधिकारों की सृष्टि करने के लिए भी हैं। अनुच्छेद ३०(१) इसी श्रेणी में आता है।"

पुनरावलोकन आवश्यक

मुझे लगता है कि यह आवश्यक है कि ३०(१) जैसे अनुच्छेदों का पुनरावलोकन किया जाए और सभी नागरिकों को शिक्षा के क्षेत्र में भी समान अधिकार दिये जाएं। जहाँ तक अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार है, उसमें अल्पसंख्यक अथवा बहुसंख्यक में भेद नहीं होना चाहिए।

□

सांविधानिक प्रावधान और पंथनिरपेक्षता

□ डॉ. रमेश चन्द्र नागपाल

उद्देशिका में पंथनिरपेक्षता

हमारे संविधान की उद्देशिका में ही कहा गया है कि भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है। आरम्भ में उद्देशिका में पंथनिरपेक्ष शब्द नहीं था। १९७६ में ४२वें संशोधन द्वारा इसका समावेश किया गया। इसकी आवश्यकता नहीं थी क्योंकि संविधान सभा की बहस में यह पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया था कि भारत पंथनिरपेक्ष होगा। संविधान के अनेक प्रावधानों की व्याख्या के आधार पर माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी अपने निर्णयों में स्पष्ट कर दिया था कि हमारा संविधान पंथनिरपेक्ष है, और पंथनिरपेक्षता संविधान का एक मूल या अनिवार्य तत्व है।[1]

ऐसी स्थिति में उद्देशिका में इस शब्द को लिखने की क्या आवश्यकता थी ? क्या पूर्ण स्पष्टता के लिए ? ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भारतीय संविधान के पंथनिरपेक्ष चरित्र पर कभी किसी ने शंका नहीं जताई थी। इसका कारण केवल यही प्रतीत होता है कि तत्कालीन शासक किन्हीं लोगों के लिए कोई लोक-लुभावन प्रदर्शन करना चाहता था।

पंथनिरपेक्ष का अर्थ

पंथनिरपेक्ष शब्द अंग्रेजी के सेक्युलर शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यहाँ अंग्रेजी शब्द के उल्लेख का औचित्य यह है कि भारतीय संविधान का मूल पाठ और ४२वें संशोधन का मूल पाठ अंग्रेजी में ही तैयार किया गया था। जब संविधान का हिन्दी पाठान्तर किया गया तो उसमें उद्देशिका में 'सेक्युलर' शब्द का अनुवाद 'पथनिरपेक्ष' या हिन्दी पाठान्तर किया गया। अनु २५ (२) (क) में भी 'सेक्युलर शब्द आता है। वहाँ उसका अनुवाद 'लौकिक' किया गया है। 'सेक्युलर' शब्द का एक और भी अनुवाद बहुत प्रचलित है- 'धर्म निरपेक्ष'। इस अनुवाद पर यह आपत्ति की जाती है कि 'सेक्युलर' शब्द रिलीजन का विपरीतार्थक है और रिलीजन का सही अनुवाद धर्म नहीं, बल्कि 'पंथ या 'मजहब' या 'दीन' है। धर्म इससे बहुत अधिक व्यापक है। परन्तु कुछ विद्वान धर्म, रिलीजन एवं मजहब की अन्तर्निहित सामग्री में कोई भेद नहीं कर पाते; अतः वे इन शब्दों को समानार्थक ही मानते है।[2]

भारतीय संविधान में सेक्युलरिज्म

इस विषय का विवेचन करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि भारतीय संविधान उस राज्य का है जो भारत देश का विभाजन भारत और पाकिस्तान में करके हिन्दुओं के भाग में आया था। मुसलमानों ने अपने भाग के क्षेत्र पाकिस्तान को इस्लामी मजहब वाला राज्य बनाया। यह सर्वविदित है कि हिन्दू भारत को अपनी पुण्य भूमि मानते हैं हिन्दुओं के प्रति घृणा एवं सीधी कार्रवाई (खून-खराबा) से उनकी पुण्य भूमि के टुकड़े करके जब मुसलमानों ने इस्लामी राज्य का निर्माण किया तो हिन्दू भी अपने भाग के क्षेत्र को हिन्दू राज्य बनाने का पूर्ण औचित्य एवं अधिकार रखते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसका कारण है कि हिन्दुओं का जीवन दर्शन तथा राज्य दर्शन भी सदैव पंथनिरपेक्ष रहा है। हिन्दू जीवन दर्शन में इस यथार्थ को स्वीकार किया गया है कि पृथक-पृथक मस्तिष्क में भिन्न- भिन्न विचार होते हैं। (मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्नाः) और एक सत्य को विद्वान लोग अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं (एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति) अतः किसी दर्शन, मजहब या विचार धारा का दमन नहीं करना चाहिए। इस जीवन दर्शन का हिन्दू राजनीति पर प्रभाव यह पड़ा कि हिन्दुओं के शासन काल में राज्य किसी मत-पंथ का विरोधी नहीं रहा। पंथनिरपेक्षता को ही राज्य कर्त्तव्य माना गया।

भारत के वर्तमान संविधान में सेक्युलरिज्म (पंथनिरपेक्षता) का रेखाचित्र निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा रचित किया गया है।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

यह एक मूल अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया हें इसके लिये अनुच्छेद २५ से अनुच्छेद २८ में उपबंध दिये गये हैं।

अनु. २५ (१) सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता, पंथ को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार देता है। हमारे संविधान की उद्देशिका भी सभी व्यक्तियों को विचार, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्राप्त कराने की घोषणा करती है। अपने पंथ को मानने

या उसपर आचरण करने के लिये राज्य को कर नहीं देना होगा जैसा कि मध्यकालीन मुस्लिम राज में हिन्दुओं से जजिया वसूल किया जाता था।

अंतःकरण की स्वतंत्रता का अर्थ है कि व्यक्ति विचार (चिन्तन) की स्वतंत्रता रखता है, वह किसी भी पंथ को मान सकता है या प्रत्येक पंथ को अस्वीकार कर सकता है। इस स्वतंत्रता के होने के कारण भारत में पंथ-द्रोह नाम से कोई अपराध सृजित नहीं किया जा सकता। चिन्तन की स्वतंत्रता मानव जाति की प्रगति के लिये अनिवार्य है। मानव जाति ने आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, विज्ञान आदि क्षेत्रों में जितना प्राप्त कर लिया है, उसमें कुछ भी अन्तिम नहीं है। प्रत्येक क्षेत्र में सदैव कुछ नवीन प्राप्त करने के लिये है। भारतीय संविधान मानव-मस्तिष्क की इस अक्षय उर्वरकता को स्वीकार करता है। इसमें मूलवाद, अन्तिमवाद एवं 'ही' वाद के लिये कोई स्थान नहीं। इसकी आस्था 'नेति-नेति' में है।

धार्मिक स्वतंत्रता की सीमाएँ

अनु. २५ (१) में ये स्वतंत्रताएँ असीमित रूप में नहीं दी गयीं। इस अनुच्छेद का आरम्भ ही इस उपबंध से होता है कि ये स्वतंत्रताएँ (१) लोक व्यवस्था (२) सदाचार (३) स्वास्थ्य और (४) संविधान के मूल अधिकार शीर्षक भाग के अधीन है।

इस भाग में अनु. १९ (१) (क) के द्वारा सभी नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गयी है। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि इस स्वतंत्रता के अर्थ में सूचना का अधिकार भी सम्मिलित है।[३]

यदि अन्तःकरण की स्वतंत्रता तथा सूचना के अधिकार को सम्मिलित किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि सलमान रुश्दी की पुस्तक **'सैटेनिक वर्सेज'** पर प्रतिबंध लगाना धार्मिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का उल्लंघन है। दूसरे शब्दों में पंथनिरपेक्षता का विरोधी है। इसी तरह शुरू में सुश्री तस्लीमा नसरीन (लज्जा उपन्यास की बंगलादेशीय लेखिका) को भारत आने की अनुमति न देना भी अन्तःकरण की स्वतंत्रता की दृष्टि से पंथनिरपेक्षता का हनन था।

कुछ राज्यों में बल एवं छल के प्रयोग द्वारा मतान्तरण पर रोक लगाने की विधि बनायी गयी है। कुछ लोगों, विशेषतः ईसाइयों द्वारा इसका विरोध किया गया है कि यह उनके पंथ प्रचार की स्वतंत्रता का अपहरण है। यह बात न केवल युक्ति-विहीन बल्कि आश्चर्यजनक भी है। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता कि बल और छल का प्रयोग दुराचार का साधन है, सदाचार के विरुद्ध है। इनका प्रतिरोध भी स्वाभाविक है और जब यह होता है तब ये लोक-व्यवस्था की समस्या उत्पन्न करते हैं। अतः बल-छल, से पंथ प्रचार तथा मतान्तरण पर रोक लगाना लोक-व्यवस्था एवं सदाचार के आधार पर पूर्णतः संविधान-सम्मत है।

अनु. २५ (२) द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि पंथ की स्वतंत्रता राज्य द्वारा निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्य करने में बाधक नहीं होगी :

(क) आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य लौकिक क्रिया-कलाप जो धार्मिक आचरण से सम्बद्ध हैं,

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार।

यह ध्यान देने का विषय है कि भारतीय संविधान इस कारण पंथनिरपेक्ष नहीं है कि इसके द्वारा सभी व्यक्तियों को उपासना आदि की स्वतंत्रता (freedom of religion) प्रदान की गयी है, बल्कि इस कारण है कि लोक व्यवस्था, सदाचार, स्वास्थ्य, मूल अधिकार, आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक, लौकिक, क्रियाकलाप, सामाजिक कल्याण और सुधार के विषयों पर कार्य करने के लिये राज्य को पंथ से स्वतंत्रता (freedom from religion) प्रदान की गयी है।

पंथ के आधार पर राज्य द्वारा विभेद नहीं

अनु. १५ (१) द्वारा राज्य का आदेश दिया गया है कि वह केवल पंथ के आधार पर किसी भी नागरिक के विरुद्ध विभेद नहीं करेगा। अनु. १५ (२) राज्य एवं व्यक्तियों दोनों को आदेश देता है कि वे केवल मजहब के आधार पर (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों के उपयोग में विभेद नहीं करेगा।

अनु. १६ (१) राज्य के अधीन किसी पद पर नियुक्ति के विषय पर सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करता है। खण्ड (२) के आदेशानुसार राज्य के आधीन किसी भी पद पर नियोजन के लिये किसी भी नागरिक के विरुद्ध केवल मत-पंथ के आधार पर विभेद नहीं किया जा सकता।

संविधान के ये प्राविधान संविधान के मूल अधिकार अध्याय में 'समता का अधिकार' शीर्षक में दिये गये हैं। इससे यह अर्थ लगाया जा सकता है कि केवल मत-पंथ के आधार पर विभेद की वर्जना का तात्पर्य है कि संविधान की दृष्टि 'सर्वपंथ

समभाव' (equality of all religions) है। परन्तु इससे अधिक सही अर्थ यह है कि संविधान मत- पंथों की विसंगतता (equal irrelevance of all religions) की दृष्टि रखता है।

यह विसंगतता राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश के बारे में भी लागू की गयी है। केवल मत-पंथ के आधार पर किसी भी नागरिक को ऐसी किसी संस्था में प्रवेश से वर्जित नहीं किया जा सकता, भले ही उसकी स्थापना किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा की गयी हो। अनु. २९ (२)।

सम्प्रदायों को स्वप्रबन्ध की स्वतंत्रता

अनु. २६ द्वारा सभी मत-पंथ के संप्रदायों को यह मूल अधिकार दिया गया है कि वे :

(१) मत-पंथ और तत्संबंधी प्रयोजनों के लिये संस्थाओं की स्थापना और पोषण कर सकते हे;

(२) अपने मत-पंथ विषयक कार्यों का प्रबंध कर सकते हैं;

(३) चल और अचल सम्पत्ति का अर्जन कर सकते हैं और स्वामित्व रख सकते हैं; और

(४) ऐसी सम्पत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन कर सकते हैं।

सभी मत-पंथों के ये अधिकार भी लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के आधीन हैं।

पंथ-अभिवृद्धि के लिए कर से स्वतंत्रता

अनु. २७ के अनुसार किसी भी मत-पंथ की वृद्धि या पोषण के लिए कर नहीं लिया जा सकता।

राज्य-पोषित शिक्षा-संस्थाओं में मजहबी शिक्षा

अनु. २८ (१) में उपबंध किया गया है कि जो शिक्षा-संस्थाएँ राज्य निधि से पूर्णतः पोषित होंगी, उनमें कोई मजहबी शिक्षा नहीं दी जा सकती। यहाँ पर शिक्षा-संस्थाओं के शासन द्वारा पोषण और शासन द्वारा प्रबन्ध में अंतर किया गया है। यदि राज्य किसी ऐसे न्यास का प्रबन्ध मात्र करता है जो मजहबी शिक्षा के लिये स्थापित किया गया है तो अनु. २८(२) के अनुसार वहाँ मजहबी शिक्षा दी जा सकती है।

उच्चतम न्यायालय ने **अरुणा राय विपक्षी भारत संघ**[४] में निर्णय दिया है कि अनु. २८ शिक्षा संस्थाओं में पूजा-पाठ की विधि और कर्मकांड की शिक्षा पर रोक लगाता है। यह भारत के या भारत से बाहर के विभिन्न मत-पंथों के अध्ययन पर रोक नहीं लगाता। ऐसी रोक छात्रों के सूचना प्राप्त करने के मूल अधिकार की विरोधी होगी। **संतोष कुमार विपक्षी केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय**[५] में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संस्कृत भाषा की शिक्षा को मजहबी शिक्षा नहीं माना जा सकता। संस्कृत भाषा में भारत के दर्शन और वाङ्मय सन्निहित हैं। यह भाषा भारत की सभ्यता और संस्कृति का आधार है, भारत को एकता के सूत्र में बाँधे है। अरबी और फारसी भाषा का स्थान भारत में ऐसा नहीं है। अतः अरबी-फारसी को वह पद दिये बिना भी केवल संस्कृत को पाठ्यक्रम का एक-एक वैकल्पिक विषय बनाना, किसी भी प्रकार से सेक्युलरिज्म के विपरीत नहीं है।

राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से मात्र सहायता प्राप्त करने वाली संस्थाओं में मजहबी शिक्षा दी तो जा सकती है परन्तु वहाँ पर प्रवेश-प्राप्त किसी व्यक्ति का किसी मजहबी दीक्षा या मजहबी पूजा-पाठ में सम्मिलित होने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसने स्वयं इसके लिए सहमति न दी हो। यदि वह अवयस्क है तो उसके अभिभावक की सहमति आवश्यक है।

अल्पसंख्यकों को शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार

अनु. ३० (१) द्वारा मत-पंथ पर आधारित अल्पसंख्यकों का अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने और उनके प्रशासन का अधिकार दिया गया है और अनु. ३० (३) ऐसी प्रावधान करता है कि राज्य शिक्षा-संस्थाओं की सहायता देते समय किसी शिक्षा संस्था के प्रति इस आधार पर विभेद नहीं कर सकता कि वह किसी मजहबी अल्पंसख्यक वर्ग के प्रबंध में है।

उच्चतम न्यायालय ने अभी हाल ही में **टी.एम.ए.पाई फाउन्डेशन विपक्षी कर्नाटक राज्य**[६] में बहुमत से निर्णय दिया है कि यद्यपि अनु. ३० (१) की भाषा में इसका उल्लेख तो नहीं है तथापि मजहबी अल्पसंख्यकों का यह अधिकार निर्बाध नहीं है। संविधान के अन्य प्रावधानों के विपरीत इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता। उस पर अनु. २८ (१), (३) तथा अनु. २९(२) के उपर्युक्त उपबंध लागू होते हैं। इसी तरह राष्ट्रहित में उदाहरणतः स्वास्थ्य, नैतिकता, शिक्षा का स्तर, छात्रों एवं शिक्षकों के कल्याण, उचित शैक्षणिक वातावरण, राष्ट्रीय सुरक्षा,

लोक-व्यवस्था आदि के हित में इस अधिकार पर अंकुश लगाया जा सकता है।

समान नागरिक संहिता

भारत में सभी नागरिकों के लिए अपराध संहिता तो समान है। अनेक विषयों पर सिविल संहिता भी समान है; उदाहरणतः संविदा, भागीदारी, बैंकिंग, कम्पनी, श्रम एवं उद्योग, धनकर, आयकर, विक्रय या व्यापार कर, माध्यस्थम्, कृषि, जनगणना, निर्वाचन, बाल श्रम, नागरिकता, सीमा-शुल्क, दहेज प्रतिषेध, बीमा, संपदा शुल्क, संरक्षक और प्रतिपाल्य, अपकृत्य एवं सुखाचार, न्यास, प्रसूति-सुविधा, माल विक्रय, सम्पत्ति अन्तरण, आदि। परन्तु विवाह, विवाह-विच्छेद (तलाक), उत्तराधिकार, दत्तक, वसीयत, दान, भरण-पोषण, अव्यवस्था एवं साक्षरता विषयों पर भारत के समुदायों की अपनी स्वीय या वैयक्तिक (पर्सनल) विधियाँ पृथक्-पृथक् हैं। परिणाम यह है कि किसी समुदाय की विधि तो आधुनिक जीवन-मूल्यों की कसौटी पर प्रगतिशील है और किसी की नहीं है। विधियों में भेद होने से भारत के सभी नागरिकों की राष्ट्रीय एकता में भी संदेह बना रहता है। अतः संविधान में राज्य के नीति निदेशक तत्वों (सिद्धान्तों) में एक सिद्धान्त अनु. ४४ द्वारा यह भी व्यवस्था है कि **''राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।''**

भारत के विभिन्न स्वीय (पर्सनल) विधियाँ अलग-अलग समुदायों के सम्प्रदायों से बहुत जुड़ी हुई हैं। अतः इस सबके स्थान पर एक समान नागरिक संहिता का प्रवर्तन करना पंथ-निरपेक्षता की दिशा में एक बहुत बड़ा पग होगा। उच्चतम न्यायालय ने भी ऐसा करने के लिये कई बार आग्रह किया है।[७]

परन्तु सरकार यह राजनीतिक साहस नहीं जुटा पा रही कि इस क्षेत्र में कार्य करे। इसका केवल एक कारण है मुसलमानों का मुल्ला-मौलवी वर्ग, और केवल यही वर्ग इसका विरोध कर रहा है। यह वर्ग मूलवादी, कट्टरवादी और सुधार विरोधी है। इससे इनके निहित स्वार्थों की पूर्ति होती है। राजनेताओं को यह भ्रम है कि साधारण मुसलमान जनता इनके आदेश (फतवे) पर ही मतदान करती है। अतः अपनी विजय सुनिश्चित करने के लिए वे इनको संतुष्ट करने में होड़ लगाते रहते हैं। वे इनकी रुचि के अनुरूप ही सेक्युलरिज्म की परिभाषा देने लग गए हैं। यहाँ खलील जिब्रान की एक लघु-कथा प्रासंगिक हो जाती है। कथा यह है कि एक बार सच और झूठ साथ-साथ जा रहे थे। मार्ग में स्नान करने के लिए अपने-अपने वस्त्र उतार कर दोनों ने एक तालाब में डुबकी लगाई। झूठ बहुत चतुर था। वह पहले निकल आया और सच के कपड़े पहन कर चलता बना।

भारत में सेक्युलरिज्म के साथ यही हुआ है। मुस्लिम वोट बैंक के लोभ में कई चतुर राजनीतिक दल यह कहने लग गए हैं कि चूंकि सेक्युलरिज्म का अर्थ है 'मजहब की आजादी' या 'सर्वपंथसमभाव' इसलिए जो बात इस्लाम को स्पर्श करती है– भले ही वह कितनी वैज्ञानिक और मुस्लिम समाज के लिये कल्याणकारी क्यों न हो, सेक्युलरिज्म विरोधी है। फल यह हुआ है कि सेक्युलरिज्म की धारणा मिथ्या और भ्रष्ट हो गयी है। यह मुस्लिम-तुष्टिकरण के चरण की चाप रही है। प्रगतिवादी और बुद्धिवादी मुसलमान इस दृष्टि से बहुत बेचैन हैं। परन्तु उनको शासन से समर्थन और सुरक्षा नहीं मिलती तथा कट्टरपंथी मुसलमान उनके विरुद्ध अत्यंत निर्दयता से पेश आते हैं।

मुल्ला-मौलवी वर्ग यह प्रचार करता है कि हिन्दुओं से दूरी रखकर ही मुसलमान पक्का मुसलमान हो सकता है। सबके लिये एक नागरिक संहिता बनाने से यह दूरी समाप्त हो जाएगी। अतः वह इसका उग्र विरोधी है।

वस्तुतः समान नागरिक संहिता की वकालत इसलिए की जाती है कि मुस्लिम विधि भी संशोधित करके अन्य समुदायों की विधियों के समान सामान्य मुस्लिम जनता के लिए हितकारी बना दी जाए। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि देश के सभी नागरिकों की नागरिक विधि एक ही अधिनियम में समाविष्ट कर दी जाए। यहाँ उपर्युक्त **सरला मुद्गल** के वाद में न्यायमूर्ति आर.एस. सहाय का यह अभिमत महत्त्वपूर्ण है कि केवल मुस्लिम विधि में वर्तमान मानव मूल्यों के अनुरूप संशोधन करके एक पृथक अधिनियम बना देना पर्याप्त होगा। लेखक के मत में यदि इस प्रकार के संशोधनों के मानवीय पहलुओं का प्रचुर-प्रचार किया जाएगा तो मुल्ला-मौलवी इसका विरोध करने में सफल नहीं हो पाएँगे। सामान्य मुस्लिम जनता उनका ही साथ छोड़ देगी।

सेक्युलरिज्म में सहायक मूल कर्त्तव्य

संविधान के ४२वें संशोधन द्वारा अनु. ५१-क (ज) में नागरिकों के लिए मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई है। वह है-

(शेष पृष्ठ ७४ पर)

पंथनिरपेक्ष राज्य की प्रामाणिक नींव

□ सरदार वल्लभ भाई पटेल

संविधान सभा में सरदार पटेल ने इस बात पर बल दिया था कि हमारा लक्ष्य सभी वर्गों के नागरिकों को जितना जल्दी हो सके समानता के स्तर पर लाने तथा समस्त वर्गीकरणों, भेदों एवं विशेषाधिकारों को समाप्त करने का है। बहुसंख्य तथा अल्पसंख्यक दोनों को उनके दायित्व का स्मरण कराते हुए सरदार पटेल ने कहा कि यह सबके हित में है कि सेक्युलर राज्य की वास्तविक और प्रामाणिक नींव डाली जाय। अंत में उन्होंने कहा कि हम सबको यह भूल जाना है कि इस देश में कोई अल्पसंख्यक या कोई बहुसंख्यक है। हमें यह समझना है कि भारत में केवल एक ही समाज है।

पृथक आरक्षण की माँग

चर्चा में मुस्लिम लीग के एक प्रतिनिधि ने पुनः पृथक्ता की बात उठायी और एक संशोधन द्वारा मुसलमानों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में केन्द्रीय तथा प्रादेशिक विधायिकाओं में सीटों के आरक्षण के सिद्धांत को बरकरार रखने और उनकी पुष्टि करने की मांग की। किन्तु मुस्लिम लीग के ही कुछ सदस्यों ने इस संशोधन का विरोध किया। विरोध करने वालों में बेगम एजाज रसूल, कर्नल जैदी, मौलाना हसरत मोहानी भी थे। संशोधन के पक्ष में जो भाषण दिये गये उनसे सरदार पटेल जैसा नेता भी विचलित हो गया। इस अवसर पर उनका भाषण ऐतिहासिक महत्व का था जिसकी प्रांसगिकता आज भी बनी हुई है। उनके अंग्रेजी भाषण का अनुवाद अविकल रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ : श्रीमान, मैं अधिक समय नहीं लूँगा। मुझे यह जानकर बहुत खेद हुआ कि इस प्रश्न को गंभीरतापूर्वक लिया गया, क्योंकि जब यह प्रश्न सलाहकार समिति के समक्ष आया था, तब इतना वाद-विवाद नहीं हुआ था जितना कि मैंने आज सुना। यहाँ उपस्थित मेरे मुस्लिम लीग के मित्र, जिन्होंने इस संशोधन का प्रस्ताव किया तथा इसका समर्थन किया, यह मानकर चले कि एक अर्थ में उन्हें एक कर्त्तव्य का पालन करना है। वे पृथक निर्वाचन पद्धति के लिए दबाव डालते रहे थे। और एक लम्बे समय तक इसका उपभोग भी करते रहे थे, तथा उन्होंने यह महसूस किया कि उन्हें एकाएक इसको छोड़ न देना चाहिए। परन्तु जब मैंने सविस्तार प्रतिपादित भाषण सुने, तब मैंने समझा कि मैं उस युग में रह रहा हूँ जिसमें साम्प्रदायिकता का प्रश्न पहली बार विवाद का प्रश्न बना था।

मुझे उन भाषणों को सुनने का अवसर नहीं मिला जो आरम्भ में दिये गये- जब साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का प्रश्न कांग्रेस में प्रवर्तित किया गया था। परन्तु अनेक प्रतिष्ठित मुसलमानों ने अपना मत इस प्रकार लिपिबद्ध किया है कि साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति इस देश में सबसे अधिक बुराई लाई है। साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को प्रवर्तित करना एक जहर है जो हमारे राष्ट्र के शरीर में प्रवेश कर गया है। अनेक अंग्रेज जो इसके लिए उत्तरदायी थे, उन्होंने भी यह स्वीकार किया है। परन्तु आज इस साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति के फलस्वरूप देश के बंटवारे को मान लेने के बाद, मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि यह प्रस्ताव गम्भीरतापूर्वक रखा जाएगा और यदि गम्भीरतापूर्वक रखा भी जायेगा तो यह गम्भीरतापूर्वक लिया जाएगा।

क्या यह निष्ठा है ?

जब पाकिस्तान मान लिया गया तब कम से कम यह भी मान लिया गया था कि शेष भारत में, ८० प्रतिशत भारत में, एक राष्ट्र होगा, और यहाँ भी दो राष्ट्रों की बात करने का कोई प्रयत्न न होगा। यह कहने का कोई लाभ नहीं कि हम पृथक् चुनाव पद्धति की मांग करते हैं क्योंकि यह हमारे हित में है। हमने यह पर्याप्त लम्बे समय तक सुना है। हम यह वर्षों से सुनते आये हैं तथा इस आन्दोलन के फलस्वरूप आज हम एक पृथक् राष्ट्र हैं। आन्दोलन यह था कि हम एक पृथक् राष्ट्र हैं। पृथक् निर्वाचन पद्धति या अधिक महत्त्व देने का प्रावधान या कोई और सुविधाएँ अथवा रियायतों की व्यवस्था अपनी सुरक्षा के लिए हम पर्याप्त नहीं स्वीकार कर सकते। अतएव हमें पृथक् राज्य दीजिए। हमने कहा, "अच्छा, अपना पृथक राज्य ले लीजिए।" परन्तु शेष भारत ८० प्रतिशत भारत में, एक ही राष्ट्र होगा, क्या आप इससे सहमत हैं ? या कि आप अभी भी यह चाहते हैं कि दो राष्ट्रों की बात यहाँ भी उठायी जाए ? मैं पृथक् निर्वाचन पद्धति के विरुद्ध हूँ। क्या आप एक भी ऐसा स्वतंत्र देश बता सकते हैं जहाँ पृथक् निर्वाचन पद्धति है ? यदि हाँ, तो

मैं इसे स्वीकार कर लेने के लिए तैयार रहूँगा। परन्तु इस बदनसीब देश में यदि यह पृथक् निर्वाचन पद्धति देश के विभाजन के बाद भी जारी रखी जानी है तो इस देश पर धिक्कार है। यह देश इस योग्य नहीं कि इसमें रहा जाये। इसलिए मैं कहता हूँ, न केवल अपने भले के लिए परन्तु स्वयं आप के भले के लिए, कि बीते हुए को भूल जाइए। एक दिन हम संयुक्त हो सकते हैं। मैं पाकिस्तान की भलाई चाहता हूँ। वह सफल हो, वह अपने ढंग से निर्माण करे, वह खुशहाल बने, हमारे बीच खुशहाली की होड़ हो, किन्तु हम उस प्रतिद्वंद्विता में प्रवेश न करें जो इन दिनों पाकिस्तान में चल रही है। आप नहीं जानते कि हम दिल्ली में ज्वालामुखी पर बैठे हैं। आप नहीं जानते कि हमारे आसपास जो कुछ हो रहा है उससे हमारे ऊपर कितना दबाव पड़ रहा है। संशोधन के प्रस्तावक मेरे मित्र कहते हैं कि आज मुस्लिम समुदाय सुदृढ़ सूत्र में बंधा हैं। बहुत अच्छा, मुझे यह सुनकर प्रसन्नता है और इसलिए मैं कहता हूँ कि अब आपको सहारा मांगने की कोई जरूरत नहीं हैं (तालियाँ)। चूँकि अन्य अल्पसंख्यक हैं जो सुसंगठित नहीं है और जो विशेष सुविधाओं और संरक्षणों के हकदार हैं हम उनके प्रति उदार होना चाहते है। साथ ही आप चाहते हैं कि हम जनसंख्या के आधार पर आरक्षण स्वीकार कर लें क्योंकि आपने बहुत दिनों तक उसका लाभ उठाया है और आप यह अनुभव नहीं कर पाते कि उसमें भेदभाव निहित है। क्या विश्व के अन्य स्वतंत्र देशों में इस तरह का आरक्षण है ? क्या आप मुझे यह बतायेंगे ? मैं आप से पूछता हूँ ? आप एक सुसंगठित समुदाय हैं। मुझे बतायें, आप एक लंगड़े आदमी की तरह से व्यवहार क्यों कर रहे हैं ? साहसी और शक्तिशाली बनिये, क्योंकि आप सुसंगठित हैं, और खड़े हो जाइए। हम जिस राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं उसका विचार करिये। हमने राष्ट्र की नींव रख दी है, अब से नये संविधान के द्वारा। चौधरी खलीकुज्जमा कहते हैं कि ब्रिटिश तत्त्व चला गया हैं किन्तु वह अपने पीछे शरारत छोड़ गये हैं। हम उस शरारत को स्थायी नहीं बनाना चाहते (हीयर, हीयर)। जब ब्रिटिश ने इस तत्त्व का समावेश किया था तब वे यह आशा नहीं करते थे कि उन्हें इतना शीघ्र जाना पड़ेगा। उन्होंने आसानी से शासन करने के लिए ऐसा किया था। यह ठीक है किन्तु वह अपने पीछे विरासत छोड़ गये हैं। क्या हमें उससे बाहर निकलना है या नहीं ? इसलिए मैं कहता हूँ और आपसे अपील करता हूँ कि इसके बारे में सोचिए। क्या आप यह आशा करते हैं कि मुस्लिम लीग के बाहर इस देश में एक भी व्यक्ति यह कहेगा कि अब हमें पृथक निर्वाचन पद्धति को भी मान लेना चाहिए। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं ? अगर आप कहना चाहते हैं कि हम इस राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखना चाहते हैं तो मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या यह निष्ठा है ? क्या आप दूसरी तरफ से निष्ठा को प्रोत्साहन दे रहे हैं ? मेरा इस पर बोलने का कोई इरादा नहीं था। किन्तु जब संशोधन के प्रस्तावक ने इतनी देर तक भाषण दिया और उनके नेता ने उनका समर्थन किया तब मुझे लगा कि अभी भी इस देश में कहीं कोई खराबी है। इसलिए मेरे प्रिय मित्रों, मैं आपसे पूछता हूँ क्या आप इस देश में शान्ति चाहते हैं, यदि हाँ तो इसे छोड़िए। आप न पाकिस्तान को क्षति पहुँचा सकते हैं, न भारत को। आप सिर्फ यही कर सकते हैं कि हमारे आस-पास जो कुछ हो रहा है वह सारे देश में होने लगे। यदि आप सचमुच यही चाहते हैं तो वह आपको मिल सकता है। किन्तु मैं आपसे अपील करता हूँ, कम से कम हमें इस तरफ यह दिखाना चाहिए कि सभी बातें भूली जा चुकी हैं और यदि हम भूलना चाहते हैं तो अतीत में जो कुछ किया गया उसे, हम भूल जायें और उसे भी भूल जायें जो आज जो कुछ हो रहा, उसके लिए जिम्मेदार हैं। अतः मैं आप से एक बार फिर अपील करना चाहता हूँ कि आप संशोधन वापस ले लें और इसे सर्वसम्मति से पारित करें जिससे कि बाहर दुनिया समझे कि हम संयुक्त हैं।

सरदार पटेल के भाषण के बाद कुछ सदस्यों ने "वापस लो, वापस लो" की मांग की। किन्तु संशोधन वापस नहीं लिये गये। उन्हें वोट के लिए रखा गया और अस्वीकृत हो गए। □

पंथनिरपेक्षता के नाम पर

भारतीय संविधान में हर संशोधन मुल्लावादियों का तुष्टिकरण करने के लिए किया गया। समाचार पत्रों के अनुसार फारुख अब्दुल्ला कश्मीर के मुसलमानों को पाकिस्तान में आतंकवाद की शिक्षा लेने भेजते रहे थे, परन्तु उन्हें जेल में बन्द करने के बजाय पंथनिरपेक्षता के नाम पर पद और आदर दिया जाता रहा।

राष्ट्रदृष्टि बनाम सेकुलरिज्म

□ सीताराम गोयल

आज का विषय है उदीयमान राष्ट्रदृष्टि। मेरे लिए यह धृष्टता ही कही जाएगी कि मैं बंगाल के श्रोतागण के सामने, विशेषतया कलकत्ता महानगर के श्रोतागण के सामने, राष्ट्रदृष्टि पर व्याख्यान दूँ। राष्ट्रदृष्टि का जो सर्वाङ्गसम्पूर्ण दर्शन हमारे सामने हैं वह हमको इस शती के प्रथत दशक में बंगाल से ही प्राप्त हुआ था, कलकत्ता महानगर में ही मिला था। बङ्किमचन्द्र, स्वामी विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द की रचनाएँ पढ़ कर और रवीन्द्रनाथ के गान सुनकर ही हम समझ सकते हैं कि राष्ट्रदृष्टि का रूप क्या था और फिर से अनुप्राणित तथा अनुमोदित होने पर वह रूप क्या होगा। इन महापुरुषों ने जो कुछ लिखा है, जो कुछ व्याख्या की है, और अपने जीवन में जो कुछ चरितार्थ किया है, उसमें मुझे कुछ नहीं जोड़ना। मैं तो एक अकिंचन टीकाकार के नाते केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि आज की वस्तुस्थिति में इन महापुरुषों की दृष्टि का बिस्तार किस प्रकार किया जाना चाहिए, उस दृष्टि का पुनरुत्थान कैसा होना चाहिए।

आज स्वदेशी आन्दोलन

जिस राष्ट्रदृष्टि की व्याख्या इन महापुरुषों ने की थी उसकी पराकाष्ठा, उसका पूर्ण विस्तार और उसका पूर्ण परिचय हमें स्वदेशी आन्दोलन के समय प्राप्त हुआ था। जिन साम्राज्यवादी शक्तियों ने बाद में बंगाल का विभाजन किया उन्हीं ने उस समय भी बंगाल के विभाजन का प्रयास किया था। इस्लामी साम्राज्यवाद अथवा उस साम्राज्यवाद के अवशेषों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ मिलकर उस बंगभूमि को विभाजित करने का प्रयास कियाथा जिसे भगवान ने अविभाज्य बनाया है। उस समय उन शक्तियों का यह षड्यन्त्र विफल हुआ था। उन शक्तियों का वह खेल उस दिन इसीलिए बिगड़ गया था कि उस समय हमारी राष्ट्रदृष्टि सचेत थी, सर्वथा सुदृढ़ थी। उस आन्दोलन के पूर्व कुछ गिने-चुने महानुभाव एक साथ बैठकर कई-एक प्रस्ताव पास कर लेते थे। इससे अधिक वे लोग कुछ नहीं कर पाते थे। स्वदेशी आन्दोलन ने ही हमारे स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सर्वप्रथम हमारे जन गण को जगाया था। उस जागरण की गूँज सारे भारतवर्ष में दूर-दूर तक सुनी गई थी। स्वदेशी आन्दोलन द्वारा दिए गए मन्त्र भी सारे देश ने सुने थे-स्वदेशी का मन्त्र, स्वराज्य का मन्त्र और वन्दे मातरम् का वह मन्त्र जिसमें एक जागृत राष्ट्र की सारी आकांक्षाएँ निहित थीं। राष्ट्रदृष्टि की यह छवि सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण थी। यह छवि कुछ और हो भी नहीं सकती थी।

वह राष्ट्रदृष्टि क्या थी जिसे हमने बंगाल के महापुरुषों से पाया था और उससे प्रेरणा पाकर भारतवर्ष में एक महान स्वाधीनता-संग्राम का सूत्रपात हुआ था ? उन क्रान्तिकारियों का स्मरण कीजिए जिनको उस समय भारतवर्ष ने जन्म दिया था। वे महाप्राण मानव थे जो हाथ में श्रीमद् भगवद्गीता लेकर और कण्ठ से वन्दे मातरम् का निनाद करते हुए फांसी के तख्तों पर झूल गए थे। आजकल भी कुछ लोग क्रान्तिकारी होने का दम भरते हैं। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि आजकल के बहुत से क्रान्तिकारी क्रूर अपराधियों से अधिक कुछ नहीं हैं। पूर्वकाल के क्रान्तिकारी एक अन्य कोटि के क्रान्तिकारी थे और उनकी दृष्टि अन्य प्रकार की थी।

एक प्रकार से देखा जाए तो वह दृष्टि नई दृष्टि नहीं थी, जिस सनातन वैदिक दृष्टि का विस्तार उपनिषद्, जेनागम, त्रिपिटक, रामायण, महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र और परवर्ती सिद्धों और सन्तों की वाणी में मिलता है, उसी का पुनरोच्चारण आधुनिक भाषा में तथा आधुनिक प्रसंग के अनुकूल किया गया था। उस दृष्टि का प्रचार करने वाले महापुरुष हमारे इतिहास में अनेकानेक हुए हैं।

प्रथम आयाम

उस दृष्टि का प्रथम आयाम यह था कि भारतवर्ष सनातन धर्म की भूमि है। यही उस दृष्टि का आदिम तथा सर्वोतम स्वर था। उत्तरपाड़ा में दिए गए अपने भाषण में **श्री अरविन्द** ने कहा था कि **सनातन धर्म के उत्थान के साथ ही भारतवर्ष का उत्थान होता है, सनातन धर्म के पतन के साथ ही भारतवर्ष का पतन होता है, और यदि यह सम्भव है कि सनातन धर्म का विलोप हो जाए तो भारतवर्ष भी विनष्ट हो जाएगा।** सनातन धर्म के विषय में चर्चा करना इस समय समीचीन नहीं है। मैं केवल इतना ही कहूँगा कि सनातन धर्म एक सहज धर्म है, मानव

प्रकृति के विकास क्रम के अनुकूल है और मानव की चरम साधना को चरिचार्थ करने वाला है। वह इस्लाम और ईसाइयत की नाई एक मनगढ़न्त ढकोसला नहीं है। न ही वह ऐसे कृत्रिम विश्वासों का घटाटोप है जिनको मनुष्य की ब्रह्म चेतना ने बटोर कर अनुयाइयों के ऊपर लाद दिया हो।

दूसरा आयाम

उस दृष्टि का दूसरा आयाम था एक विराट और वैविध्य-सम्पन्न संस्कृति का दिग्दर्शन। आधार तथा अधिकार के अनुरूप हमारे समाज के विविध समुदायों ने, हमारे देश के विविध अंचलों ने अपनी-अपनी संस्कृति का विकास किया है, अपनी-अपनी ललित-कलाओं को निखारा है, अपने-अपने साहित्य का सृजन किया है। हमारा साहित्य विराट है– अध्यात्म-विषयक साहित्य, इहलोक से सम्बन्धित साहित्य, विज्ञान-सम्मत साहित्य। इस साहित्य का सृजन देश के विविध अंचलों में हुआ है, विविध प्रकार के समाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेशों में हुआ है। इसी प्रकार हमारी ललित-कलाएँ, हमारा स्थापत्य, हमारा मूर्तिशिल्प तथा हमारा संगीत भी विशालकाय हैं। कुल मिलाकर ये सारी ललित-कलाएँ यह समस्त साहित्य एक विपुल सम्पदा हैं। किन्तु इस समस्त सृजन के पीछे जो प्रेरणा है वह सनातन धर्म की ही प्रेरणा है।

तीसरा आयाम

उस दृष्टि का तीसरा आयाम था वह महामहिम समाज जो अधुना हिन्दू समाज कहलाता है। इस समाज का संगठन अध्यात्म के आधार पर हुआ है। सनातन धर्म के धरातल पर खड़ा है यह समाज। इस समाज में सनातन धर्म द्वारा सृष्ट संस्कृति का समावेश है।. इस समाज को वर्णाश्रम के रूप में संवारा गया हैं। आज हम वर्णाश्रम का वर्णन अंग्रेजी के एक भोंडे शब्द-समवाय द्वारा करते हैं। हम उसे कास्ट-सिस्टम कह कर पुकारते हैं। आज सब लोग कास्ट-सिस्टम को कोसने में व्यस्त हैं। किन्तु वर्णाश्रम ही ने हमारी उस बहुविध समाजव्यवस्था को एक ऐसे सांचे में ढाला है जो अनेक विडम्बनाएँ झेल कर और दीर्घकाल तक अनेक विदेशी आक्रमणों के आघात सहकर आज तक प्राणवान है, आज तक प्रगति-परायण है। आधुनिक युग के हमारे सारे महापुरुषों ने वर्णाश्रम की सराहना की है : महर्षि दयानन्द ने, बङ्किमचन्द्र ने, स्वामी विवेकानन्द ने, लोकमान्य तिलक ने, महामा मदनमोहन मालवीय ने, महात्मा गांधी ने। इन सब महापुरुषों ने एक स्वर से यह कहा कि वर्णाश्रम ने ही हिन्दू समाज को विनाश से बचा लिया। ईसाइयत, इस्लाम तथा कम्युनिज्म ने भारतवर्ष के बाहर अनेक समाज-व्यवस्थाओं का विनाश किया है। भारतवर्ष में ये दस्युदल वैसा नहीं कर पाए। यह वर्णाश्रम का ही प्रताप है।

चौथा आयाम

उस दृष्टि का चौथा आयाम यह था कि इस महामहिम समाज का, इस हिन्दू समाज का एक अपना इतिहास रहा है– किस प्रकार इस समाज का उदय हुआ, किस प्रकार इस समाज का विकास हुआ, किस प्रकार इस समाज ने एक ऐसे अध्यात्म की साधना की जो अनेक प्राचीन देशों में साधे गए अध्यात्म के साथ समरस था– यथा ग्रीस, रोम, चीन, मिस्र, ईरान। उस दृष्टि ने हमें दिखलाया कि भारतवर्ष का इतिहास वस्तुतः हिन्दू समाज का इतिहास है, हिन्दू संस्कृति का इतिहास है, हिन्दू अध्यात्म-साधना का इतिहास है। वह इतिहास बाह्य आक्रमणकारियों का इतिहास बिल्कुल नहीं है, जैसा कि हमें आज कल पढ़ाया जा रहा है।

पाँचवाँ आयाम

उस दृष्टि का पांचवाँ आयाम यह था कि भारतवर्ष नाम का यह भूखण्ड एक अविभाज्य समष्टि है। उन महापुरुषों ने बार-बार इस बात की पुष्टि की थी कि भारतवर्ष हिन्दू समाज की, हिन्दू संस्कृति की और हिन्दू अध्यात्म-साधना की लीलास्थली है और हिन्दू राष्ट्र का अपना स्वदेश है। हिन्दुओं से इतर लोगों का इस भूमि में स्वागत है। किन्तु उन लोगों को हिन्दू समाज और हिन्दू संस्कृति के प्रति आदर का भाव अपनाना होगा। हमारे महापुरुषों ने भारतभूमि को अफगानिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान और बँगलादेश में बाँट कर नहीं देखा था। आज भारतवर्ष कई भागों में बिखरा पड़ा है। वे विभिन्न भाग राजनीति को लेकर ही नहीं, संस्कृति के नाते भी परस्पर वैमनस्य का पोषण कर रहे हैं और हम सबने इस विभाजन को स्वीकार कर लिया है। किनतु हमारे महापुरुषों द्वारा हमें दी गई दृष्टि के अनुसार भारतवर्ष केवल भूगोल के आधार पर ही नहीं, संस्कृति के नाते भी अविभाज्य है।

स्वदेशी आन्दोलन के समय, इस शती के प्रारम्भ में, हमारे सामने इस राष्ट्रदृष्टि का उदय हुआ था।

अन्य दृष्टियाँ

किन्तु कई अन्य दृष्टियाँ भी अपना-अपना आधिपत्य जमाने के लिए सचेष्ट थी। इन अन्य दृष्टियों को अपने प्रसार

के लिए एक सुविधा भी मिली। जिस शिक्षा-प्रणाली का विकास अंग्रेजों ने किया था, जो शिक्षा-प्रणाली हमारे ऊपर उन्होंने लाद दी थी, वह प्रणाली इन अन्य दृष्टियों की पोषक थी। यह वही प्रणाली थी जो आज भी हमारे देश में प्रतिष्ठित हैं। यह प्रणाली इन अन्य दृष्टियों को अभी भी प्रोत्साहित कर रही है, इनके प्रसार में सहायक बनी हुई है।

इन अन्य दृष्टियों में से एक दृष्टि थी इस्लाम के साम्राज्यवाद की दृष्टि। इस दृष्टि के अनुसार भारतवर्ष एक वैसा ही अन्धकारपूर्ण देश है जैसा कि इस्लाम के आविर्भाव से पूर्व का अरब देश था अथवा इस्लाम द्वारा पराभूत होने से पूर्व ईरान इत्यादि कई एक अन्य देश थे। यह दृष्टि प्रचार कर रही थी कि इस्लाम का "प्रकाश" भारतवर्ष में भी फैलना चाहिए, भारतवर्ष की भी एक दार-उल-इस्लाम के रूप में परिणति होनी चाहिए।

कुछ आगे चलकर एक अन्य दृष्टि का आयात इस देश में हुआ। वह थी ईसाई साम्राज्यवाद की दृष्टि। यह दृष्टि भी प्रचार कर रही थी कि भारतवर्ष एक अन्धकारपूर्ण देश है, ग्राम्य तथा प्रकृत आस्थाओं का देश है, विश्वास-विहीन लोगों का देश है। यह दृष्टि भारतवर्ष को ईसाइयत के "प्रकाश" से "आलोकित" करना चाहती थी, भारतवर्ष को ईसा का देश बनाना चाहती थी।

एक तीसरी दृष्टि श्वेतांग जाति के दायित्व का दम्भ लेकर इस देश में आई। इस दृष्टि में इस्लाम तथा ईसाइयत के साम्राज्यवादों द्वारों छेड़े गये जिहाद की पुट तो था ही, साथ ही साथ यह दृष्टि मानववाद तथा बुद्धिवाद की भाषा भी बोल रही थी। इसकी भाषा में नवजागरण का पुट भी था। यह दृष्टि कह रही थी कि भारतवर्ष दिशा-विहीन, अनपढ़, दलित-वंचित तथा सब प्रकार से शोषित अभागों का देश है, और अंग्रेज शास्ताओं तथा पाश्चात्य से इस-उस देश से आयात की हुई संस्कृति को इन अभागों के लिए भोजन जुटाना पड़ेगा, इन को स्वस्थ बनाना पड़ेगा, इन में आत्मविश्वास जगाना पड़ेगा।

तदनन्तर पाश्चात्य से एक अन्य साम्राज्यवादी दृष्टि इस देश में आई। वह थी कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद की दृष्टि। इस दृष्टि ने हमें बतलाया कि भारतवर्ष एक उपनिवेश अथवा उपनिवेश-तुल्य समाज है जिसकी जनता दो वर्गों में विभाजित है– शोषक और शोषित, दलनकारी और दलित। अब यह दायित्व कम्युनिस्ट पार्टी का था कि भारतवर्ष को सब प्रकार के प्रमाद तथा शोशण से मुक्त करे और यहाँ की उत्पादन-व्यवस्था को संकट से बाहर निकाले। भारतवर्ष के प्रति साम्राज्यवाद की यह चौथी दृष्टि थी।

भयावह परिणाम

इन समस्त साम्राज्यवादी दृष्टियों के सम्पात का परिणाम हमारे लिए गम्भीर हो चला है, भयावह हो उठा है। आज इस देश में, विशेषतया इस देश के शासक वर्ग में और हमारे हिन्दू मनीषियों तथा हिन्दू समाज के शालीन वर्ग में जिस दृष्टि का बोलबाला है वह उस राष्ट्रदृष्टि के सर्वथा विपरीत है जो हमें स्वदेशी आन्दोलन के युग में मिली थी, जो हमें उस समय के अपने महापुरुषों से मिली थी।

आज हम लोगों से कहा जा रहा है कि भारतवर्ष एक अविभाज्य समष्टि नहीं है, एक देश नहीं है। हम लोगों से कहा जा रहा है कि भारतवर्ष एक उपमहाद्वीप है और उसका जो विभाजन अफगानिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान तथा बंगला देश के रूप में हुआ है वह इसलिए समीचीन है कि उसमें बसने वाली अनेक जातियों को अपना-अपना अलग स्वदेश चाहिए। परिणामस्वरूप भारतवर्ष को किसी एक समाज का स्वदेश नहीं माना जा सकता। अकेले हिन्दू समाज का तो बिल्कुल नहीं।

फिर हम लोगों को बतलाया जाता है कि इस उपमहाद्वीप का इतिहास केवल हिन्दू समाज का, हिन्दू जाति का ही इतिहास नहीं है। अब यह देश एक धर्मशाला माना जाने लगा है जिसमें अनेक प्रकार के आक्रान्ता, पश्चिम तथा पूर्व तथा अन्य दिशाओं से समय-समय पर आते रहे हैं। इस प्रकार भारतवर्ष का इतिहास इन आक्रान्ताओं का ही इतिहास बनकर रह गया है। इस इतिहास में एक प्राचीन पर्व है जिसे हिन्दू पर्व कहा जाता है, एक मध्यकालीन पर्व है जिसे मुस्लिम पर्व कहा जाता है और एक आधुनिक पर्व ब्रिटिश पर्व कहा जाता है। अब तो एक समकालीन पर्व का, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद शुरू होने वाले पर्व का समावेश भी इस देश के इतिहास में हो गया है। उस पर्व के सूत्रधार तथा जनक का नाम भी हमें बतलाया गया हैं।

अपप्रचार

तदनतर हम लोगों को समझाया जाता है कि भारतवर्ष का समाज एक समरस समाज नहीं हैं, वरन् वह एक बहु-जातीय, बहु-राष्ट्रीय, बहुभाषी समाज है। और भी अनेक प्रकार के 'बहु' उस समाज में देखे जाते हैं। हम लोगों को यह समझाया जाता है कि भारतीय संस्कृति हिन्दू संस्कृति नहीं

वरन् एक संकर संस्कृति है जिसमें स्वदेशी तथा विदेशी कई एक संस्कृतियों का समावेश है। यह सब सुनकर मुझे कभी-कभी हँसी आने लगती है। **हम जिस भारतीय संगीत की चर्चा करते हैं, वह हिन्दू संगीत है, हम जिस भारतीय मूर्ति-शिल्प की चर्चा करते हैं, वह हिन्दू मूर्ति-शिल्प है, हम जिस भारतीय स्थापत्य की चर्चा करते हैं वह समस्त, उन कतिपय गौण अंगों को छोड़कर जो विदेशी आक्रान्ता अपने साथ ले आये थे, हिन्दू स्थापत्य है।** भारतीय साहित्य की तो बात ही क्या ? वह तो नब्बे प्रतिशत भारतीय साहित्य है। यह समस्त सांस्कृतिक सम्पदा हिन्दू समाज की थाती है। हिन्दुओं ने इसका सृजन किया है, हिन्दुओं ने ही इसका संरक्षण किया है। आज भी हिन्दू ही इसको समद्ध तथा प्रबुद्ध कर रहे हैं। किन्तु फिर भी यदि यह दावा किया जाता है कि इस देश की संस्कृति हिन्दू संस्कृति हैं और उस संस्कृति का इतिहास हिन्दू इतिहास का अंग है, तो लोगों को बुरा-सा लगता है। हिन्दू संस्कृति की बात करने वालों पर सम्प्रदायवादी होने का दोष लगाया जाता है।

किन्तु सबसे अद्भुत घटना जो इस देश में घटी है वह यह है कि इस देश का धर्म सनातन धर्म नहीं रहा। सनातन धर्म को अब इस देश में आदिम युग का अंधविश्वास समझा जाता है। कुछ लोग वेदान्त को ले लेते हैं और खूब बढ़-चढ़ कर उसकी चर्चा करते रहते हैं। कुछ अन्य लोग गीता को ले लेते है और गीता का गणुगान करते हुए नहीं अघाते। कुछ अन्य लोग सनातन धर्म के अन्यान्य पक्षों को लेकर चर्चा चलाते हैं, योग इत्यादि की व्याख्या करते हैं। इन लोगों को ख्याति प्राप्त होती है। चारों ओर इन लोगों का नाम लिया जाता है। ये लोग पुस्तकें लिखते हैं, भाषण देते हैं। किन्तु इन लोगों से जब यह कहा जाता है कि सनातन धर्म ने ही इस समस्त अध्यात्म-सम्पदा का सृजन किया हैं, इन सारे दर्शन-शास्त्रों का संग्रह किया है, इन सारे विधि-विधानों का विकास किया है, इस सारी संस्कृति को संवारा है तो ये लोग हामी भरना नहीं चाहते। एक नये धर्म ने सनातन धर्म का स्थान ले लिया है। इस नये धर्म का नाम है सेकुलरिज्म।

सेकुलरिज्म की घुट्टी

हम लोगों को समझाया जा रहा है कि सैकुलरिज्म के सहारे ही यह देश एक संगठित राष्ट्र बनेगा। सैकुलरिज्म के धरातल पर ही राष्ट्रीय ऐक्य की साधना की जा सकती है। अतएव एक राष्ट्रीय ऐक्य समिति का गठन किया गया है। इस समिति ने भारत-सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय को एक ऐसा इतिहास लिखवाने का आदेश दिया है जिसमें मुसलमान आक्रमणकारियों को विदेशी न कहा जाय, जिसमें इस्लाम के साम्राज्यवाद को बर्बर और विजातीय न माना जाय। हम लोगों से यह अपेक्षा की जा रही है कि हम इस्लाम को एक भारतीय धर्म के रूप में स्वीकार कर लें और उसको सम्मान का वही पद प्रदान करें, जो हम सनातन धर्म को देते आये हैं। इस न्याय का विस्तार अभी हमारे इतिहास के तथाकथित ब्रिटिश पर्व तक तक नहीं किया गया है। किन्तु कल को कुछ ऐसी आवाजें उठ सकती हैं कि अंग्रेजों को भी आक्रमणकारी तथा अनाचारी न कहा जाय। सो इसलिए कि अंग्रेजों ने हमें अंग्रेजी पढ़ाई, अंग्रेजी साहित्य से अवगत कराया, इस देश में अस्पताल, स्कूल तथा कालिज खोले और प्रत्येक प्रकार के आधुनिक उपकरण जुटाये।

ऐसी एक अवस्था आज इस देश में व्याप्त है। आज उस राष्ट्रदृष्टि का प्रायः पूर्ण विलोप हो चुका है जिसका उदय स्वदेशी आन्दोलन के समय हुआ था, जिसने हमारे जनगण को जगाया था और हमारे स्वाधीनता-संग्राम को आगे बढ़ाया था। राष्ट्रदृष्टि का विलोप इस देश में अन्यत्र इतना नहीं हुआ है जितना कि बंगाल में अथवा केरल में अथवा उन अन्य अंचलों में जहाँ अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार अपेक्षाकृत अधिक देखा जाता है। आज ऐसी अवस्था इस देश की हो गई है।

सैकुलरिज्म की धारणा का आयात हमने आधुनिक योरप से किया है। योरप में ईसाई चर्च ने बहुत रक्तपात किया था, एक-सौ-वर्ष, दो-सौ-वर्ष व्यापी युद्ध लड़े थे। ईसाइयत का उदय होते ही योरप एक गहन अंधकार में डूब गया था। मानवीयता, बुद्धिप्रवणता तथा सर्वजन हिताय-भावना जिनको मानव-सुलभ आस्थाएँ माना जाता है, वे सब ईसाइयत की हठधर्मी के नीचे दब गई थीं। योरप के कुछ लोगों ने ईसाइयत के विषय में विचार करना शुरू किया, विशेषतया ईसाइयत के उस पक्ष का परीक्षण जिसके अनुसार चर्च ने राजतन्त्र को पाशबद्ध किया हुआ था। योरप का सम्पर्क भारत, चीन तथा कई-एक अन्य देशों की प्राचीन संस्कृतियों से हो चुका था। फलस्वरूप वहाँ मानववाद, बुद्धिवाद तथा विश्ववाद की एक नई लहर उठने लगी थी। वहाँ चर्च के विरुद्ध एक संघर्ष का सूत्रपात हुआ था और धीरे-धीरे राजतन्त्र को चर्च के चंगुल से छुड़ा लिया गया था। इस संघर्ष ने ही योरप में सेकुलरिज़्म की

धारणा को जन्म दिया था। यह एक बहुत ही कल्याणकारी धारणा थी, विशेषतया उन देशों के लिए जो मतान्ध राजतन्त्रों द्वारा पीड़ित थे, जो ईसाइयत की अमानवीय तत्त्वमीमांसा द्वारा दलित थे। यह धारणा अब भी उन देशों के लिए कल्याणकारी है जो इस्लाम के चंगुल में फंसे हुए है।

धर्म को लेकर युद्ध नहीं

किन्तु भारतवर्ष में इस धारणा का प्रचार उस हिन्दू समाज को लक्ष्य करके किया जा रहा है जिसमें धर्म को लेकर कभी कोई मारकाट नहीं मची, धर्म को लेकर कभी कोई तनाव नहीं खड़ा हुआ। अभी कुछ दिन पहले मैं पूर्व के कई-एक देशों की यात्रा कर रहा था। चीन के बौद्ध भिक्षुओं से बात करने का अवसर मुझे मिला। मैंने उनसे पूछाः "चीन में बौद्धधर्म बाहर से आया था। चीन में कन्फ्यूसियस द्वारा प्रवर्तित धर्म पहले से विद्यमान था। ताओ द्वारा प्रवर्तित धर्म भी था। क्या बौद्धधर्म तथा चीन के पुराने धर्मों के बीच कोई द्वन्द्व देखा गया ? उन्होंने उत्तर दियाः "नहीं, कभी नहीं।" द्वन्द्व का एक भी अवसर इसलिए नहीं आया कि कन्फ्यूसियस तथा ताओ के धर्म भी अध्यात्म की उसी गहन-गम्भीर भूमि से उद्भूत हुए थे जिससे कि सनातन धर्म की सरिता बह कर आई थी, जिससे कि बौद्धधर्म, जैनधर्म तथा वैष्णवधर्म का उद्गम हुआ था। इन धर्मों में मानवजाति को दिए गए एक ही अध्यात्म-सन्देश के विविध पर्याय पाये जाते हैं। मैंने जापान में यह जानने की कोशिश की कि बाहर से आए हुए बौद्धधर्म के साथ वहाँ के प्राचीन शिन्तो धर्म का क्या कभी कोई संघर्ष हुआ। वहाँ भी मुझे यही उत्तर मिला कि ये दोनों धर्म कभी आपस में नहीं टकराए। आज भी वहाँ दोनों धर्म परस्पर सौहार्द के साथ रह रहे हैं। मेरी एक टैक्सी चालक के साथ चर्चा चली। वह एक प्रबुद्ध व्यक्ति था। उसने मुझसे कहा "मैं तो बौद्ध भी हूँ और शिन्तो भी"। प्राचीन ग्रीस, प्राचीन रोम तथा एशिया और योरप के अन्यान्य प्राचीन देशों की कहानी भी यही है। ईसाइयत के उदय से पहले धर्म को लेकर कभी कोई युद्ध नहीं हुआ था।

धर्म के नाम पर होने वाले युद्धों का सूत्रपात सर्वप्रथम ईसाइयत ने ही किया। इस्लाम का आविर्भाव होने पर ये युद्ध और भी रक्तरंजित हो उठे। किन्तु योरप में मानववाद, बुद्धिवाद या विश्ववाद की लहर उठने से राजतन्त्र पर से ईसायत का सिक्का समाप्त हो गया। और इस प्रकार सेकुलरिज़्म की धारणा ने जन्म लिया। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ यह धारणा योरप के प्रसंग में बहुत कल्याणकारी सिद्ध हुई। परिणामस्वरूप योरप के समाज ने बहुत प्रगति की, योरप में विज्ञान का विकास हुआ, तकनीकी का विकास हुआ और योरप के देश सामाजिक कल्याण की दिशा में आगे बढ़े। यह सब सम्पदा योरप को सेकुलरिज़्म की धारणा से ही उपलब्ध हुई।

हिन्दू समाज के विरुद्ध एक अस्त्र

किन्तु हिन्दू समाज तो सदा ही और स्वभावतः ही एक सेकुलर समाज रहा हैं। हिन्दू समाज में धर्म को लेकर कभी कोई रक्तपात नहीं हुआ। हिन्दू समाज ने कभी किसी मतान्ध राजतन्त्र को जन्म नहीं दिया। किसी भी हिन्दू राजा का उदाहरण ले लीजिए। व्यक्तिगत निष्ठा के नाते वह चाहे बौद्ध रहा हो, चाहे जैन, चाहे वैष्णव, चाहे किसी अन्य सम्प्रदाय का अनुयायी। किन्तु उसके दरबार में, उसके राज्य में सभी धर्मों को समान रूप से सत्कार हुआ है, समानरूप से संरक्षण हुआ है। अथवा यह कहना अधिक समीचीन होगा कि इस देश में सन्त-महात्मा ही राजा के श्रद्धाभाजन रहे हैं, न कि राजा सन्त-महात्माओं का श्रद्धा-भाजन। यहाँ के सन्त-महात्माओं को आर्चबिशप ऑफ कैन्टरबरी की नाई राजा के दरबार में हाजिर नहीं होना पड़ा। इंग्लैंड का राजा वहां के धर्म का परित्राता कहलाता है। किन्तु भारत में राजा का ऋषियों, मुनियों तथा सन्त-महात्माओं की शरण में जाकर उपदेश सुनना पड़ता था। इस प्रकार के इस देश में, इस प्रकार के इस समाज में योरप से सेकुलरिज़्म की धारणा का आयात किया गया है। यही नहीं सेकुलरिज़्म की धारणा का उपयोग हिन्दू समाज के विरुद्ध एक अस्त्र के रूप में किया जा रहा है। आप सब यह जानते हैं कि सेकुलरिज़्म का अर्थ इस देश में क्या है। इस शब्द को सुनते ही आपको इसमें भरी हिन्दू-विद्वेष की भावना का संकेत मिलता है। इस देश में आज सेकुलरिज़्म का एक ही काम है– हिन्दू समाज को कोसना, हिन्दू संस्कृति को कोसना, हिन्दू इतिहास को कोसना। जो कुछ हिन्दू कहा जाता है उस सबको कोसना ही सेकुलरिज़्म कहलाता है। हिन्दू शब्द ही एक कुशब्द बनकर रह गया है। सेकुलरिज़्म के **शब्दकोश** में मुसलमान एक अल्पसंख्यक समुदाय हैं, **ईसाई भी एक** अल्पसंख्यक समुदाय है। किन्तु हिन्दू समज एक **"वीभत्स"** बहुमत है। सेकुलरिज़्म नाम का यह धर्म ही **आज सनातन धर्म** का स्थान लेता जा रहा है। यह एक **नई दृष्टि है जिसने** सनातन धर्म की दृष्टि का स्थान ग्रहण **किया है। और सनातन**

धर्म की दृष्टि द्वारा पुष्ट समाज तथा संस्कृति तथा इतिहास तथा अन्य समस्त सम्पदा हेय होते जा रहे हैं।

आक्रमक रवैया

सेकुलरिज़्म के इस अनाचार को देखकर, सेकुलरिज़्म द्वारा प्रसारित इस हिन्दू-विद्वेष को देखकर, हिन्दू समाज को यह आभास होने लगा है कि कहीं न कहीं कोई बहुत बड़ा घोटाला है। सेकुलरिज़्म का प्रश्रय पाकर तथाकथित अल्पसंख्यक समाज उत्तरोत्तर उद्धत होते जा रहे है। ईसाई मिशनरियों को अरबों डालर पाश्चात्य राष्ट्रों के सैन्य-प्रतिष्ठानों से, गुप्तचर-संस्थानों से तथा अन्यान्य सरकारी विभागों से प्राप्त होता है। इस प्रचुर धनराशि को इस देश में लाकर ये लोग बड़े-बड़े मिशनों की स्थापना करते हैं, गिरजाघर बनाते हैं, हिन्दुओं को ईसाई बनाने में व्यय करते हैं। इस प्रकार इस देश में ईसायइत का "प्रकाश" फैलाया जा रहा है। जब से पेट्रोल के बदले में प्राप्त मुद्रा का भण्डार भरने लगा है। इस्लाम भी यही सब कर रहा है। देश के विभाजन के बाद इस्लाम का आत्मविश्वास कुछ-कुछ कुण्ठित हो गया था। किन्तु अब वह फिर से मुस्लिम लीग के दिनों की याद दिलाने लगा है। आप लोग मुस्लिम प्रतिष्ठानों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर देखिए, विशेषतया उर्दू भाषा में छपी पत्र-पत्रिकाएँ। आप तुरन्त ही समझ जाएँगे कि इस्लाम का साम्राज्यवाद आज किस प्रकार फिर से आक्रमक रवैया अख्तियार करता जा रहा है।

नवजागरण

इस समस्त घटनाक्रम के परिणामस्वरूप सेकुलरिज़्म की इस मूढ़ मीमांसा को सुनकर, और कुछ काल तक हताश हो रहने वाली साम्राज्यवादी शक्तियों के आक्रामक उत्थान को देखकर, हिन्दू समाज में आज एक प्रकार के नवजागरण की लहर उमड़ रही है। विश्व हिन्दू परिषद इस जागरण को संगठित करने के लिए, इस उत्साह को एक दिशा देने के लिए, नेतृत्व की भूमिका निभा रही है। किन्तु मेरा मन कहता है कि जब तक स्वदेशी आन्दोलन द्वारा प्रदत्त राष्ट्रदृष्टि का पुनर्जागरण, पुनरोत्थान, पुनरनुमोदन तथा, नवीन परिस्थिति में पुनर्स्थापन नहीं होता, तब तक यह सारा प्रयास सफल नहीं हो पाएगा, सक्षम नहीं हो सकेगा। □

पंथनिरपेक्षता की सही परिकल्पना

(पृष्ठ २६ का शेष)

कभी आत्मीयता का अनुभव नहीं कर पाये। भारतीयों को पराभूत करने वाले विदेशी आक्रान्ताओं के साथ तादात्म्य स्थापित करने की मानसिकता के कारण अपनी श्रेष्ठता का अहंभाव उन्हें एक बार फिर शासक होने का स्वप्न दिखाता है। इस भ्रान्ति के कारण वे अपनी वास्तविक पहचान खो बैठे हैं। आज भारतीय मुस्लिम समाज के सामने सबसे बड़ा संकट उसकी पहचान का संकट है। 'अल्पसंख्यक अधिकार' न केवल इस भ्रान्ति को और बढ़ाते हैं वरन् राष्ट्र जीवन में पूरे अल्पसंख्यक समुदाय की एकात्मता और समरूपता के मार्ग में भी बाधा बनकर खड़े हो जाते हैं।

छद्म पंथनिरपेक्षता

वस्तुतः इस छद्म पंथनिरपेक्षता सृजन का दायित्व उन राजनीतिज्ञों को ही दिया जा सकता है जो प्रारम्भ से ही तुच्छ राजनीतिक स्वार्थों के लिए इन रूढ़िवादी और अलगाववादी तत्वों को प्रश्रय देते रहे हैं। सच कहा जाये तो मुस्लिम समुदाय का सबसे बड़ा शत्रु हिन्दू पुनर्जागरण नहीं, ये तथाकथित 'पंथनिरपेक्ष' राजनीतिज्ञ हैं। मुस्लिम बन्धुओं को भी इस बात को बड़े स्पष्ट तौर पर समझ लेना चाहिए।

श्री हमीद दलवई ने इस छद्म पंथनिरपेक्षता का पर्दाफाश करते हुए यह कहकर पं. जवाहरलाल नेहरू की आलोचना की थी कि उन्होंने हिन्दुओं के समान मुस्लिम समुदाय के उत्थान और सुधार के लिए व्यापक प्रयास नहीं किये। आज भी परिस्थितियों में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। इस तथ्य से हम सभी परिचित हैं कि किस प्रकार राम मन्दिर की निर्मिति हुई। कारसेवा अभियान को लेकर सैय्यद बुखारी और उत्तर प्रदेश में आजम खान जैसे उग्र, कट्टर और घोर रूढ़िवादी तथाकथित मुस्लिम नेताओं को मुसलमानों के प्रवक्ता के रूप में दूरदर्शन पर बार-बार दिखाया गया और समस्या का समाधान चाहने वाले सदाशय मुस्लिमों का स्वर दबा दिया गया। पिछले कुछ वर्षों में देश ने दंगों की जिस दुखद त्रासदी का साक्ष्य दिया है, उसे झेला और भोगा है, उसके पीछे भी ऐसे ही व्यक्तियों और कुछ अन्य 'पंथनिरपेक्ष' राजनेताओं के भड़काने वाले भाषण ही थे।

देश में उत्पन्न विस्फोटक स्थिति को देखते हुए न केवल 'पंथनिरपेक्षता' की सही संकल्पना की पहचान कर अलगाव एवं विघटनवादी राजनीति को निरस्त करने की आवश्यकता है वरन् भारतीय आत्मा से तादात्म्य स्थापित कर राष्ट्रीय एकात्मता, समता और समृद्धि की साधना के लिए सकारात्मक प्रयास भी आवश्यक है।

□

With Best Compliments from :

U.P. STATE TOURISM DEVELOPMENT CORPORATION LTD.

UPSTDC has got the widest network of Hotel Units, Tourist Bungalows throughout the state and a very dedicated team of staff to extend you hospitality with assured quality.

Other Services

UPTOURS (Transport, Air/Railway Ticketing & Hotel Bookings), Advance Reservation Centre, Package Tours. **For more information & reservation please contact our Advance Reservation Centres at :**

Central Reservation Centre UPTOURS,

HOTEL GOMTI, 6 Sapru Marg; **LUCKNOW,** Ph : (0522) 2215005, 2614284
Fax : (0522) 2612659, E-mail : gomtiupt@sancharnet.in

UPTOURS HOTEL TAJ KHEMA, Taj Ganj; **AGRA,** Ph : (0562) 2330140
Fax : (0562) 2230001

UPTOURS TOURIST BUNGALOW, Parade Kothi; **VARANASI,**
Ph : (0542) 2208413, 2208545; Fax : (0542) 2206638

UPTOURS HOTEL ILAWART, 35 M.G. Marg; **ALLAHABAD**
Ph : (0532) 2601440, Fax : (0532) 2611374

U.P. TOURISM, Chandralok Building, 36, Janpath, **NEW DELHI**
Ph : 011-23322251, 23350048, Fax : 011-23711296, E-mail : uptsmnd@bol.net.in

U.P. TOURISM, 28 Commander-in-Chief Road; **CHENNAI**
Ph : 044-28283276, Ph/Fax : 044-28283276

U.P. TOURISM, 38 World Trade Centre, Cuffe Parade, Colaba; **MUMBAI**
Ph : 022-22155082, Ph/Fax : 022-22185458

U.P. TOURISM, 12-A, II Floor, Netaji Subhash Road; **KOLKATA**
Ph : 033-22214974, Ph/Fax : 22206798

UTTAR PRADESH

The essence of India

U.P. State Tourism Development Corporation Ltd.,
Rajarshi Purshottam Das Tandon Paryatan Bhawan,
IIIrd Floor, C-13. Vipin Khand, Gomti Nagar, Lucknow-226010 (U.P.) India
Ph : 0522-2308017, 2308916, **Fax** : 2308937 **E-mail** : upstdc@sancharnet.in;
yatrup@sancharnet.in **Web Site** : http://www.up-tourism.com

सुश्री मायावती
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

श्री फतेह बहादुर
गन्ना राज्य मंत्री

श्रीमती प्रेमलता कटियार
मंत्री, गन्ना विकास एवं चीनी उद्योग

गन्ना विकास व चीनी उद्योग के सफलता और विकास का एक वर्ष

गन्ना किसानों और चीनी उद्योग की समृद्धि हमारा लक्ष्य

उचित गन्ना मूल्य दिलाने का दृढ़ प्रयास

- विशेष प्रयास कर केन्द्र सरकार से न्यूनतम सांविधिक गन्ना मूल्य में इस वर्ष से 7.45 रुपये की वृद्धि व 20 लाख टन चीनी के बफर स्टॉक का सृजन।
- सरकार नियंत्रित चीनी मिलों से रु. 95/- व 100/- प्रति कुन्टल गन्ना मूल्य का भुगतान।
- प्रदेश शासन से गन्ना मूल्यांश के रूप में चार रुपये प्रति कुन्टल की किसानों को विशेष सहायता।
- सरकारी व सहकारी मिलों को गन्ना मूल्य आदि के भुगतान हेतु 200 करोड़ रुपये की शासकीय सहायता।
- 49 सहकारी/सरकारी मिलों का पिछले पेराई सत्र तक का शत-प्रतिशत गन्ना मूल्य भुगतान।
- किसान हित में सर्वोच्च न्यायालय व प्रधानमंत्री भारत सरकार तक प्रभावी पैरवी।

रिकार्ड चीनी उत्पादन की ओर अग्रसर

- ☆ गन्ना क्षेत्रफल, गन्ना उत्पाद व चीनी परता में बढ़ोत्तरी, अधिक चीनी उत्पादन का लक्ष्य।
- ☆ किसान हित में 8 रुग्ण चीनी मिलों का पुनः संचालन।

गन्ना विकास के क्रान्तिकारी प्रयास

- 5 नई उन्नतशील गन्ना प्रजातियाँ अवमुक्त, अलाभकारी 11 पुरानी प्रजातियाँ खारिज।
- कृषि निवेशों की सहज उपलब्धता हेतु 83 हजार किसानों को क्रेडिट कार्ड, अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण सुविधा प्रारम्भ।
- विभाग द्वारा आदर्श गन्ना बीज बदलाव कार्यक्रम लागू। अगैती प्रजातियों का क्षेत्रफल 79 हजार हेक्टेयर बढ़ा। शोध केन्द्रों द्वारा 1.23 लाख कुन्टल अभिजनक बीज का उत्पादन/वितरण।
- गन्ना विकास की प्रदेशीय योजनाओं व केन्द्रीय सहायता प्राप्त योजना में कुल 4.30 करोड़ रुपयों की लागत से सघन गन्ना विकास।
- समतामूलक समाज को बढ़ावा देने हेतु अनुसूचित जाति/जनजाति के किसानों को गन्ना खेती में 1.50 करोड़ रुपयों की सहायता।
- चीनी मिलों के क्षेत्र में 128 अम्बेडकर व बार्डर के ग्रामों में 140 कि.मी. लम्बी सड़कों का निर्माण।
- नवीनतम गन्ना कृषि जानकारी हेतु 1.8 लाख किसानों को प्रशिक्षण, 243 किसानों की अन्तर्प्रदेशीय अध्ययन यात्रा का आयोजन व गन्ना विभाग द्वारा निःशुल्क प्रचार/प्रसार।
- समितियों व परिषदों के सुदृढ़ीकरण हेतु विकास कमीशन का पुनर्निर्धारण, फलस्वरूप अतिरिक्त 12 करोड़ रुपयों की आय से गन्ना विकास कार्यों में गति।
- सहकारी गन्ना समिति संघ द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने व पुराने ऋणों की अदायगी हेतु एकमुश्त समाधान योजना, लगभग 200 करोड़ रुपये का कृषि निवेश वितरित।

संवेदनशील प्रशासनिक व्यवस्था

- ❑ गन्ना घटतौली पर कठोर नियंत्रण, 436 तौल लिपिकों का निलम्बन।
- ❑ समयबद्ध कार्यवाही तथा किसानों की समस्या के निराकरण के विशेष प्रयास।

सह उत्पादों से खुशहाली लाने का संकल्प

- ☆ 32 चीनी मिलों से 165 मे.वा. बिजली उत्पादन का अनुबन्ध। शीघ्र 500 मे.वा. बिजली उत्पादन का लक्ष्य।
- ☆ गन्ना शीरे से बने गन्ना पेट्रोल गैसोहल का 16 स्थानों से वितरण।
- ☆ प्रेसमड से जैविक व कार्बनिक खाद का उत्पादन।

गन्ना विकास हमारा आधार, चीनी उद्योग हमारा भविष्य

कांग्रेसी पंथनिरपेक्षता की उपज है पाकिस्तान

□ अजय मित्तल

महात्मा गांधी द्वारा १९२० में कांग्रेस का नेतृत्व संभालने के बाद जिस पंथनिरपेक्षता की नीति पर उसने चलना शुरू किया (महात्मा जी उसे 'सर्वधर्मसमभाव' का सिद्धान्त बताते थे, जिसके द्वारा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' की स्थापना की जानी थी), मुस्लिम तुष्टिकरण उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग रहा हे। लोकमान्य तिलक के युग में राष्ट्र-निष्ठा जगाकर तथा स्वतन्त्रता-प्रप्ति की भावना उद्दीप्त कर मुसलमानों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाने का भाव प्रबल था। स्वदेशी तथा स्वदेशभक्ति की भावना के कारण अनेक उल्लेखनीय मुस्लिम नेता स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े थे। तिलक द्वारा प्रणीत शिवाजी उत्सवों में बड़ी संख्या में मुसलमान शामिल होते थे। हैदराबाद के काजी सैफुद्दीन, मुस्लिम इतिहासकार मौलवी अब्दुल करीम, कलकत्ता के मौलवी लियाकत हुसैन, नागपुर के समीमुल्ला खां, डॉक्टर अंसारी, हकीम अजमल खान, बैरिस्टर जिन्ना आदि दर्जनों राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता तिलक से प्रेरणा लेकर विशुद्ध राष्ट्रभाव को इस्लामियत के ऊपर अधिमान देकर राजनीति में मुकाम बनाये हुए थे। इसलिए सर सैयद अहमद खान, प्रिंस आगा खान और ढाका के नवाब सलीमुल्ला जैसे कट्टर मजहबियों के रहते भी राष्ट्रवाद को मुस्लिम समाज में समर्थक स्वर प्राप्त था। बैरिस्टर जिन्ना तो मुस्लिम लींग की १९०६ में स्थापना के बीस साल बाद तक भी उसके सबसे प्रखर व मुखर विरोधी थे। इस्लामी अलगाववाद को वे विष-तुल्य समझते थे। १९०९ में मार्ले-मिंटो सुधार द्वारा मुस्लिमों को दिये गये पृथक निर्वाचन मंडलों की उन्होंने कड़ी मुखालफत की थी और इसके विरोध में कांग्रेस से प्रस्ताव पारित करवाया था। यही जिन्ना गांधी युग में पूरे अलगाववादी तथा आतंकवादी बन गये। इस बदल के पीछे गांधी द्वारा पालित-पोषित वह पंथनिरपेक्षता ही थी, जिसने मुस्लिम समाज के मन में हिन्दुओं से अलगाव सिखाया, बल्कि भारत राष्ट्र की जगह इस्लामी उम्मत के हितों को एकमात्र पोषकीय तत्त्व बना दिया।

आशंका, जो सत्य सिद्ध हुई

तिलक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का नारा कभी बुलंद नहीं किया था। पर गांधी जी ने कांग्रेस की कमान संभालते ही इसका राग अलापना शुरू किया। नागपुर कांग्रेस (१९२०) में तत्कालीन मध्य प्रान्त कांग्रेस के सहसचिव डॉक्टर हेडगेवार ने इस बारे में गांधी के सामने अपनी गहरी शंका रखी थी। उन्होंने कहा था कि 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' शब्द प्रयोग प्रचार में आने के पूर्व राष्ट्रप्रेम के कारण अनेक मुसमान आजादी के आंदोलन में थे। हिन्दुस्तान में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि अनेक लोग रहते हैं। उन सबकी एकता की कल्पना रखने के स्थान पर केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करना मुसलमानों में खुद को विशिष्ट व बाकियों से श्रेष्ठ समझने की भावना निर्माण करेगा। इससे एकता के स्थान पर पृथकता पनपेगी। पर गांधी जी मानने को तैयार नहीं हुए। इतिहास ने प्रमाणित कर दिया कि डॉक्टर जी की आशंका सत्य थी।

मजहबी कट्टरता को बढ़ावा

गांधी ने १९२० में खिलाफत को समर्थन देकर इस्लामी कट्टरपंथियों के सामने कांग्रेस को बिछा दिया। वे स्वयं खिलाफत कमेटी के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे। कांग्रेस द्वारा इकट्ठा किये गये 'तिलक स्वराज्य फंड' का अस्सी लाख रुपया (आज के करीब अढ़ाई सौ करोड़ रुपये के बराबर) खिलाफत कमेटी के सुपुर्द कर दिया गया। तुर्की में इस्लामी खलीफा की बहाली के सवाल को गांधी जी ने स्वराज्य से भी बड़ा सवाल बताते हुए कह डाला कि वे उसके लिए स्वराज्य का प्रश्न स्थगित करने को तैयार हैं। उन्होंने अफगानिस्तान के शासक अमीर अमानुल्ला खां को भारत पर राज्य करने का निमंत्रण भिजवाया। मौलाना मौहम्मद अली और मौलाना शौकत अली, जिन्हें जवाहर लाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में पहले दर्जे का मतान्ध बताया है, मुस्लिमों के नेता बनकर अग्रिम पंक्ति में आ गये। यह खिलाफत का ही परिणाम था कि नरमपंथी और उदार मुसलमान भी कट्टर मजहबी बने और कट्टर मताचार का पालन करते हुए दाड़ी बढ़ाने लगे, तुर्की टोपी पहनने लगे। जिन्ना और इकबाल राष्ट्रवादी से मजहबवादी बन गये।

खिलाफत बनाम पाकिस्तान

खिलाफत के प्रश्न में देश को उलझाना इस्लामी अलगाववाद को हवा देने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी। पाकिस्तान की इबारत इसी ने लिखी। इस आंदोलन ने दंगों की एक भयावह श्रृंखला भारत को दी, जिस कारण १९२०-४७

के कालखंड को 'दंगा युग' की संज्ञा दी जा सकती हैं।

कांग्रेसी पंथनिरपेक्षता ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड द्वारा १६ अप्रैल, १९३२ को घोषित 'साम्प्रदायिक पंचाट' (Communal award) के सम्बन्ध में जैसे ढुलमुल रवैये का परिचय दिया, वह भारत को विभाजन के रास्ते पर ढकेलने वाला दूसरा बड़ा पग सिद्ध हुआ। कांग्रेस ने इस विभेदकारी निर्णय के बारे में घोषणा की कि वह इसे न तो स्वीकार करती है, न अस्वीकार। इस भ्रमपूर्ण शब्दावली का सीधा सा मतलब था कि वह इसका विरोध नहीं करती। मुसलमानों की हिटलर के समान बढ़ती मांगों (यह डॉक्टर अम्बेडकर के शब्द थे) के आगे झुकते चले जाने के अपने स्वभाव का कांग्रेस ने फिर परिचय दिया, और इस्लामी अलगाववादियों की पिपासा और तेज कर दी।

राष्ट्रगान, ध्वज, भाषा पर सौदेबाजी

राष्ट्रीय प्रतीकों के विषय में मुस्लिम लीग की घोर आपत्तिजनक दृष्टि को स्वीकार करना कांग्रेस का तीसरा वह घातक कदम था जिसने विभाजन को अपरिहार्य बना दिया। सर्वाधिक उल्लेखनीय उदाहरण 'वंदे मातरम्' का हैं। मुस्लिम लीग इस राष्ट्रीय गीत के गायन का विरोध करती थी, क्योंकि इसमें दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि का उल्लेख हे। गीतकार बंकिम ने भारत मां को ही समस्त देवियों का व्यक्त रूप बताया है। वस्तुतः आपत्ति तो इन देवियों की पूजा करने वाले हिन्दू समाज को होनी चाहिये थी कि क्या हमारी देवियाँ कुछ नहीं है। पर वे तो सम्पूर्ण भाव-विह्वलता के साथ इस गीत को गाते रहे और खुशी-खुशी कुर्बानियाँ देते रहे। और मुस्लिम लीग की पूरी तरह अयुक्तियुक्त मांग के सामने झुक कर कांग्रेस ने १९३७ में 'वंदे मातरम्' का विभाजन मंजूर कर लिया। तय किया गया कि मात्र पहले दो पद, जिनमें देश का भौतिक चित्रण था, गाये जायें। जो अंश निकाल दिये गये वही इस गीत के प्राण-आत्मा थे।

कांग्रेसी पंथनिरपेक्षता की ही देन है एक नया ध्वज 'तिरंगा' जो भगवा ध्वज को हटाकर लाया गया। यहाँ भी कांग्रेस ने दिखा दिया कि उसे भारत के इतिहास, परंपरा और विशिष्टता का जरा भी ख्याल नहीं है क्योंकि भगवा इन सबका सर्वश्रेष्ठ परिचायक था। कांग्रेस की अपनी 'झंडा कमैटी' की रिपोर्ट (१९३१) ही इस बारे में सब कुछ बयान कर देती हे। इसकी सर्वसम्मत राय थी कि भारत का ध्वज एकमेव केसरिया रंग का ही होना चाहिये। पर तुष्टिकरण ने तर्क और इतिहास को नीचे धकेल दिया।

राष्ट्रभाषा के सवाल पर भी गांधी जी ने कांग्रेस के घुटने लीग के सामने टिकवाये। यहाँ हिन्दी को हटाकर 'हिन्दुस्तानी' जबान लायी गयी। यह उर्दू ही थी– भारतीय आत्मा से रहित। राष्ट्रगीत तथा राष्ट्र-ध्वज की भांति राष्ट्रभाषा का सवाल भी कांग्रेसी पंथनिरपेक्षता ने अपने निराले अंदाज में निपटाया। बच्चों के लिए उन दिनों लिखी गयी हिन्दुस्तानी किताबों में श्री राम बन गये बादशाह, सीता माता 'बेगम सीता' लक्ष्मण जी 'शाहजादा लक्ष्मण' और मुनि वसिष्ठ 'मौलाना वसिष्ठ'। महाकवि भूषण की 'शिवा बावनी' जैसी अमर और प्रेरक कृतियाँ पाठ्यक्रम से बाहर की गयीं। 'सत्यार्थप्रकाश' के तेरहवें व चौदहवें समुल्लास को प्रतिबंधित किया गया। राष्ट्र का मनोबल इस तरह तोड़ा गया।

इस सबसे उत्साहित मुस्लिम लीग इस्लामी पृथक्तावाद का परचम फहराते हुए अपनी माँगें सुरसा के आकार के समान बढ़ाती गयी और अन्ततोगत्वा उसने सब मामलों में हिन्दुओं के साथ समानता की मांग कर डाली। यानी २३ प्रतिशत को ७५ प्रतिशत के बराबर अधिकार। तुष्टिकरण पर तुली कांग्रेस ने केंद्रीय धारा सभा व मंत्रिमंडल के लिए इस मांग को मान भी लिया। वह यह न समझा सकी कि मवाली के समक्ष झुकना कसाई को निमंत्रण देगा। पर भारतीय एकता-अखंडता की गाय कांग्रेसी पंथनिरपेक्षता ने लीगी कसाई के हाथों सौंप डाली थी, जिसने उसे निर्दयतापूर्वक १४ अगस्त, १९४७ को जिबह कर ही डाला। □

– खंदक, मेरठ- २५०००२

पाकिस्तानी तत्वों की भरमार

'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के अनुसार कलकत्ता में जो बम फटा उसका अपराधी रशीद खान कांग्रेस और सी.पी.एम. दोनों की हर तरह से मदद करके उनसे सुरक्षा प्राप्त करता था। दाऊद इब्राहीम और रूसी पठान के कांग्रेसी नेताओं के साथ गहरे सम्बन्धों की बार-बार चर्चा हुई है। भारत की राजनीति में पाकिस्तानी और अपराधी तत्त्वों की भरमार होती जा रही है।

मतान्तरण और राष्ट्रवाद

□ बलबीर पुंज

इस्लाम और ईसायत में क्या साम्य है ? पुर्तगालियों ने गोवा पर १५१० ई. में कब्जा किया। १५३५ में दमन व दीव और बाद में दादरा व नगरहवेली पर पुर्तगालियों का अधिकार हो गया था। १५४० तक इन पांचों क्षेत्रों के सभी मंदिरों को गिराकर पुर्तगानियों ने वहाँ चर्च खड़े कर दिए। उन्होंने बलात् मत-परिवर्तन के द्वारा लाखों हिन्दुओं को ईसाई बनाया। स्थानीय लोगों को ईसाई बनाकर उन्होंने अपने साम्राज्यवाद के समर्थक भी खड़े कर लिए। दमन व मतांतरण के कारण वे साढ़े चार सौ साल तक भारत की भूमि पर टिके रहे। यह मतांतरण की प्रक्रिया 'क्रूसेड' (धर्मयुद्ध) के नाम पर की गई। सन् २२२ में अंतिम रोम सम्राट कॉन्स्टेन्टाइन के ईसाई मत स्वीकार करने से लेकर उन्नीसवीं सदी तक ईसाई शासकों ने उनके धर्मगुरुओं के आदेश एवं साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका और एशिया महाद्वीप के करोड़ों लोगों का नरसंहार किया और विश्व की महान संस्कृतियों का विनाश किया।

तलवार की नोंक पर

इस्लाम के प्रवर्तक पैगंबर मोहम्मद ने स्वयं को 'अल्लाह का दूत' घोषित किया। उनके अनुयायियों ने 'जिहाद' के नाम पर अरब, मिस्र, ईरान, इराक व यूरोप के अन्य देशों में सामूहिक कत्लेआम और अमानवीय अत्याचार के द्वारा इस्लामी सत्ता का प्रसार किया। इस्लाम की इस जिहादी अवधारणा ने यहूदी, पारसी व मिस्र की समृद्ध संस्कृतियों का सर्वनाश किया। भारत में मोहम्मद बिन कासिम से लेकर औरंगजेब तक के लगभग ८०० वर्षों में भारतीय संस्कृति पर इस्लामी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए खून की नदियाँ बहाई गईं। अपनी सैन्य ताकत के बल पर महिलाओं व पुरुषों को तलवार की नोक पर इस्लाम कबूल करने के लिए बाध्य किया गया। कभी अखंड भारत का अंग होने के कारण पाकिस्तान, बंगलादेश व भारत के वर्तमान मुसलमान मतांतरित हिन्दुओं के ही वंशज हैं, किन्तु आज वे अपने पूर्वजों की धरा की संस्कृति को सम्मान नहीं देते और अपने को उससे अलग मानते हें। क्यों ?

साम्राज्यवादी स्वरूप

इस्लाम और ईसाइयत का मूल स्वरूप साम्राज्यवादी है। उनकी अवधारणा विस्तार पर केंद्रित है। यह स्थापित सत्य है कि दोनों ही अपनी मान्यताओं को सर्वोपरि और अन्य मतों को अपना उच्छिष्ठ मानते हैं। साम्राज्यवादी होने के कारण दूसरे मतों को आत्मविगलित करना दोनों का ध्येय है। यह ध्येय चूंकि एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहकर प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए इन मजहबों में राष्ट्र की अवधारणा भी नहीं पाई जाती। वहीं हिन्दुत्व, जोकि एक निश्चित भौगोलिक अवस्थिति में रहने वालों का परिचायक है, सहअस्तित्व के सिद्धांत का प्रचार-प्रसार करता है। इतिहास गवाह है कि भारत ने उन बर्बर मुस्लिम आक्रमणकारियों को भी यथेष्ट अवसर दिया, जिन्होंने इसके मर्म पर ही चोट की। भारत की संपत्ति को 'माले गनीमत' मानने वालों को भी आत्मसात कर उन्हें पल्लवित-पुष्पित होने का मौका उपलब्ध कराना भारतीय संस्कृति की उदारता का परिचायक है।

भारत की बहुरंगी संस्कृति में अरब का मुस्लिम, इजराइल का यहूदी, लाओस का बौद्ध और उत्तरी कोरिया का कम्युनिस्ट सब शामिल हैं। यह एक अचरज की बात है कि इतने मतों व बहुधर्मी-बहुवर्णी समाज होने के बावजूद भारत सांस्कृतिक रूप से एक है। यह संस्कृति हिन्दू संस्कृति है, जो श्रेष्ठ आचार-विचार के विनिमय के कारण पुरातन के साथ नित नूतन भी है।

भारत की उदारवादी परम्परा

हिन्दू धर्म के मान्य आद्य ग्रंथों या वेदों पर भी कोई तर्कसंगत वाद-विवाद उठता और कोई नया मान्य पंथ उभरता है तो निस्संदेह हिन्दू धर्म के कई अनुयायी इसे सहर्ष स्वीकर करने को तत्पर मिलेंगे। यदि ऐसा नहीं होता तो वेदों के साथ साम्य नहीं रखने वाली बौद्ध, जैन आदि धाराएँ पल्लवित होने से पहले ही सूख जातीं। हिन्दुओं की मान्यता है कि वेद श्रुति परम्परा से एक कान से दूसरे कान से युगों से प्रवाहित होती आ रही है। और गीता तो खुद भगवान के श्रीमुख से उच्चरित उपदेश है। परन्तु हिन्दू धर्म में अपनी इन मान्यताओं को दूसरे पंथ पर थोपने का इतिहास नहीं है। और न ही इस ने दुनिया को दारुल हरब या दारूल इस्लाम जैसे दो धड़ों में बांटने की कभी कल्पना की।

भारत की इस उदारवादी परंपरा के बावजूद यहीं की मिट्टी में पल-बढ़ रहे कुछ मतों का हिन्दू विरोधी रवैया दुर्भाग्यपूर्ण है। नवंबर, १९९९ में पोप ने अपने दिल्ली अभिभाषण में पहली और दूसरी सहस्राब्दि में यूरोप व अमेरिका के ईसाईकरण की तर्ज पर तीसरी सहस्राब्दि में एशिया के ईसाईकरण की घोषणा की थी। गौरतलब है कि यह उद्‌घोष वेटिकन के प्रसाद से नहीं, बल्कि भारत की भूमि से किया गया था। भारत ने तो अपने सर्वपंथसमभाव के सिद्धांत पर चलते हुए पोप का राजकीय सम्मान किया और बदले में पोप ने क्या दिया ? अपने ईसाईकरण की कार्यसूची ? देश के अन्य भागों के बाद कश्मीर व पंजाब में हुई मतांतरण की ताजा घटना से पुनः इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि ईसाई मतप्रचारक छल और प्रलोभनों के दम पर ईसाइयत का प्रचार कर रहे हैं।

विवेकानन्द की स्पष्टोक्ति

स्वेच्छया मत परिवर्तन में कोई बुराई नहीं है, किन्तु यदि इसके लिए छल-प्रपंच का सहारा लिया जाता है तो निस्संदेह यह चिन्ताजनक है। यह प्रश्न तब और गंभीर हो जाता है, जब हमारे छद्म पंथनिरपेक्षी इसे भी अपनी तुष्टिकरण की नीति के आगे मतांतरण की घटना को सामान्य बात ठहराते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, मतांतरण के कारण हिन्दू समुदाय से एक व्यक्ति की कमी नहीं होती, बल्कि उसका एक शत्रु बढ़ जाता है।

स्वतंत्रता के बाद से मेघालय, नगालैंड जैसे कुछ भारतीय प्रांत ईसाई बहुल हो गए हैं। मिजोरम के गैर ईसाई रियांग जाति के लोगों को खदेड़ कर भगा दिया गया। यह अनुमान करना कि औपनिवेशिक काल के खत्म हो जाने से ईसाई मत के प्रसार का वैभव काल भी खत्म हो गया है, गलत है। यह सत्य है कि पूरे विश्व को ईसाई मत में परिवर्तित करने के अपने लक्ष्य में चर्च विफल हुआ है। पश्चिम के श्वेत लोगों के बीच ईसाइयत घटी है, इसलिए चर्च का व्यवसाय अब पारदेशीय अश्वेतों पर ही केंद्रित है। भारत के पिछड़े क्षेत्र इस अभियान के आसान शिकार हैं। दूसरी ओर भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में बंगलादेशी घुसपैठियों के कारण वहाँ के जनसंख्या स्वरूप में तेजी से बदलाव आया है और ये इलाके अल्प काल में ही मुस्लिम बहुसंख्यक हो गए हैं। हमारे कथित पंथनिरपेक्षियों को यह दारूल इस्लाम की प्रक्रिया समझ में नहीं आती, जो देश की सुरक्षा के लिए बहुत खतरनाक है।

नायपॉल का विश्लेषण

नोबुल पुरस्कार विजेता विद्यासागर नायपॉल की पुस्तक **'बियांड बिलीफ-इस्लामिक एक्सकर्सन'** मतांतरण के कारण आने वाले दृष्टिकोणों को बखूबी उजागर करती है। विद्याधर ने पुस्तक के प्राक्कथन में लिखा है : **''इस्लाम का जन्म अरब में हुआ। जो भी मुस्लिम अरबी नहीं है, वह मतांतरण से मुसलमान बना है। इस्लाम केवल निजी आस्था का विषय नहीं है। इसकी मांग साम्राज्यवादी है। इसलिए मतांतरित हुए व्यक्ति का दुनिया के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। उसकी पवित्र भूमि अरब हो जाती है, उसकी पवित्र भाषा अरबी हो जाती है। इतिहास के प्रति उसका नजरिया बदल जाता है। वह स्वयं चाहे या न चाहे, अपनी तमाम पुरानी आस्थाओं को अस्वीकार करता है और अरब की कहानी का हिस्सा बन जाता है। एक मतांतरित व्यक्ति उन सब चीजों से, जो उसकी अपनी थी, विमुख हो जाता है। ऐसे समाजों में भयानक उथल-पुथल होते रहते हैं और उनको अपने पुराने संबंधों और परंपराओं को बार-बार छोड़ना पड़ता है।''**

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में जब एक तरफ इस्लाम का दवाब था तो दूसरी ओर कर्मकांड का बोलबाला था, तब देश के अलग-अलग भागों में भक्ति आंदोलन का प्रवाह फूटा। कबीर, नानक, तुलसी दास, सूरदास आदि ने अपनी राचनाओं से समाज को दिशा देने की कोशिश की और भारतीय जनमानस ने उन्हें सिर आंखों पर बिठाया भी। उन्नीसवीं सदी में राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, देवेंद्रनाथ टैगोर, स्वामी दयानंद सरस्वती, महादेव गोविंद रानाडे, रामकृष्ण परमहंस, महात्मा गांधी, वीर सावरकर, डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार आदि के कारण हिन्दू धर्म में अनेक क्रांतिकारी धार्मिक सुधार हुए और प्रचलित कुरीतियों को बाहर निकाल दिया गया। सती प्रथा और बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ बंद कर दी गईं और उन्हें कानूनन भी प्रतिबंधित किया गया। विधवाओं का पुनर्विवाह शुरू हुआ। छुआछूत की प्रथा चाहे पूरी तरह बंद नहीं हो, पर कम से कम आज कोई भी अस्पृश्यता के पक्ष में उसकी वकालत करता नहीं दिखाई देता।

सुधार की परम्परा नहीं

हिन्दू धर्म में समय के साथ बदलने और सदाचरणों व सद्‌व्यवहारों को आत्मसात कर सुधार करते रहने की लंबी परम्परा रही है। दुर्भाग्य से भारतीय प्रायद्वीप में इस्लाम में ऐसे

किसी विचार-विमर्श या आदान-प्रदान की कोई परंपरा नहीं रही है। इस्लाम के मानने वाले अनुयायी इसे चिरंतन व शाश्वत मान कर पूरी मानवता के लिए दैवीय आदेश के रूप में लेते है। इस्लाम में "एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" के विपरीत केवल और केवल एक-अल्लाह की मान्यता है और हजरत मुहम्मद साहब उसके पैगम्बर हैं। हालांकि कई इस्लामी देशों में इस्लामी कट्टरवाद के भिन्न स्वरूप हैं और कुछ मे उदारवादी धारा भी उभर रही है, किन्तु भारतीय प्रायद्वीप में अभी तक सुधार की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई है। अपने आप को 'सेकुलर' कहने वाले लोग भी इस्लाम का वस्तुपरक अध्ययन करने से अभी तक कतराते हैं। मुल्लाओं के फतवे और कट्टरपंथियों की धमकियों के डर से यहाँ पर इस्लाम एक निषिद्ध किताब की तरह रही है।

पूर्व सांसद व अंग्रेजी दैनिक **'एशियन एज'** के संपादक **एम.जे.अकबर** की पुस्तक **'दि शेड ऑफ स्वोर्ड्स'** और एक अन्य पूर्व सांसद व **'भाजपा टूडे'** के संपादक **प्रफुल्ल गोराडिया** की पुस्तक **'हिन्दू मस्जिदस्'** पश्चिमी व पूर्वी दुनिया के साथ इस्लाम के रवैये पर व्यापक प्रकाश डालती हैं। दोनों लेखकों ने उस सच्चाई को सामने लाने की कोशिश की है कि इस्लाम केवल व्यक्तिगत आस्था का ही मुद्दा नहीं है। यह मजहब न केवल मुसलमानों की पूरी जीवन शैली को परिभाषित करता है, बल्कि अन्य मतावलांबियों के साथ अपने संबंधो को भी निर्दिष्ट करता है। इस्लाम में विश्वास नहीं रखने वाले विरोधियों (काफिरों) से लड़ना मुस्लिमों का मजहबी उत्तरदायित्व बनता है।

एम.जे. अकबर का कथन

यह एक संयोग ही है कि ईसाई यूरोप और हिन्दू जगत से इस्लाम का पहला संपर्क युद्धक्षेत्र में एक ही वर्ष यानी ७११ ई. में हुआ। अतीत में तुर्की साम्राज्य और भारत में मुगल शासन के दौरान इस्लामी दुनिया फली-फूली और उसका प्रसार भी हुआ। लेकिन यूरोप के उपनिवेशवादियों की निगाह जब १५वीं सदी में भारत पर पड़ी तो फिर सत्ता संघर्ष या साम्राज्यवाद का टकराव ईसाई-इस्लाम तक ही सीमित रह गया। जैसा कि **एम.जे.अकबर** लिखते हैं, **"जिहाद मुस्लिमों की पहचान है। इस्लामी दुनिया उग्र आंदोलनों की प्रेरणा अपने अतीत से पाती है। यदि तुर्की के उदाहरण को छोड़ दें तो तकरीबन हर मुस्लिम देश अभी भी उदारवादी व लोकोन्मुखी शासन से कोसों दूर है। इसका कारण यह है कि उनके लिए अपने मध्यकालीन अतीत से बाहर निकलना कठिन है। यह इस्लामी जगत की विडंबना है कि इस्लामी प्रशासनिक निकायों को आधुनिक बनाने की गरज से जिस वर्ष रूस अफगानिस्तान में दखल दे रहा था, वहीं उसी १९८९ के वर्ष में एक दूसरा अपेक्षाकृत पंथनिरपेक्षी पड़ोसी देश अयातुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में मध्ययुग की ओर लौट रहा था।"**

दोनों ही किताबें ईसाई व हिन्दू जगत के साथ इस्लाम के टकराव और जिहाद के महत्व के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालती हैं। **एम.जे.अकबर** ईसाई-इस्लाम विवाद की जड़ में दोनों की मान्यताओं में अतीव समानता को मानते है– **"ईसामसीह ने कहा कि वह मानव की संतान हैं, फिर ईसाई उन्हें देवपुत्र क्यों कहते हैं ? यहूदी ईसाइयों की अपेक्षा एकेश्वरवाद के मामले में इस्लाम के अधिक नजदीक हैं, लेकिन वे ईसामसीह को नहीं मानते। यह निकटता विस्फोटक है।"**

प्रफुल्ल गोराडिया हिन्दुओं की त्रासदी के बारे में बताते हैं– **"पश्चिमी एशिया में मुस्लिम व यहूदी आपस में लड़ते-भिड़ते व कटते-मरते हैं। उन्हें तकलीफ होती होगी, किन्तु इससे दोनों में से किसी को मानसिक आघात नहीं पहुँचता है। दोनों एक-दूसरे पर प्रभुत्व जमाने के लिए एक-दूसरे के पूजा स्थलों को तोड़ते हैं, आपस में खून बहाते हैं। लेकिन यह सब युद्ध की तरह जायज समझा जाता है। उनमें हिंदुत्व की– 'वसुधैव कुटुंबकम्'- की तरह शांतिपूर्ण 'सहअस्तित्व' की बात नहीं है। यह निर्विवाद तथ्य है कि सहअस्तित्व की अवधारणा के बिना बहुलतावादी संस्कृति का सृजन असंभव है। दुर्भाग्य से दोनों ही मतों के बिना किसी राष्ट्र का सृजन नहीं, बल्कि भूखंडों के विस्तार पर केंद्रित है। इसके लिए येनकेनप्रकारेण अपने पंथानुयायियों की संख्या बढ़ाने और 'धर्मयुद्ध' की ओट अपरिहार्य है। नायपॉल के निष्कर्षों को पढ़ने के बाद इन मूल पथच्युतों से राष्ट्रवाद की आशा व्यर्थ ही लगती है, जब तक कि उक्त समुदायों में आधुनिक विश्व के समानांतर चलने योग्य विचार-मंथन की प्रक्रिया स्वेच्छा से जन्म नहीं ले लेती।"** □

(लेखक भाजपा के राज्यसभा सांसद और भाजपा प्रबुद्ध प्रकोष्ठ के मुख्य संयोजक हैं)

भारतीय संविधानः पंथनिरपेक्ष नहीं पंथ-सापेक्ष

□ देवदत्त शर्मा

सम्पूर्ण भारतीय संविधान में एक बार भी धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, फिर भी भारत के अनेक राजनीतिक दलों के नेता भारतीय संविधान को धर्मनिरपेक्ष बता रहे हैं और प्रायः कहते रहते हैं कि भारतीय संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप बनाये रखा जाएगा। ऐसे राजनीतिक दल, जो भारत के संविधान को धर्मनिरपेक्ष बता रहे हैं, उनके लिए धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है केवल अल्पसंख्यक व्यक्तियों के हितों की रक्षा और बहुसंख्यक व्यक्तियों के हितों की उपेक्षा।

धर्मनिरपेक्ष शब्द का 'शाब्दिक अर्थ है– 'धर्म के प्रति निरपेक्ष'। निरपेक्ष का अर्थ है– अपेक्षा से परे 'या' अपेक्षा-हीन। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ हुआ ऐसा राज्य, जिसकी धर्म के 'प्रति' कोई अपेक्षा न हो या ऐसा राज्य जो धार्मिक मामलों में पूर्ण तटस्थ हो। क्या भारत वास्तव में ऐसा राज्य है जिसकी 'धर्म के प्रति' कोई अपेक्षा न हो ? क्या भारत ऐसा राज्य है 'जो' धर्म के मामलों मे प्रति पूर्ण तटस्थ है ? इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर देने से पूर्व यह जानना आवश्यक होगा कि धर्म की परिभाषा क्या है ? और पंथ के मामले क्या हैं ?

धर्म की परिभाषा विश्व के किसी भी संविधान में नहीं दी गयी है। भारत के संविधान में भी धर्म की परिभाषा कहीं नहीं दी गयी है। लेखक के मतानुसार धर्म का अर्थ हैः–"सार्वभौमिक और शाश्वत नैतिक मूल्यों का ऐसा समूह जिनसे व्यक्ति का सामाजिक, आत्मिक व आध्यात्मिक कल्याण होता है। संक्षेप में कहना हो तो "श्रेष्ठ कर्म ही धर्म है"।

भारतीय संविधान का कोई भी जानकार यह नहीं कह सकता है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने ऐसा संविधान बनाया है जो ऐसे नैतिक मूल्यों या नियमों से शून्य है, जिनसे व्यक्ति का सामाजिक, आत्मिक या आध्यात्मिक कल्याण होता है या भारत का संविधान श्रेष्ठ कर्मों, श्रेष्ठ धारणाओं या श्रेष्ठ सिद्धान्तों को धारण नहीं करता है। पूर्ण दृढ़तापूर्वक यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान, विश्व के किसी भी संविधान की तुलना में कही अधिक ऐसे नैतिक मूल्यों या नियमों से परिपूर्ण है, जो व्यक्ति के सामाजिक, आत्मिक व आध्यात्मिक कल्याण हेतु ही नहीं, प्रत्युत उसके राजनीतिक व आर्थिक विकास में भी उपयोगी है अर्थात् भारत के संविधान में विश्व के किसी भी संविधान की तुलना में कही अधिक 'श्रेष्ठ-कर्मों (धर्म) का विधान है।

इस प्रकार जो भारतीय संविधान 'श्रेष्ठ-कर्मों (धर्म) का विश्व में सबसे बड़ा समुच्चय हो, उसे धर्मनिरपेक्ष बताना, कहना या लिखना एक बहुत बड़ी सांविधानिक गलती है। बड़ें दुःख की बात है कि कुछ राजनेता अपने तुच्छ स्वार्थों के कारण इस बड़ी गलती को जाने-अनजाने लगातार पचास वर्षों से दोहरा रहे हैं और उपासना पद्धति यानि पूजा पद्धति को ही धर्म बता रहे हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५ में कहा गया है कि "लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का और धर्म (जिसे अंग्रेजी में रिलीजन कहा गया है) के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा।"

इस प्रकार उक्त स्वतन्त्रता, वास्तव में रिलीजन (जिसे यथार्थ में मजहब या पंथ कहा जाता है) की स्वतन्त्रता है, न कि धर्म की स्वतन्त्रता, क्योंकि रिलीजन का हिन्दी में सही अनुवाद पंथ या मजहब है, धर्म नहीं। अस्तु भारतीय संविधान का हिन्दी में अनुवाद करने वालों ने एक बड़ीं गलती करते हुए 'रिलीजन' का हिन्दी अनुवाद 'धर्म' कर दिया है जबकि रिलीजन का सही हिन्दी अनुवाद पंथ (यानि मजहब) होना चाहिए था।

अस्तु हमारे संविधान के अनुच्छेद २५, २६, २७ व २८ में वर्णित 'रिलीजन की स्वतन्त्रता के अधिकार' को वास्तव में 'पंथ की स्वतन्त्रता का अधिकार' लिखा जाना चाहिये था और उक्त अनुच्छेदों में जहाँ-जहाँ 'धार्मिक' शब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ वास्तव में 'पंथिक' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए था।

अनुच्छेद २५ के अवलोकन से भली प्रकार स्पष्ट है कि उल्लिखित प्रतिबन्धों के अधीन भारत में सभी व्यक्तियों को अपने अन्तःकरण की स्वतन्त्रता और अपने रिलीजन (जिसे गलती से धर्म कहा व लिखा जा रहा है) को अबाध रूप से

मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक हैं।

मजहब (यानि पंथ) और धर्म को एक दूसरे का पर्याय समझना, समझाना, बताना और लिखना भी एक सांविधानिक त्रुटि है। मजहब (यानि पंथ) का अर्थ है– ईश्वर की उपासना का ढंग यानि पूजा पद्धति जबकि धर्म का अर्थ है-श्रेष्ठ-कर्म, न कि पूजा-पद्धति। अतः रिलीजन (मजहब या पंथ) को 'धर्म' बताना, समझना-समझाना एक बड़ी सांविधानिक त्रुटि है और उस बड़ी सांविधानिक त्रुटि से सभी को प्रयास पूर्वक बचना-बचाना चाहिये।

अनुच्छेद २५ ने सभी प्रकार के रिलीजनों (मजहबों या पंथों) के प्रति समान-अपेक्षा का सकारात्मक सिद्धान्त अपनाया है या सभी प्रकार के रिलीजनों (या सभी प्रकार की उपासना पद्धतियों) के प्रति शासन से समान-व्यवहार करने की अपेक्षा की है। अस्तु, भारत के संविधान को वास्तव में पंथसापेक्ष कहा जाना चाहिए, न कि पंथनिरपेक्ष या धर्मनिरपेक्ष।

व्यवहार में भी हमारा शासन, मजहब या पंथ के मामलों में निरपेक्षता या तटस्थता की नीति का अनुसरण नहीं कर रहा है तथा भारतीय संविधान की अपेक्षा के अनुरूप, प्रत्येक मजहब या पंथ के प्रति सकारात्मक एवम् समान-अपेक्षा (सापेक्षता) की नीति का ही अनुसरण कर रहा है। सापेक्षता की इस नीति पर चलने के कारण ही शासकीय (सरकारी) प्रचार-प्रसार के माध्यमों (रेडियों व दूरदर्शन) से सभी मजहबों (पंथों) के ग्रन्थों से पाठ प्रसारित किये जाते हैं और सभी मजहबों (पंथों) के कार्यक्रमों और उनके सन्त व्यक्तियों के प्रवचन आदि का प्रसारण किया जाता है। शासकीय स्तर से और शासकीय धन से ईद-मिलन समारोह तथा होली-मिलन समारोह आदि आयोजित किये जाते हैं। शासकीय धन से अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय व बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को चलाया जा रहा है।

अमेरिका का शासन, मजहब (यानि पंथ) के मामलों में पूर्ण तटस्थता या निरपेक्षता की नीति का अनुसरण कर रहा है, जिसके कारण अमेरिका के शासकीय प्रचार माध्यमों से किसी भी मजहब या पंथ के कार्यक्रमों का प्रसारण या किसी भी मजहब या पंथ के ग्रन्थ मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारे को न तो स्वयं बना सकता है और न ही किसी मजहब के मसीहा या उसके अनुयायी को मजहबी कार्यों के लिये धन उपलब्ध करा सकता है। अस्तु अमेरिकी शासन को या अमेरिकी संविधान को वास्तव में पंथनिरपेक्ष या मजहब निरपेक्ष कहा जा सकता है और कहा जाता है।

अमेरिकी संविधान या अमेरिका शासन के समान, भारतीय संविधान या भारतीय शासन ने मजहब के प्रति उक्त नकारात्मक या तटस्थता की नीति का अनुसरण नहीं किया है, फिर भी अधिकांश राजनीतिक नेता, भारत के संविधान को पंथनिरपेक्ष या धर्मनिरपेक्ष, बताने व समझाने की गलती जानबूझ कर रहे हैं और यह गलती जानबूझ कर मात्र इसलिए की जा रही है ताकि समाज में पंथिक-उन्माद पैदा कर दलित, गरीब, अनपढ़, दबे-कुचले, उजड़े-पिछड़े व मुस्लिम समाज की वोटों को अपनी झोली में डालकर/ डलवाकर, उच्च राजनीतिक पदों को प्राप्त किया जा सके और जब उच्च राजनीतिक पद प्राप्त हो जाये तो फिर कभी जाने न पाये।

मेरे विचार से लगभग भारत के सभी राजनीतिक नेता भली प्रकार से अवगत हैं कि भारत के संविधान में उल्लिखित अनुच्छेद २५,२६,२७, व २८ में सभी रिजीलनों (महजबों या पंथों) के प्रति समान अपेक्षा अपनाने का सकारात्मक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। अतः भारत के संविधान को वास्तव में पंथ-सापेक्ष कहा जाना चाहिये किन्तु सत्ता प्राप्ति का या सत्ता-प्राप्ति के पश्चात उस पर बने रहने का उक्त स्वार्थ, उन्हें भारत के संविधान को 'पंथ-सापेक्ष' नहीं कहने दे रहा है और वे जानबूझ कर भारत के 'पंथ-सापेक्ष संविधान को धर्मनिरपेक्ष' बता रहे हैं तथा धर्म निरपेक्ष शब्द का अर्थ इस प्रकार समझाते हैं– कि धर्म- निरपेक्ष राज्य में ही अल्पसंख्यकों के पंथिक-हितों (जिसे जानबूझकर धार्मिक हित बताया जाता है) की रक्षा संभव है। अस्तु भारतीय संविधान के प्रति इस घिनौने खिलवाड़ को यथाशीघ्र प्रभावी ढंग से रोका जाना चाहिए अन्यथा देश में देर-सबेर पुनः एक और विभाजन की विनाशकारी स्थिति आ सकती है।

हमारे संविधान ने जहाँ यह व्यवस्था दी है कि शासन सभी रिलीजनों को समान आदर दे और प्रत्येक रिलीजन के अनुयायी के साथ समान व्यवहार करे, वहाँ अनुच्छेद १५ के द्वारा यह भी व्यवस्था दी है कि शासन, रिलीजन के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ कोई विभेद नहीं करेगा और अनुच्छेद ४४ के द्वारा शासन को यह भी स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि राज्य, भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक 'समान सिविल संहिता' प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।

हमारा केन्द्रीय शासन लगातार रिलीजन (मजहब) यानि पंथ के आधार पर विभेदकारी नीति पर चल रहा है, तभी तो हिन्दू-पंथ के मानने वालों के लिए एक समय में केवल एक पत्नी तथा मुस्लिम-पंथ के मानने वालों के लिए एक समय चार

पत्नी रखने की विधि-व्यवस्था का बनाये हुये है और तभी तो हिन्दू पुरुष अपनी पत्नी को न्यायालय की प्रक्रिया व आदेश द्वारा ही तलाक दे सकता है और कोई भी मुस्लिम पुरुष मात्र तीन बार तलाक कह कर तलाक दे सकता है, अर्थात मुस्लिम पुरुष को अपनी पत्नी को तलाक देने के लिये न्यायालय में जाने की आवश्यकता नहीं है और तभी तो हिन्दू पुरुष अपनी पत्नी को तलाक करने पर उसे निर्वाह-भत्ता देता है, जबकि मुस्लिम पुरुष को अपनी तलाकशुदा पत्नी को निर्वाह-भत्ता देने की आवश्यकता नहीं है। यदि हमारा उच्चतम न्यायालय शाहबानो नाम की मुस्लिम तलाकशुदा स्त्री को निर्वाह-भत्ता देने का आदेश, भारतीय सिविल संहिता की धारा २५ के अन्तर्गत दे दे तो हमारे केन्द्रीय सत्ताधीश मुस्लिमों के दबाव में ऐसी कानूनी व्यवस्था बना देते है कि मुसलमान को अपनी तलाकशुदा पत्नी को निर्वाह-भत्ता नहीं देना है। इसका अर्थ यही तो हुआ कि मुस्लिम पंथ के सामने भारत का कानून कुछ भी नहीं है और मुस्लिम पंथ के अनुसार भारत का कानून चलेगा तथा भारत के कानून के अनुसार मुस्लिम पंथ नहीं चलेगा।

रिलीजन (पंथ) के आधार पर विभेदकारी कानूनी व्यवस्था बना कर भारतीय संविधान का खुला उल्लंघन मात्र इसलिए जारी है ताकि मुस्लिम वोट निरन्तर मिलता रहे और हमारे संविधान के अनुच्छेद ४४ के अनुपालन में नागरिकों के लिये समान सिविल संहिता का निर्माण भी मात्र इसलिए नहीं किया जा रहा है कि परम्परागत रूप से मिल रहा मुस्लिम वोट मिलना बन्द न हो जाये।

सन् १९७६ में संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम की धारा २ द्वारा भारतीय संविधान की उद्देशिका के अंग्रेजी संस्करण में 'सेक्यूलर' शब्द जोड़ा गया। इस 'सेक्यूलर' शब्द का हिन्दी अनुवाद पंथनिरपेक्ष' किया गया जबकि कुछ राजनेताओं ने अपने मनमाने ढंग से इस 'सेक्यूलर' शब्द का हिन्दी रूपान्तर 'धर्मनिरपेक्ष' किया। इस प्रकार राजनेता भारतीय संविधान को धर्म-निरपेक्ष संविधान कहने लगे और निरन्तर कह रहे हैं जबकि ऐसा कहना सांविधानिक दृष्टि से सर्वथा अनुचित है। आप, भारत का संविधान देखिये तो आपको सम्पूर्ण संविधान में कही एक बार भी धर्मनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग नहीं मिलेगा।

पंथनिरपेक्ष 'शब्द का अर्थ होता है' पंथ के प्रति शासन की निरपेक्षता यानि ऐसा राज्य जो किसी विशेष पूजा या पद्धति या पंथ को अपनाने के लिय अपने नागरिकों पर जोर न देता हो यानि राज्य का ऐसा स्वरूप जिसमें सभी नागरिक अपनी इच्छानुसार कोई भी पूजा-पद्धति या पंथ अपनाने को स्वतंत्र हों और शासन अपने नागरिकों के साथ पूजा-पद्धति या पंथ के आधार पर कोई विभेद न करता हो। इस प्रकार पंथनिरपेक्षता में पंथ के प्रति निरपेक्षता या तटस्थता का नकारात्मक सिद्धान्त होता है जबकि भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५,२६,२७, व २८ सभी रिलीजनों (पंथों) के प्रति समान-अपेक्षा अर्थात् सब पंथों के प्रति समान व्यवहार करने-कराने के सकारात्मक सिद्धान्त का वर्णन करते है। अस्तु, पंथनिरपेक्ष शब्द भी भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५,२६,२७, व २८ के अनुरूप नहीं है तथा इन अनुच्छेदों के अनुरूप सही शब्द है-पंथ-सापेक्ष। अतः लेखक का सुझाव है कि संविधान (बयालिसवां संशोधन) अधिनियम १९७६ की धारा २ द्वारा (३.१.१९७७) से भारतीय संविधान की उद्देशिका में अन्तः स्थापित किये गये अंग्रेजी की शब्द सेक्यूलर' के गलत अनुवाद 'पंथनिरपेक्ष' को हटाकर सही शब्द पंथ-सापेक्ष को अन्तः स्थापित किया जाये।

१५वीं शताब्दी में पोप व चर्च के द्वारा लोगों के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप के कारण मारकाट मच गयी और जब यह मारकाट पराकाष्ठा पर पहुँच गयी तो कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया कि आपसी मारकाट को रोकने के लिए आवश्यक यह है कि पोप व चर्च, व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप तुरन्त बन्द करें। इन विद्वानों ने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मजहब के पालन में स्वतंत्र होना चाहिये और मजहब का भी व्यक्ति के सामाजिक व राजनीतिक जीवन में दखल नहीं होना चाहिये।

इस विचारधारा पर आधारित राज्यों ने अपने को सेक्यूलर कहना प्रारम्भ किया।

जिन राज्यों ने अपने को सेक्यूलर कहा, उन्होंने अग्रलिखित चार आधारभूत सिद्धन्त अपनाएँ :

१. सभी नागरिक अपनी इच्छानुसार किसी भी मजहब को मानने व अपनाने के लिये स्वतंत्र होंगे।
२. शासन, अपने नागरिकों के साथ मजहब के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा।
३. सभी नागरिकों पर समान रूप से सिविल कानून लागू होगा।
३. विधि के समझ समता का सिद्धान्त सभी व्यक्तियों पर लागू होगा यानि विधि और न्यायालय के समझ सभी व्यक्ति समान समझे जायेंगे।

ब्रिटेन घोषित रूप में ईसाई राज्य है किन्तु उसने अपने

को 'सेक्यूलर' कहलाने के लिये अपने संविधान में उक्त सिद्धान्तों को मान्यता दी है। परिणामतः वहाँ का मुसलमान भी ब्रिटेन के कामन लॉ समान सिविल संहिता को मानने को बाध्य है, जिसके कारण वहाँ रहने वाला मुसलमान एक साथ चार विवाह नहीं कर सकता है यानि एक समय पर चार पत्नियाँ नहीं रख सकता है अर्थात् वहाँ के मुसलमान के लिए भी किसी अंग्रेज नागरिक के समान एक समय में केवल एक पत्नी रखने की ही विधि व्यवस्था है। वहाँ का कोई भी मुस्लिम पुरुष अपनी पत्नी को तलाक, तलाक, तलाक कह कर तलाक नहीं दे सकता, वहाँ के मुस्लिम पुरुष को भी किसी अंग्रेज नागरिक के समान अपनी पत्नी को तलाक देने के लिये न्यायालय की प्रक्रिया व आदेश का पालन करना होता है और यदि न्यायालय के आदेश से तलाक हो जाता है तो मुस्लिम पुरुष को भी किसी अंग्रेज नागरिक के समान अपनी तलाकशुदा पत्नी को निर्वाह भत्ता देना होता है। अमेरिका, जर्मनी, इटली, फ्रांस आदि सहित विश्व के अनेक देशों में लगभग ऐसी ही स्थितिं है।

भारत ने भी इन चारों सिद्धान्तों को अपने संविधान में स्पष्ट रूप से मान्यता दी है। इसलिए अनुच्छेद २५ के द्वारा सभी व्यक्तियों, (चाहे वह भारत का नागरिक हो या न हो) को अपने अन्तः करण की स्वतन्त्रता का और अपने रिलीजन (जिसे गलती से धर्म लिखा गया है) को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक दिया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत में निवासरत कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कोई भी पूजापद्धति अपनाने को स्वतंत्र है तथा राज्य, किसी भी व्यक्ति को कोई विशेष पूजा-पद्धति अपनाने को विवश नहीं कर सकता है। इसी उद्देश्य की परिपूर्ति हेतु अनुच्छेद ४४ में राज्य को निर्देश दिया गया है कि "राज्य, भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता' प्राप्त करने के प्रयास करेगा। अनुच्छेद १४ में विधि के समक्ष के सिद्धान्त को अपनाते हुए कहा गया है कि "राज्य, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।" रिलीजन के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करते हुए कहा गया है कि "राज्य, केवल रिलीजन (जिसका सही हिन्दी अनुवाद पंथ है किन्तु अनुवादिक त्रुटि के कारण धर्म लिखा गया है) मूलवंश, जाति लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।" (अनुच्छेद १५)

स्मरणीय है कि सेक्यूलैरटी के इन सारे सिद्धान्तों को अभी तक हमने ईमानदारी से नहीं अपनाया है। यदि हम भारत को वास्तव में 'सेक्यूलर' राज्य कहना चाहते हैं तो इन सिद्धान्तों को यथाशीघ्र व्यावहारिक रूप देना चाहिए अर्थात सभी नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता बनानी चाहिए, रिलीजन के आधार पर विभेदकारी व्यवस्था वाले कानूनों को समाप्त करना चाहिए तथा विधि के समक्ष समता के सिद्धान्त को कड़ाई से लागू करना चाहिए अर्थात न्यायालय का आदेश व देश का कानून, सबको मान्य होना चाहिए, चाहे उसका मजहब (रिलीजन) कोई भी हो या वह किसी भी पूजापद्धति को अपनाता हो। किन्तु दुःख का विषय है कि हमने एक मजहब विशेष के अनुयायियों के समक्ष, सेक्यूलैरटी के इन सिद्धान्तों की बलि चढ़ा दी है और यह बलि मात्र इस लिए चढ़ाई जा रही है तांकि हम भ्रम-जाल फैलाकर सत्ता प्राप्त करते रहें।

सत्ता या वोट पाने की घटिया राजनीति के कारण ही हमारे अनेक राजनेता भारतीय संविधान को धर्मनिरपेक्ष बता रहे हैं तथा सेक्यूलरजिम के उक्त सिद्धान्तों को व्यवहार में न लाकर भारत को विभाजन के एक और गहन अंधकार में पूरी शक्ति से धकेल रहे हैं। अतः आवश्यकता है कि समय रहते हुए देश का प्रबुद्ध-वर्ग जागे और ऐसे राजनेताओं को बेनकाब करके समाज से अलग-थलग कर दे, जो धर्मनिरपेक्षता का मुखौटा लगाकर सेक्यूलैरटी के वास्तविक सिद्धान्तों से खिलवाड़ करने की घिनौनी साजिश रच रहे हैं।

मेरा यह भी सुझाव है कि न्याय का सम्बन्ध प्रत्येक व्यक्ति से होना चाहिए, और किसी भी व्यक्ति को न्याय से बड़ा नहीं समझा जाना चाहिए, चाहे उसकी जाति या रिलीजन (मजहब) यानि पूजापद्धति कोई भी हो। भारत के प्रत्येक नागरिक को एक समान समझ कर उसे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय, सुगमतापूर्वक न केवल मिलना चाहिए, बल्कि मिल रहा है ऐसा लगना भी चाहिए और शासन को भारतीय संविधान की 'सर्वपंथ समभाव' की भावना का यथार्थ में पालन करना चाहिए, क्योंकि सब पंथों को समान मानने की नीति ही भारतीय संविधान की उल्लिखित व सर्व-कल्याणकारी नीति है और पंथ-सापेक्षता या सेक्यूलैरटी के उक्त मान्य सिद्धान्तों का अनुसरण करने से ही भारत के प्रत्येक व्यक्ति को अवसर व प्रतिष्ठा की समता प्राप्त होगी तथा भारत की एकता व अखण्डता को सुनिश्चित करने वाली बन्धुता का विकास होगा। □

इस्लामी विचार बनाम राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और पंथनिरपेक्षता

□ हृदयनारायण दीक्षित

राष्ट्रीयता वस्तुतः भू-सांस्कृतिक स्वाभिमान का तत्व होती है। धरती और संस्कृति के प्रति आत्मिक लगाव से देश की धरती और संस्कृति के लिए बलिदानी भाव उत्पन्न होते हैं। बलिदानी भावना राष्ट्रीय वैशिष्ट्याभिमान देती है लेकिन इस्लामी आस्था भू- सांस्कृतिक राष्ट्रभाव नहीं मानती। इस्लामी विद्वान सैय्यद कुतुब कहते है **''मुस्लिम की सिवाय उसके विश्वास के (और) कोई निष्ठा नहीं है। अपने यकीन के कारण वह इस्लामी उम्माह (समाज) का सदस्य है और दारुल इस्लाम (इस्लाम के राज्य) का निवासी है''**। (म-आलिम् पृष्ठ १८५-१६८)

मौदूदी की स्पष्टोक्ति

इस्लाम और राष्ट्रीयता के रिश्तों पर सबसे ईमानदार और बेबाक टिप्पणी मौलाना मौदूदी ने की। उनके मुताबिक **''इस्लाम और राष्ट्रीयता दोनों (ही) स्प्रिट और उद्देश्यक के लिहाज से एक-दूसरे के विरोधी है। जहाँ नेशनलिज्म है, वहाँ इस्लाम कभी फल-फूल नहीं सकता। जहाँ इस्लाम है, वहाँ नेशनलिज्म के लिए कोई जगह नहीं है। नेशनलिज्म की तरक्की के मायने यह हैं कि इस्लाम के फैलने का रास्ता बंद हो जाये और इस्लाम के मायने यह हैं कि नेशनलिज्म जड़-बुनियाद से उखड़ जाये। अब यह जाहिर है कि एक शख्स एक वक्त में इन दोनों में किसी एक ही की तरक्की का हामी हो सकता है।''** (मौलाना मौदूदी, मसल्लम कौमियत, पृ. ६९)

महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलमान की साझा राष्ट्रीयता बनाने में आजीवन जुटे रहे। डा. अम्बेडकर महात्मा गांधी के इस प्रयास को गलत मानते थे। गांधी जी का प्रयोग असफल भी रहा। गांधी के समर्थक एक इस्लामी विद्वान जमायतुल उलेमा के अध्यक्ष **मौ. हुसैन अहमद मदनी** ने कहा, **''जिस प्रकार हजरत मोहम्मद ने मदीना में यहूदियों और मुसलमानों की एक संयुक्त राष्ट्रीयता की स्थापना की, उसी प्रकार भारत में भी हिन्दु-मुसलमान को एक राष्ट्रीयता में बांधा जा सकता है''** (मौ.हुसैन मदनी, ''इस्लाम और मुत्तहिदा कौमियत, पृष्ठ ४४)। लेकिन मौदूदी जैसे विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं। उन्होंने कहा **''जिन अर्थों में आजकल राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग होता है उन अर्थों में काफिरों, हिन्दुओं और मुसलमानों की एक कौमियत में जमा होने की बात कुरान-शरीफ में कहीं भी ठीक नहीं बतायी गयी है। उसको (मदीने के इकरारनामे को, जिसका उदाहरण मुसलमानों और गैर-मुस्लिमों को मिलाकर संयुक्त राष्ट्रीयता बनाने के रूप में उद्धृत किया जाता है), आज-कल की राजनीतिक भाषा में ज्यादा से ज्यादा मिलिट्री एलाएन्स कह सकते हैं। दो-तीन साल के अन्दर ही इस इकरारनामे का खात्मा हो गया था। मुसलमानों ने कुछ यहूदियों को देश के बाहर निकाल दिया और कुछ को कत्ल कर दिया। क्या इसी का नाम संयुक्त राष्ट्रीयता है ? क्या वहाँ संयुक्त विधानसभा बनायी गयी थी ? क्या वहाँ संयुक्त अदालतें कायम हुई थीं जिनमें यहूदियों, और मुसलमानों के विवादों का एक जगह (इकट्ठे) और एक ही मुल्की कानून के अधीन निर्णय होता था।''** (मौलाना मौदूदी मसल्लम कौमियत, पृष्ठ ५४) डा. मुशीरुल हक का तर्क भी यही था। उन्होंने कहा **''मदीने के इकरारनामें में अन्तिम निर्णायक मुहम्मद साहब थे। भारत में ऐसा सम्भव नहीं है।''** (डा.मुशीरुल हक, धर्म निरपेक्ष भारत में इस्लाम, पृष्ठ २२)

इस्लामी विश्वास के अनुसार जहाँ इस्लामी शरीय वाला राज्य है, वहीं इस्लाम का घर (दारुल इस्लाम) है। जहाँ गैर-इस्लामी हुकूमत है वहाँ दारुल हर्ब (शत्रु का राज्य) है। गांधी भक्त मौलाना मदनी ने भी भारत को दारुल हर्ब बताया और कहा कि दारुल हर्ब में कुफ्र का गलबा (प्रभाव) रहता है।

मौलाना आजाद का कथन

भारत ने संविधान में पंथनिरपेक्ष राज्य की घोषणा नहीं की, क्योंकि सेकुलरिज्म भारतीय अवधारणा नहीं है। यह चर्च और राज्य के संघर्ष से जन्मी यूरोपीय विचारधारा है। लेकिन आपात्काल के दौरान प्रतिपक्ष की अनुपस्थिति में श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा कराए गए संविधान संशोधन में पंथनिरपेक्षता और समाजवादी शब्द जोड़े गये। भारतीय संदर्भों में पंथनिरपेक्षता का मतलब पंथ पर आधारित न होने वाले भेदभाव रहित

शासन से है। 'सर्वपंथसमभाव' भारत की सनातन अवधारणा है। भारत में सभी विचारधाराओं और दृष्टिकोणों के आदर की परम्परा है। लेकिन कुरान का संदेश विरोधी विचार के प्रति आदरभाव वाला नहीं है। मौलाना अबुल कलाम आजाद भारत सरकार के मंत्री थे। उन्होंने कहा, **''कोई भी विचार जिसका स्त्रोत कुरान के बाहर है, नितांत कुफ्र है।''** इस्लामी विचारधारा बाकी पंथों को सम्मान नहीं देती। डा. मुशीरुल हक कहते हैं, **''जबकि मुसलमान का विश्वास यह है कि यह ईश्वरीय ज्ञान (इस्लाम) उसे सारी दुनिया में फैलाना है तो वह उन लोगों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकता जिन्हें वह पथभ्रष्ट समझता है कि जितने भी धर्म प्रचलित है सभी सच्चे हैं।''** (धर्म निरपेक्ष भारत में इस्लाम, पृष्ठ २६)। मुस्लिम शासनकाल में ईश्वर और अल्लाह को एक मानने के कारण ही मृत्युदंड दिए गये। सैय्यद कुतुब पंथनिरपेक्षता और मजहबों की तुलनात्मक विचारधारा को दिमागी मूर्खता मानते है (जे.एल. एस्पासिटो : वायसेज आफ रिसर्जेन्ट इस्लाम, पृष्ठ ८५)।

पंथनिरपेक्षता एक रणनीति

इस्लामी राजनीति पंथनिरपेक्ष राज्य व्यवस्था को अपनी रणनीति के लिए बेहतर सुविधा मानती है। वे पंथनिरपेक्ष राज्य राष्ट्रों में इस्लाम का राज्य बनाने वाली रणनीति आसानी से चलाते हैं। मुशीरुल हक कहते है **''सरकार को पंथनिरपेक्ष रहना चाहिए। परन्तु मुसलमानों को पंथनिरपेक्षता से बचाकर रखना चाहिए।''** (धर्मनिरपेक्ष भारत में इस्लाम, पृष्ठ २१) इस्लामी विचारधारा में पंथनिरपेक्षता न तो कोई मूल्य है और ही कोई आदर्श। राज्य का पंथनिरपेक्ष स्वरूप इस्लाम को बढ़ाने के लिए सुविधामूलक जमीन उपलब्ध कराता है। वे कट्टरतापूर्वक अपना मजहब फैलाते हैं। बाकी सब पंथनिरपेक्षता के कारण इस आक्रामकता को सहन करते हैं।

अली मियाँ का कथन

भारत सनातन धर्म के कारण स्वाभाविक रूप से पंथनिरपेक्ष है। हिन्दू धर्म एकेश्वरवादी, एक किताबवादी नहीं है। सहस्त्रों देवी-देवताओं, सहस्त्रों प्रतीतियों-अनुभूतियों और बहुविध अभिव्यक्तियों के कारण हिन्दू मानस सभी पंथों और मतों का आदर करता है। इसीलिए सर्वपंथसमभाव भारत का अपना स्वभाव है। भारत ने पंथनिरपेक्षता की अवधारणा पश्चिम के ''सेकुलरिज्म'' से नहीं सीखी। मूल स्वभाव और संविधान से पंथनिरपेक्ष भारत की जनता के बीच इस्लामी विचार पूरी आक्रामकता से अपना काम करता है। वे बाकी के पंथों को सम्मान नहीं देते। भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं से जुड़े हिन्दू राजनेता बेशक पंथनिरपेक्षता की तरफदारी करते हैं पर इस्लामी चिंतक बेबाक टिप्पणी करते हैं। **सैय्यद अब्दुल हसन अली नदवी अली मियाँ** इस्लामी मामलों के विद्वान माने जाते हैं। उन्होंने साफ-साफ कहा है, **''पक्की अकीदत वाले मुसलमान के लिए इस्लाम के प्रति भावनात्मक निष्ठा ही काफी नहीं है। समस्त गैर इस्लामी दर्शनों, विचारों और सिद्धांतों से घृणा करना भी जरूरी है।''** (सै. अब्दुल हसन अली नदवी, ''कैलेमेटी आफ लिंगुइस्टिक कल्चरल शाविनिज्म'' पृष्ठ १०)।

भारत स्वभाव और संविधान से लोकतांत्रिक है। इस्लामी विचार लोकतंत्र विरोधी हैं। मौलाना मौदूदी ने लोकतंत्र के बारे में कहा, **''लोकतंत्र में अक्लियत (अल्पसंख्यक-माइनारिटी) गुलाम बनकर रह जाती है। इस कमी को दूर करने का तरीका यह है कि गैर-अल्लाह की हाकमियत (शासन) से इन्कार कर दिया जाये और उसकी हाकमियत कबूल की जाये जो इस कायनात (विश्व) का मालिक, हमारा खालिक (सृष्टिकर्त्ता) और रब (ईश्वर) है।''** (अलहसनात सालनामा, १९७५, पृष्ठ १०१)।

इस्लामी राज्य की अपरिहार्यता

ईश्वर के राज्य का मतलब इस्लामी हुकूमत है और इस्लामी हुकूमत का मतलब गैर-मुसलमानों के नागरिक अधिकार का खात्मा करते हुए सबको मुसलमान बनाने का ध्येय पूरा करना ही है। मौलाना मौदूदी जैसे इस्लामी चिंतकों की साफ-बयानी गौरतलब है। वे इस्लाम को सुधार का एकमात्र मार्ग मानते हें और इसके लिए इस्लामी राज्य की अपरिहार्यता बताते हैं। ऐसे राज्य के लिए वे किसी भी हद तक जाने की घोषणा डंके की चोट पर करते हैं। मौदूदी कहते हैं **''जिन सुधारों को इस्लाम लाना चाहता है वह केवल उपदेश से सम्भव नहीं हैं। राजनीतिक सत्ता पर अधिकार होना आवश्यक है। इसलिए ''दीन'' की स्थापना के ध्येय से शासन तंत्र पर अधिकार करने के लिए संघर्ष की न केवल अनुमति है अपितु वह वांछनीय है और इस कारण से अनिवार्य भी''**। (इस्लामिक ला एण्ड कांस्टीट्यूशन, पृष्ठ १७७)।

हमीद दलवई की स्पष्टोक्ति

भारतीय राष्ट्रवाद, स्वराज्य, लोकतंत्र और स्वतंत्रता जैसे शब्द इस्लामी चिंतन में अपना मौलिक अर्थ खो देते हैं।

राष्ट्रीयता वे मानते नहीं। स्वतंत्रता के बारे में उनकी अपनी परिभाषा है। हमीद दलवई कहते हैं **"यह समझ लेना चाहिए कि स्वतंत्रता और परतत्रता की मुसलमानों की व्याख्या का आधुनिक राष्ट्रवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है और न वह उसके अनुरूप ही है। मुसलमानों के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ है पूर्ण सत्ता उनके हाथ में होना।"** इस व्याख्या के अनुसार वह "पाकिस्तानी मुसलमानों को स्वतंत्र और भारतीय मुसलमानों को अभी भी परतंत्र" मानते हैं। (हमीद दलवई, मुस्लिम पॉलिटिक्स इन सेकुलर इण्डिया, पृष्ठ ६६-६७)। असल में मुस्लिम चिंतक इस्लामी मार्गदर्शन को प्रायः दो हिस्सों में बाँटते हैं। हजरत मोहम्मद का मक्का का संघर्ष और कार्यकाल समझौतों से भरा हुआ है। मदीना में इस्लामी राज्य की स्थापना के बाद का कार्यकाल दूसरा है। हमीद दलवई के अनुसार **"भारतीय मुसलमान (फिलहाल) मक्का की स्थिति में है। जबकि पाकिस्तानी मुसलमान मदीना जैसे स्थिति में"**। (वही)।

युद्ध मुख्य फर्ज

भारतीय राष्ट्र दर्शन और इस्लामी चिंतन में कहीं कोई साम्य नहीं है।साम्य की बात तो दूर सामंजस्य की भी कहीं कोई सम्भावना नहीं है। वे भारत के मौलिक रूप, स्वरूप, संस्कृति और स्वभाव पर हमलावर हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही स्वराष्ट्र का भविष्य संवारा जा सकता है।

युद्ध इस्लामी परम्परा में मुख्य फर्ज है। कुरान कहती है **"तुम पर युद्ध अनिवार्य किया गया"** (कुरान सूरा २/२१६) अल्लाह और उसके रसूल और इस्लाम के लिए युद्ध (जिहाद) करने वाले प्रशंसनीय है। कुरान कहता है **"जिन्होंने अल्लाह के मार्ग में घर-बार छोड़ा और जिहाद किया, वही अल्लाह की दयालुता की उम्मीद करते हैं।** (कुरान २/२१८)। मदीना में उतरी कुरान की ३८ आयतों का एक अध्याय (सूरा ४७) 'मुहम्मद' नाम से संकलित किया गया। इस्लाम न मानने वालों के लिए यहाँ कहा गया **"जिन लोगों ने इंकार किया और अल्लाह के मार्ग से रोका उनके कर्म उसने अकारथ किए"** (कुरान ४७/१)।

इस्लाम से इंकार करने वालों से युद्ध की अपील करते हुए यह भी कहा गया **"अतः जब इंकार करने वालों से तुम्हारी मुठभेड़ हो तो गर्दनें मारना है। यहाँ तक कि जब उन्हें अच्छी तरह कुचल दो तो बंधनों में जकड़ो, फिर बाद में या तो अहसान करो या फिद्या (आर्थिक जुर्माना) का मामला करो... यह भली-भाँति समझ लो यदि अल्लाह चाहे तो उनसे स्वयं निबट ले किन्तु (उसने यह आदेश इसलिए दिया) तुम्हारी एक-दूसरे की परीक्षा है। जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उनके कर्म वह कदापि अकारथ न करेगा (वही आयत ४)। "वह उनका मार्गदर्शन करेगा और उनका हाल ठीक करेगा" (वही आयत ६)। "रहे वे लोग लोग जिन्होंने इंकार किया तो उनके लिए तबाही है" (वही आयत ८)। "यह इसलिए कि जो लोग ईमान लाए उनका संरक्षक अल्लाह है और यह कि इंकार करने वालों का कोई संरक्षक नहीं" (वही आयत ११)। "ये वे लोग हैं जिन पर अल्लाह ने लानत की और उन्हें ठस और उनकी आँखों को अंधा कर दिया" (वही आयत २३)। "हम अवश्य तुम्हारी परीक्षा करेंगे यहाँ तक कि हम तुममें से जो जिहाद करने वाले है उनको जान लें। "(वही आयत ३१)।**

भू-सांस्कृतिक स्वाभिमान आवश्यक

कुरान की युद्ध हिदायत ने अपने भाष्य दिये। सैय्यद कुतुब कहते हैं **"इस्लामी युद्ध का मकसद शरीयः कानून की स्थापना है।"** (सै. कुतुब, अल-सलाम, पृष्ठ २३-२४)। वे कहते हैं, **"इस्लाम को अपना दैवी संविधान स्थापित करने के लिए जरूरी है कि उन भौतिक शक्तियों को नष्ट कर दिया जाए जो उसके मार्ग में बाधक हैं"** (सै. कुतुब फ्रीजिलाल, खण्ड १०, पृष्ठ १५४४)। इस्लामी चिंतन और परम्परा राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, पंथनिरपेक्षता और तर्क-प्रतितर्क वाले किसी भी आदर्श के विरुद्ध है। वह कुरान के बाहर के सभी विचारों का खात्मा चाहती है। भारत इसी विचार का शिकार है। भारत की राष्ट्रीयता हिन्दुत्व है। इसका आदर हिन्दू ही करते हैं। भारत के लोकतंत्र का कारण हिन्दू हैं। पंथनिरपेक्षता के सम्वाहक हिन्दू हैं। इसीलिए इस्लामी विचार हिन्दुत्व का ही खात्मा चाहता है। हिन्दू हैं कि इस तथ्य पर गौर नहीं करते। जाति-पांति में खण्ड-खण्ड विभाजित हिन्दू जनमानस में जन्मना "जाति-स्वाभिमान" है। हिन्दू होने का भू-सांस्कृतिक स्वाभिमान जगाकर ही राष्ट्रनिर्माण का लक्ष्य पूरा हो सकता है।

□

– उपाघ्यक्ष/ प्रवक्ता, उ.प्र. भाजपा

सेकुलरवादियों का खण्ड-खण्ड होता पाखण्ड

□ हरिकृष्ण निगम

आज ऐसा लगता है कि हमारे देश में प्रजातंत्र का रास्ता दुश्वार होता जा रहा है। कथित पंथनिरपेक्षता की प्रतिबद्धता मानवाधिकारों के मुद्दों व बुद्धिवादी आन्दोलनों की आड़ में एक नई तरह की मतान्धता अपनी सीमा लांघती जा रही है। तथाकथित प्रबुद्ध वर्ग और मीडिया नई विषाक्त शब्दावली गढ़ कर उनके द्वारा नए अनुत्तरदायी अर्थों की तलाश कर रही है जिसका स्पष्ट निशाना देश का बहुसंख्यक वर्ग है।

सच तो यह है कि इस देश में पंथनिरपेक्षता की कसौटी ही काली है। धर्म की सामाजिक धुरी को विकृत विशेषणों के सहारे राजनीतिज्ञों द्वारा निष्कासित करने की बात भी अव्यावहारिक है। क्या कम्युनिस्टों द्वारा आयातित पंथनिरपेक्ष शब्द भारत को धर्महीन राज्य बना सकता है ? पंथनिरपेक्ष वह हो सकता है जो सर्वपंथसमभाव की अवधारणा से जुड़ा हो- जहाँ राज्य किसी एक पंथ विशेष को प्रश्रय न दे। प्रसिद्ध न्यायविद् संसद सदस्य डा. लक्ष्मीमल सिंघवी ने पूर्व प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को सलाह दी थी कि 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द भ्रामक है और उसकी जगह 'पंथनिरपेक्ष' शब्द प्रयुक्त करना वांछनीय है।

पंथनिरपेक्षता का यह स्वरूप जिस रूप में सरकार में होना चाहिए उसका सही अर्थ सभी पंथों को दबावों या राजनीतिक कारणों से प्रश्रय देने वाली प्रणाली न होकर किसी भी पंथ-विशेष से असम्पृक्त रहने वाली पद्धति होनी चाहिए। किसी मतावलम्बी को अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष रूप से दूसरे पंथों पर आघात करने का आधार न हो। पर यह विस्मय का विषय है कि बहुसंख्यकों के विश्वासों पर चोट पहुँचाना ही आज इस देश में कुछ लोगों के जीने की शर्त बनी हुई है, जिसे कड़ाई से दबाना आवश्यक है।

विश्वसनीयता ध्वस्त

यह एक विडम्बना है कि हमारे देश में जहाँ 'पंथनिरपेक्षता' की नगाड़ेबाजी हो रही है और जिस तरह राजनीतिक खेमेबाजी के कारण अपने प्रतिद्वन्द्वी को साम्प्रदायिक करार देने की होड़ लगी है, वह टूटते-बदलते राजनीतिक समीकरणों के कारण मजाक बनकर रह गई है। यदि आप हमारे साथ हैं तो पंथनिरपेक्ष ताकतों को बढ़ावा दे रहे हैं, यदि पाला बदला तो साम्प्रदायिक हो गए। सच तो यह है कि पिछली पीढ़ियों से कांग्रेस अकेली पार्टी है जो आज तक अल्पसंख्यकों की साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देकर सत्ता के दुरुपयोग में सबसे आगे रही थी। कम्युनिस्टों के कंधे पर चढ़कर उन्होंने सदैव मुस्लिम कट्टरवाद, क्षेत्रीयता व भाषायी हठधर्मिता को देश में सबसे अधिक प्रश्रय दिया। 'पंथनिरपेक्ष' शब्द के पीछे की राजनीतिक लफ्फाजी या शब्द-जाल की बारीकी अब सामान्य व्यक्ति को भी समझ में आने लगी है'। इसलिए इस लेबिल की विश्वसनीयता भी पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी है।

पंथनिरपेक्षता की वास्तविकता

पंथनिरपेक्ष शब्द संविधान में इसके लागू होने के २७ वर्ष बाद प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने १ मार्च, १९७७ में ४२ वें संशोधन द्वारा समाविष्ट किया और इसे **''सर्वप्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और प्रजातांत्रिक गणराज्य''** बनाया। आज भारत न तो शाब्दिक, और न ही लाक्षणिक अर्थों में 'समाजवादी' है और न ही 'पंथनिरपेक्ष'– विशेषकर उस अर्थ में जो सामान्यतः लगाया जाता है। पश्चिमी देशों सहित दुनियाँ भर में कोई राष्ट्र आज पंथनिरपेक्ष नहीं कहा जा सकता। अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू. बुश की पंथप्रवणता, ईसाई चर्चों को व्हाइट हाउस का पूर्ण सहयोग और मुखर मुस्लिम-विरोध जगजाहिर है। रोम केथोलिक चर्च जहाँ भी शक्तिशाली हैं वहाँ गर्भपात को कानूनी मान्यता नहीं है जैसे आयरलैण्ड और अमेरिका के ही कई प्रान्त। जर्मनी सहित अनेक यूरोपीय देशों में नागरिकों के आयकर में चर्च का टैक्स भी जुड़ा होता है। अमेरिका सहित अनेक देश चर्च को सरकारी अनुदान ही नहीं देते कारपोरेट जगत को भी ऐसा करने का निर्देश देते हैं। कई यूरोपीय देशों में तो चर्च को पूरा संरक्षण देने के लिए सरकारी मंत्रालय भी है और चार्ल्स डार्विन के विकास के सिद्धान्त को चर्च विरोधी मानकर उन्हें आज भी पाठ्य-पुस्तकों में शामिल करने पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। अमेरिकी राजनीतिक जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण फैसले ईसाई धर्म की धुरी से बंधे रहते हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनावों की प्रक्रिया शुरू होते ही चर्च के अनेक सम्प्रदाय एक या दूसरे प्रत्याशी के समर्थन में प्रतिद्वन्द्वी के रूप में सामने आ जाते हैं। हाल में इराक पर हुए आक्रमण के दौरान राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू. बुश ने बाइबिल की

'क्रूसेड' आदि जैसी शब्दावली को लगातार प्रयुक्त कर दुनिया को असमंजस में डाल दिया था। हमारे देश के अंग्रेजी मीडिया के एक बड़े वर्ग की विक्षिप्त की तरह की पंथनिरपेक्षता की दुहाई इस स्थिति में अमेरिका के विरोध में कुछ भी कहने का मनोबल नहीं जुटा सकी। साफ है कि यह शब्द हमारे कथित प्रबुद्ध वर्ग का एक-दूसरे पर विषवमन करने का अस्त्र मात्र ही है जिसे अधिकतर बाल की खाल निकालने वाले जनवादी अथवा वामपंथी दलों ने अपनी शब्दावली में धारदार अस्त्रों के रूप में ढाला था।

अपशब्दों की बौछार

आज लगता है कि ऐसा देशद्रोही, हीन-भावना से ग्रस्त, बहुधा सहधर्मी शिक्षित वर्ग हिन्दुओं को निशाना सिर्फ इसलिए बना रहा है कि वे परदे के पीछे रहकर राजनीतिक शक्ति के सूत्रधार बने रहना चाहते हैं। उन्हें हमारी राष्ट्रभावना की जड़ों, अपने पूर्वजों की आस्था व विश्वासों की कोई परवाह नहीं है तभी वे सामान्य आलोचना की परिधि से बाहर जाकर बहुसंख्यकों पर अपशब्दों की बौछार करने से भी नहीं हिचकते। लोकतांत्रिक संविधान की अपनी अन्तर्निहित सक्षमता के बावजूद कुछ लाचारियाँ भी होती हैं, जो भारत जैसे देश के लिए मँहगी सिद्ध हो चुकी हैं। इस देश में पंथनिरपेक्षता के कवच के पीछे से चाहे बहुसंख्यकों के संवेदनशील मुद्दे हों, तुष्टिकरण अथवा मतान्तरण जैसे ज्वलनशील विषय हों, आत्मरक्षा का अधिकार या आक्रामक रुख के प्रदर्शन की स्वीकृति सिवाय हिन्दुओं के सभी को है। अनकहे तथ्यों की घुटन या चुप रहने की यंत्रणा यदि हमें वर्तमान संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत भुगतनी हैं, तब आज नहीं तो कल देश को उनकी समीक्षा करनी ही होगी। साफ है कि प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से छद्म राष्ट्रविरोधियों या आतंकवादियों का सामना करना आसान नहीं रह गया है।

सतर्कता जरूरी

पंथनिरपेक्षता के आइने में उभरते कुछ दूसरे सवालों से जुड़े महत्त्वपूर्ण मुद्दों में हमारे देश के अंग्रेजी मीडिया का एक वर्ग हिन्दुओं के विरुद्ध विषवमन में शालीनता के सभी मानदंडों को ध्वस्त कर चुका है। यदि वे अपशब्द हिन्दुओं के बजाय किसी और धर्म के अनुयाइयों के विरुद्ध प्रयुक्त किये जाते तो कथित अन्तरराष्ट्रीय समुदाय चीत्कार कर उठता। यदि 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' जैसे पत्र में कुछ समय पहले प्रतापभानु मेहता सम्पादकीय पृष्ठ के अग्रलेख में 'खोखला हिन्दू धर्म-हैलो हिन्दुइज्म- शीर्षक से अपने विचार लिख सकते हैं तब हिन्दुओं की सहनशीलता या कमजोरी के लिए किसी और प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं है। क्या इस तरह का भड़काऊ या अपमानजनक विशेषण किसी और धर्म के संदर्भ में सार्वजनिक रूप से प्रयुक्त करने का कोई दुस्साहस कर सकता है ? लगता है कि इस प्रकार के लेखकों व पत्रकारों की राजनीतिक धूर्तता पर नियंत्रण हेतु इस देश में कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है। पंथनिरपेक्षता के विक्षिप्त सहगान में ऐसे ही जहरबुझे अनेक राग हैं। उदाहरण के लिए एक पत्र ने लिखा कि देश के बहुसंख्यकों के राष्ट्रवाद की बातें बचकानी (नैम्बी-पैम्बी) हैं। हिन्दू धर्म का क्षितिज सिकुड़ रहा है और यह खोखला ढाँचा (एम्पटी सेल) मात्र है। इस उपमहाद्वीप की बुराइयों की जड़ हिन्दू ही हैं। प्रमुख पत्रकार खुशवन्त सिंह ने हिन्दू धर्मान्धता के उदय को देश के प्रजातंत्र के लिए खतरा बताते हुए हाल में एक पुस्तक "द एण्ड ऑफ इण्डिया" शीर्षक से प्रकाशित की है। उनका कहना है कि गुजरात की हिंसा के बाद भारत की परिकल्पना या अवधारणा स्वयं खतरे में है। 'विखण्डित' एवं 'पतनोन्मुख' हिन्दू समाज अपनी पहचान बनाए रखने के लिए बाहरी खतरों के नाम पर काल्पनिक कारण ढूँढ रहा है। 'टाइम्स आफ इण्डिया' में ही कुछ अरसे पहले टी.के. ऊमेन नामक पत्रकार का एक अग्रलेख छपा था जिसका शीर्षक था "अक्खड़ और अविचलित राज्य : अल्पसंख्यकों के मुद्दों पर स्तब्ध भद्र समाज" (इम्परवीयस स्टेट : सिविल सोसाइटी नम्ब टु माइननॉरिटी इशू) जिसमें साफ-साफ कहा गया है कि हिन्दू अतिरेकियों के कारण अल्पसंख्यकों में जैसा भय व्याप्त है वैसा गत पाँच दशकों में नहीं हुआ। साफ है कि आज की नयी शब्दावली सेकुलरवादियों के नए टोटकों की तरह है जिनसे सावधान रहना जरूरी है।

घृणित शब्दावली

बहुआयामी, बहुसांस्कृतिक, बहुधर्मी, बहुभाषी और बहुस्तरीय समाज को चित्रित करने के लिए इन्होंने अनेक शब्द आविष्कृत किए हैं। जैसे अनेकत्व (प्लूरलिज़्म), विविधता (डाइवर्सिटी) और तादीयत्व (बिलांगिंगनेस) आदि। पर जब बृहत्तर हिन्दू समाज की जीवन शैली या परिभाषा की चर्चा होती है तब ये अंग्रेजी लेखक सांस्कृतिक उलझन (कल्चरल इम्ब्रागलियो), हिन्दुत्व का विद्रूपीकरण (डिस्टार्शन) और पतन (डिक्लाइन), नैतिक संकट (मोरल क्राइसिस), घृणित राजनीतिक एजेण्डा, अंधयुग या पाषाण युग की वापसी (रिटर्न आफ़ द डार्क एज एण्ड स्टोन एज), हिन्दुओं का राजनीति के समुनुरूप-

प.पू. सरसंघचालक श्री सुदर्शन जी की श्रद्धाञ्जलि

"पूज्य रज्जू भैया नहीं रहे यह समाचार सुनकर सभी स्वयंसेवकों को धक्का लगना स्वाभाविक है। पिछले कुछ समय से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और वे ८१ वर्ष से ऊपर के हो चुके हैं, यह ज्ञात होते हुए भी वे हमें छोड़कर चले जायेंगे, यह कल्पना भी मन को स्पर्श नहीं करती थी। पर आज वे परम धाम को चले गये।

सन् १९४२ में संघ के सम्पर्क में आये रज्जू भैया संघ कार्य के साथ ऐसे समरस हो गये कि वे शीघ्र ही उत्तर प्रदेश के प्रान्त प्रचारक पद पर पहुँच गये। संघ कार्य के लिए पूरा समय देने की इच्छा होते हुए भी विद्यार्थी जगत में इतने लोकप्रिय थे कि विश्वविद्यालय ने ही उनसे प्रार्थना की कि अपनी सुविधानुसार ही वे कक्षाएँ लें किन्तु विश्वविद्यालय में बने रहें। जब वे प्रान्त प्रचारक बने, तब उनका संघ शिक्षा वर्ग भी नहीं हुआ था किन्तु उन्होंने आग्रहपूर्वक संघ के तीनों वर्षों का शिक्षण प्राप्त किया। सन् १९५६ में उन्होंने तृतीय वर्ष किया और सामान्य प्रशिक्षार्थी के नाते जो बातें सिखाई जाती थीं, उन्हें बड़े मनोयोगपूर्वक सीखते थे। संघ शिक्षा वर्ग के अन्त में जब परीक्षा होती थी, तो उसकी भी वे तैयारी किया करते थे। हालाँकि बौद्धिक परीक्षा के लिए किसी तैयारी की आवश्यकता उन्हें नहीं थी फिर भी कहते थे, 'अरे, कल परीक्षा है, उसकी तैयारी करनी है।'

प्रसन्नवदन एवं प्रभावी व्यक्तित्व, संक्षेप में बात कहने का कौशल, निरहंकारिता, आबाल-वृद्ध सबके साथ समरस होने की उनकी क्षमता, सहज वार्तालाप में भी ज्ञान और संस्कार देने की उनकी पटुता आदि सब ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक स्वयंसेवक के लिए अनुकरणीय हैं। अन्त समय तन्द्रिल अवस्था में भी वे यही कहते रहे– 'संघ कार्य बढ़ रहा है, सभी कार्यकर्ता प्राणपण से जुटे हुए हैं। किन्तु गति बढ़ाने की आवश्यकता है।' संघ कार्य के साथ पूर्णतः एकरूप हुए उनके अन्तःकरण से निकली उनकी इस आकांक्षा की पूर्ति में जुटना ही उनके प्रति हम सब स्वयंसेवकों की सच्ची श्रद्धांजलि होगी।"

मातृभूमि की सेवा में सदैव आपके साथ

कुप्प्.सी. सुदर्शन

(कनफिगरेशन) बनना और विश्वासघाती (इन्सीडियस) रूप लेना आदि-आदि वाक्यांश मीडिया में प्रयुक्त हो चुके हैं।

एक दूसरा पत्र हिन्दू संगठनों के विक्षिप्त किनारों (ल्यूनेटिक फ्रिंज) की बात करता है तो दूसरा हिन्दू धर्म में "आधुनिकता के सूचकांक" (इन्डेक्स आफ माडर्निटी) पर क्रोध जाहिर करता है क्योंकि उन्हें आश्चर्य है कि अंग्रेजी मीडिया में भी उनके पक्ष को रखने वाले काफी लोग बढ़ गए हैं। वे यह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि हिन्दू धर्म के विद्रूप या भद्दे तत्त्व (लम्पनाइज़्ड एलीमेन्ट्स) आज समाज पर हावी हैं। इसीलिए ज्योति बसु जैसे राजनीतिज्ञों में भी इतनी बौखलाहट बढ़ी है कि वे भारतीय जनता पार्टी व दूसरे हिन्दू संगठनों को 'असभ्य' व 'बर्बर' कह बैठे हैं।

खंडित होता पाखंड

आज के अंग्रेजी मीडिया का एक बड़ा वर्ग अपनी बनाई हुई दुनिया में रह रहा है, जो यथार्थ से इतना कटा है कि बहुसंख्यक समाज की प्रतिक्रियाओं को अनदेखा कर उनके लिए रूढ़िबद्ध धारणा (स्टीरियोटाइप) का निर्लज्जता से प्रचार करता है। हिन्दू शब्द के साथ संकीर्ण, पुरातनपंथी, अंध राष्ट्रवादी, साम्प्रदायिक या प्रतिक्रियावादी विशेषण लगाने के साथ-साथ वे समाज में अन्तर्विरोधों को भड़काने की भूमिका अभी भी अदा कर रहा है। प्रसिद्ध विचारक मो.ग. तपस्वी ने अपने ग्रंथ "राष्ट्राय नमः" में दो टूक शब्दों में एक कड़वा सच कहा है : "हिन्दू हितों के बारे में जो भी है वह एन्टी-सेक्युलर है। मुस्लिम व ईसाई संगठन एकदम सौ नम्बरी सेक्युलर हैं। पर सभी भेदभावों को भुलाकर सम्पूर्ण हिन्दू समाज का विचार करना कब से एन्टी-सेक्युलर हो गया ? यह केवल बकवास है। सर्वधर्म समभाव– सभी विचारधाराओं के प्रति समादर की भावना– यह हमारे समाज के रक्त में हजारों सालों से घुली है, पली है। हिन्दू जीवन– प्रणाली सही सेक्युलरिज्म की गारंटी है। पड़ोसी धर्मान्ध थियोक्रेटिक स्टेट पाकिस्तान को देखें और तब बतायें सेक्युलरिज्म क्या होता है ?"

कुछ भी हो पंथनिरपेक्षता के नारे लगाने वालों का पाखण्ड शनैः शनैः खण्डित हो रहा है।

□

– ए-१००२ पंचशील हाइट्स, महावीर नगर,
कान्दिवली (पश्चिम), मुम्बई-४०००६७

इस्लाम और पंथनिरपेक्षता

□ वीरेन्द्र कुमार 'वीरू'

पंथ

व्यक्तियों का समूह अथवा समाज, जिसकी निष्ठा, एक प्रवर्तक, एक पंथीय पुस्तक और एक आराध्य पर हो वह पंथ अथवा सम्प्रदाय कहलाता है।

इस्लाम पंथ

इस्लाम पंथ का एकमात्र अल्लाह, पुस्तक पवित्र कुरान और पैग़म्बर मोहम्मद हैं। इस्लाम मात्र एक पंथ ही नहीं है, वह एक सम्पूर्ण संगठित जीवन प्रणाली है– मजहबी भी और पंथ के अतिरिक्त दूसरे विषयों से संबंधित भी। यह एक प्रकार के विश्वासों का संग्रह भी है ओर पूजा की एक विशेष पद्धति भी। यह कानून का सम्पूर्ण तंत्र भी है। यह एक संस्कृति भी है और व्यवसाय का एक तरीका भी। यह एक विशेष प्रकार का समाज भी है और परिवार को चलाने का दर्शन भी।

इस्लाम के दो रूप

इस्लाम पंथ (मजहब) को समझने के लिए उसके व्यवहार के दोनों रूपों को समझना होगा। मक्का इस्लाम के प्रस्फुटित होने का शांति काल था और मदीना इस्लाम का आक्रमण काल था। इस्लाम का वास्तविक अभ्युदय मदीना काल से ही शुरू हुआ।

पहला रूप

पहले रूप में मक्का काल की आयतें हैं, जो इस्लाम के पंथनिरपेक्ष, शान्तिमय, प्रेम, सद्भावना और समझौतापरक रूप को प्रदर्शित करती है। उक्त आयतें 'कुफ्र' को बलपूर्वक दमन करने के लिए पर्याप्त शक्ति के अभाव में उसके साथ सह-अस्तित्व की मजबूरी दर्शाती हैं। उदाहरणार्थ– "मैं उनकी इबादत नहीं करता जिनकी तुम इबादत करते हो। और जिस (अल्लाह) की मैं इबादत करता हूँ तुम भी उसकी इबादत नहीं करते। ... तुमको तुम्हारा दीन और मुझको मेरा दीन (मुबारक)।" (सूर काफिरून १०९:१-६)

दूसरा रूप

दूसरा रूप है मदीना काल का। शक्तिसम्पन्न हो जाने के बाद ही वह आयतें उतरीं, जिन्होंने पूरी मानवता को निरन्तर युद्धरत "शैतान की पार्टी" और "अल्लाह की पार्टी" में विभाजित कर दिया।

ध्यान दें

.... ये (ग़ैर-मुस्लिम) शैतान की पार्टी हैं। सुन लो शैतान की पार्टी ही घाटा उठाने वाली है। (कु.म. ५८:१९)

.... ये (मुसलमान) अल्लाह की पार्टी ही सफलता पाने वाली है। (कु.म. ५८:२२)

"किसी नबी को छूट नहीं है कि वह युद्ध में लोगों को बन्दी बनाये, जब तक कि वह धरती पर कत्ले आम न कर दे। (कुरान मजीद ८:६७)

मदीने की मुख्य शर्तों में यह शर्तें भी सम्मिलित थीं

- किसी काफिर के वध के आरोप में किसी मुस्लिम का वध नहीं किया जायेगा।
- किसी मुस्लिम के विरुद्ध किसी काफिर को सहायता नहीं दी जायेगी।

(देखें प्रकाशक– सांस्कृतिक गौरव संस्थान– तालिबान इस्लाम और शान्ति, पृ. २१)।

"मुझे लोगों से तब तक युद्ध करते रहने का (अल्लाह से) आदेश मिला है कि जब तक कि वह यह सत्यापित न करने लगें कि अल्लाह के अतिरिक्त दूसरा कोई उपास्य नहीं है और मुझमें अल्लाह के रसूल (संदेशवाहक) होने के नाते और उस सबमें जो मेरे द्वारा लाया गया है विश्वास न करने लग जाएँ। (मोहम्मद साहब– हदीस सं. ३१ सही मुस्लिम)।

स्वर्ग पाने की लालसा ही जिहाद की प्रेरणा

काफिर और कुफ्र का सफाया करना ही इस्लाम का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य है। 'जिहाद' उसकी उर्जा है। काफिरों का वध करने वाला 'ग़ाजी' और यदि वह काफिरों द्वारा मारा गया तो "शहीद"। दोनों ही दशाओं में वह फिरदौस (श्रेष्ठ स्वर्ग) का अधिकारी होता है। स्वर्ग पाने की लालसा ही जिहाद के लिए प्रेरित करती है।

इस्लाम की दृष्टि में अन्य पंथ

इस्लाम की दृष्टि में मूर्तिपूजक अपवित्र (नजस) हैं और इसलिए उन्हें काबा के निकट जाने की अनुमति नहीं है। "ए ईमान वालों मुशरिक तो नापाक हैं, तो इस वर्ष के बाद

इज्जतवाली मस्जिद (काब़ा) के पास भी न फटकने पाये। (कु.म. ९:२८)।

कदाचित् इसी कारण पैगम्बर मुहम्मद साहब ने मुसलमानों को निर्देशित किया है कि वह अपने निवास, काफिरों की बस्ती से इतनी दूरी पर बनाएँ, जहाँ से काफिरों की बस्ती की रोशनी उन्हें दिखलाई न पड़े। (देखें– Zizyah And the Spread of Islam– Harsh Narain p. 2)।

इमाम मलिक और हसन बसारी के अनुसार मूर्तिपूजकों का शरीर अपवित्र है। हनफियों के अनुसार उनकी आस्था अपवित्र है और अनवरशाह कश्मीरी के अनुसार मूर्तिपूजक आस्था और शरीर दोनों से अपवित्र है।

(कु.म. ४: १०१)।

ए ईमान वालों ! को छोड़कर काफिरों को दोस्त मत बनाओ। क्या तुम अल्लाह के प्रति खुला अपराध अपने ऊपर लेना चाहते हो ? (कु.म. ४:१४४)।

कहने को उनका (मुसलमानों का) हिन्दुओं से कोई मनोमालिन्य नहीं किन्तु साथ ही साथ वह फतवा भी जारी करते हैं कि नेहरू की मृत्योपरान्त उनके शव के पास कुरान का पाठ इस्लाम के विरुद्ध है क्योंकि काफिर के शव पर कुरान नहीं पढ़ी जा सकती।

यह जाकिर हुसेन को भारत का राष्ट्रपति तो देखना चाहते हैं, किन्तु अच्छा मुसलमान होने के नाते उनके हिन्दी में

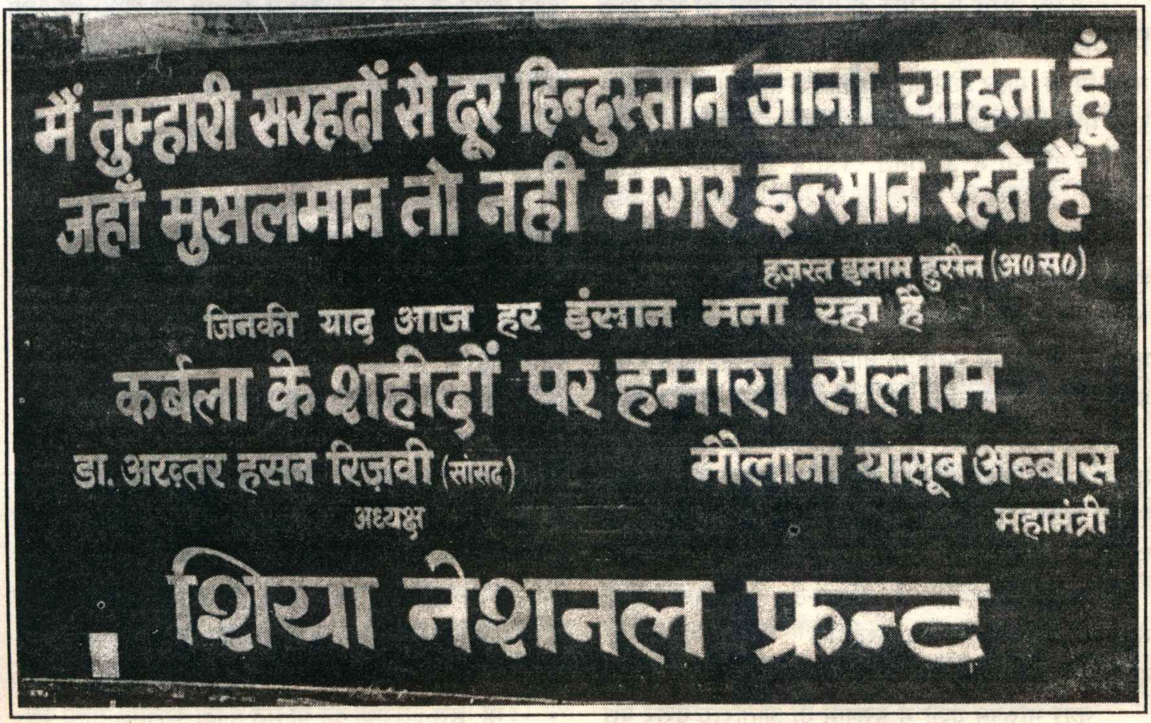

"…. और मुसलमान लौंडी शिर्कवाली बीबी से भली है चाहे वह तुमको अच्छी ही लगती हो, …. और शिर्कवाला तुमको कैसा ही भला लगे, उससे ईमान वाला गुलाम भला। (कुरान्न मजीद, २:२२१)"।

काफिरों के प्रति इस्लाम के दृष्टिकोण को समझने के लिए कुछ उदाहरण देखें :

"…… बेशक काफिर तो तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।

शपथ और शंकराचार्य से आशीर्वाद लेने पर आपत्ति करते हैं। (देखें– पुरुषोत्तम, मुस्लिम राजनीतिक चिन्तन और आकांक्षाएँ, पृ. ४; तथा हमीद दलवई– मुस्लिम पालिटिक्स इन सेक्यूलर इंडिया, पृ. ४७)।

इस्लाम दूसरे धर्मानुयाइयों को इस्लाम ग्रहण करने का निमंत्रण देने का अपना एकाधिकार मानता है। परन्तु दूसरे मतावलम्बी यदि मुसलमान को ग़ैर-इस्लामी पंथ में प्रविष्ट

होने की प्रेरणा दें, तो उनका दण्ड भी मृत्यु ही है।

मुस्लिम शरीयः के अनुसार इस्लाम को झूठा कहने की सजा मृत्यु-दंड है। इतना ही नहीं, जो इस्लाम के साथ-साथ अपने पंथ के भी सच्चा होने का दावा करें उनकी सजा भी मृत्यु होती है। उन लोगों को जो इस्लाम को सच्चा मजहब बताकर अथवा मुहम्मद साहब को पैग़म्बर मान लेने के बाद भी मुसलमान होने से इन्कार करें उनकी भी सजा मृत्युदंड है।

इस्लामी देशों में अन्य पंथों के साथ व्यवहार

इस्लामी लॉ (कानून) भेदमूलक है– सर्वपंथ समभाव नहीं

शरीयत मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम के साथ न्याय करने में भी भेद करती है।

सऊदी अरब में रियाद के निकट दमन की एक ग्रीक निर्माण कम्पनी में सुनील वढेरा नामक एक भारतीय हिन्दू मोटर मिस्त्री (मोटर मैकेनिक) का काम करता था। वह मान्यता-प्राप्त मोटर मैकेनिक था। एक गाड़ी की मरम्मत करते समय हुई एक दुर्घटना में ३० मार्च, १९८४ को उसकी मृत्यु हो गयी।

सऊदी सरकार की जाँच-पड़ताल में एक ग्रीक नागरिक सुनील वढेरा की मौत का जिम्मेदार पाया गया। उसने नियमानुसार १,००,००० सऊदी रियाल (लगभग ४.६६ लाख रुपये) मुआवजे के रूप में मृतक के वारिस को देने के लिए सऊदी श्रम न्यायालय में जमा कर दिये। ६ साल बाद २ जून, १९९० को श्रम मंत्रालय ने अपना फ़ैसला दिया कि, "चूँकि मृतक हिन्दू था अतएव शरियत के कानून के अनुसार ६६६६.६६ सऊदी रियाल (लगभग ३०,००० रुपये) उसके वारिस को भुगतान किया जाय।"

शरियत मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम को, एक ही परिस्थितियों में मुआवजा देने में भेदभाव करती है।

दूसरे पंथों की पुस्तकें रखना जुर्म

कुछ मुस्लिम देशों में इस्लाम के अतिरिक्त दूसरे पंथ (मजहब) की पुस्तक रखना भी जुर्म है। उन देशों में रहने वाले विदेशी मूर्ति-पूजकों को अपने निवास के कमरों के अन्दर भी मूर्तिपूजा की अनुमति नहीं है। उन देशों में प्रवेश करते समय यह लिखित घोषणा करनी पड़ती है कि उनके सामान में कोई मूर्ति नहीं है।

इस्लाम में अन्य पंथों के साथ सह-अस्तित्व नहीं

इस्लाम मानता है कि एकमात्र अल्लाह ही उपास्य है और उसके सिवा कोई अन्य उपास्य नहीं।

इस्लाम की यह भी मान्यता है कि 'अल्लाह' के साथ किसी अन्य को शरीक करना 'शिर्क' होता है जो कुफ्र है और बहुत बड़ा गुनाह है।

इस्लाम का यह भी मानना है कि हर मुसलमान का यह फर्ज है कि वह दुनिया से कुफ्र को जड़ से समाप्त कर दे। मूर्तिभंजक इस्लाम के साथ मूर्तिपूजक (काफिरों) के सह-अस्तित्व को सोचना सुखद कल्पना मात्र है।

बहुदेवतावादियों को जिनके पंथ से अल्लाह कतई घृणा करता है, इस्लामी शासन में अपने पंथ के पालन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उन पर (मुसलमानों द्वारा) विजय प्राप्त करने के बाद उन्हें दारुल-इस्लाम को छोड़ कर भाग जाना चाहिए अन्यथा उनको गुलाम बनना पड़ेगा अथवा कत्ल होना।" (देखें– प्रो. डैनियल याइप्स : इन दि पाथ आफ गाड, पृ. ४५)।

मौलाना मदूदी काफिरों के साथ सहअस्तित्व के समर्थक नहीं

जमात-ए-इस्लामी के संस्थापक मौलाना मदूदी ने अपने एक लेख (अप्रैल १९३९) में इस्लाम का विश्लेषण करते हुए लिखा था "काफिरों, मुशरिकों और मुसलमानों की एक कौमियत में जमा होने की बात 'कुरान शरीफ' में कहीं भी ठीक नहीं बताई गई।"

मौ. मदूदी का कहना है कि "इस इस्लामी दृष्टिकोण का सबूत यह है कि पैग़म्बर अथवा खलीफाओं के काल में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है कि जिसमें किसी ग़ैर-मुस्लिम को संसद का सदस्य, किसी सूबे का गवर्नर, न्यायाधीश, किसी सरकारी विभाग का निर्देशक अथवा खलीफा के चुनाव में वोट देने का भी अधिकार दिया गया हो। सेनापति अथवा मंत्री बनाया गया हो।

इस्लामी राज्य पंथनिरपेक्षवादी नहीं

मौ. हसन तुराबी का भी मत है कि इस्लामी राज्य पंथ-निरपेक्षतावादी नहीं होता है। इस्लामी राज्य में सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन मजहबी होता है (देखें– हसन तुराबी : (इस्लामी राज्य) वाइसेज़ आफ रिसर्जेन्ट इस्लाम, पृ. २४२)

पंथनिरपेक्षता

यह परिस्थितियाँ-जन्य यूरोपीय परिकल्पना है। यूरोपीय देशों में चौथी और १६वीं शताब्दी के मध्य ईसाई चर्च और राजसत्ता में गहरा गठजोड़ था। वह प्रजा के पारलौकिक ही

नहीं इहलौकिक कल्याण पर भी अपना नियंत्रण किए हुए था। चर्च के शिकंजे में कसी राजसत्ता १६वीं शती में उससे मुक्त होने का उपाय करने लगी। चर्च के विरुद्ध व्यापक विद्रोह हुआ और ईसाइयत कई सम्प्रदायों में बँट गई। किन्तु यह सुधारवादी सम्प्रदाय और अधिक असहिष्णु साबित हुए। उनमें सम्प्रदाय को लेकर परस्पर भीषण संघर्ष हुआ। अलग-अलग राज-सत्ताओं ने अलग-अलग सम्प्रदाय का साथ दिया।

१९वीं शती में यूरोप के सभी देशों में राजसत्ता चर्च के चंगुल से मुक्त हो गयी। नागरिक के इहलौकिक आचरण पर नियंत्रण ही राजसत्ता का कार्य रह गया। उसके व्यक्तिगत विश्वास अथवा अविश्वास से उसका कोई वास्ता नहीं रहा। चर्च से मुक्त राजसत्ता पंथनिरपेक्ष (सेक्युलर) कहलाई और धीरे-धीरे यूरोप में 'सेक्युलरिज़्म' की एक संस्कृति का विकास हुआ जो सब प्रकार की मतान्धता का विरोध करती है और पंथनिरपेक्ष है।

इस्लामी देशों पर पंथनिरपेक्षता का प्रभाव नहीं

इस्लाम मात्र सम्प्रदाय ही नहीं वरन् एक विशिष्ट जीवन पद्धति है जो कुरान मजीद तथा शरीयः के अनुसार चलती है और जिसका मकसद समस्त विश्व को दारुल इस्लाम बनाना है। इस्लाम में राज्य से मजहब को अलग नहीं किया जा सकता। अस्तु, इस्लामी राज्य में पंथनिरपेक्षता का प्रश्न ही नहीं उठता।

इस्लामी कानून (शरीयः) में मुस्लिम और गैर-मुस्लिम में भेद किया गया है। केवल इस्लाम को ही सच्चा एवं श्रेष्ठ मजहब माना गया है। गैर मुस्लिम को नजस मानकर उनसे दूर रहने, और उन्हें अपना मित्र न बनाने के निर्देश हैं। काफिर और कुफ्र का सफाया करना ही इस्लाम का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य है। उसके लिए फिरदौस (स्वर्ग) का वायदा तथा "गाज़ी" एवं "शहीद" की पदवी से महिमामंडित किया गया है। ऐसे वातावरण में सर्वपंथसमभाव का प्रश्न तो इस्लाम में उठता ही नहीं अपितु 'सर्वपन्थसमभाव' की बात करने वाले के लिए दंड का विधान अवश्य है।

सैय्यद अबुल हसन नदवी का मत है कि "मज़हबी मुसलमान इस्लाम के प्रति प्रेम को प्रोत्साहन देते हैं तो ग़ैर-इस्लामी दर्शनों, विचारों और सिद्धान्तों के प्रति घृणा को।"

इस्लामी कट्टरपंथी मदरसों में जिहाद का जनून मुसलमानों में भरने के लिए तालिबानों (छात्रों) को शिक्षा दी जाती है और जिहाद के माध्यम से सम्पूर्ण संसार में इस्लामी पताका फहराने का पाठ पढ़ाया जाता है।

'अलकायदा' जिसका शाब्दिक अर्थ 'बुनियाद' है से जुड़े दुनिया भर में फैले २०० से अधिक जिहादी संगठन हैं, लेकिन उनमें से दो दर्जन अधिक महत्वपूर्ण हैं जो कुफ्र का सफाया करने में लगे हैं और वह ओसामा बिन लादेन की प्रशंसा करते हुए कहते हैं- **"इस्लाम का गाज़ी है और कुफ्र शिन, मेरा शेर है ओसामा बिन लादेन।"** इससे आतंकवादियों की मूल भावना और उद्देश्य पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यह कहना गलत है कि आतंकवादियों का कोई मजहब नहीं होता। यदि ऐसा होता तो वह केवल काफ़िरों और मुखबिरों को ही न मारते। वह मुसलमानों को भी मारते परन्तु उनका पंथ और उद्देश्य तो कुफ्र और काफिरों को समाप्त करना है।

"दिल्ली की जामा मस्जिद से लादेन या इराक युद्ध में मुसलमानों के मारे जाने पर इसे इस्लाम के विरुद्ध साजिश बताकर गुस्सा दिखाने की ड्रामेबाजी की जाती है, मगर २४ कश्मीरी पंडितों के कत्ल का कोई जिक्र नहीं होता...।" स्पष्ट है कि इस्लाम में सर्वपंथसमभाव की भावना नहीं है। (देखें- फिरोज बख्त अहमद का लेख, "एक आवश्यक पहल", दैनिक जागरण, ५-५-२००३)।

केवल इस्लाम को ही सच्चा मजहब मानने और दुनिया से काफिरों और कुफ्र को समाप्त करने के लिए इस्लामी बन्धुत्व के नाम पर विभिन्न देशों के मुसलमान एक साथ मिलकर, भारत, इजराइल, फिलिस्तीन, लेबनान, साइप्रस, यूगोस्लाविया, अल्जीरिया, सूडान, नाइजीरिया, इथोपिया, जार्जिया, अजरबेजान, फिलीपीन्स और इण्डोनेशिया आदि देशों में ग़ैर-मुस्लिमों से संघर्षरत हैं। जरा इस पर भी ध्यान दें :

"वही है जिसने अपने पैग़म्बर को हिदायत और सच्चा दीन देकर भेजा ताकि उसको हर दीन से ऊपर करे, और भले ही मुशरिकों को बुरा (ही क्यों न) लगे।" (कु.म. ९:३३)

तथ्यों से स्पष्ट है कि इस्लाम में जब सर्वपंथसमभाव ही नहीं है तो पंथनिरपेक्षता तो संभव ही नहीं हो सकती है।

इतिहास का भी निष्कर्ष है कि संसार में जहाँ कहीं भी मुसलमान अल्पसंख्यक होता है, वह अलगाववादी होता है और जहाँ पर वह बहुसंख्यक वहाँ सह-अस्तित्व अथवा सर्वपंथ-समभाव की सोच उनके व्यवहार में कहीं नहीं मिलती। □

पंथनिरपेक्षता और मीडिया एवं सेकुलरवादी

□ एच.के. निगम

आज अंग्रेजी मीडिया के एक बड़े वर्ग में लगभग सभी हिन्दू संगठनों को एक पैशाचिक रूप देने या 'डेमोनाइज' करने की होड़ फिर शुरू हो गई है। शायद ऐसा न करने से उन्हें अपनी आधुनिकता व पंथनिरपेक्षता के लिए प्रतिबद्धता सिद्ध करने का मौका नहीं मिल पाता। देश का कोई बड़ा पत्र उठाइये और आपको एक ऐसी दुनिया दिखाई देगी जहाँ बहुसंख्यकों के कुत्सित, वीभत्स और भयावह चेहरे हैं, उनकी विकृत षड्यंत्रकारी प्रतिभा नाज़ी युग की पुनरावृत्ति करने के लिए तत्पर है व देश की प्रजातांत्रिक परम्पराएँ फिर खतरे में हैं। देश के सामान्य नागरिकों के मन में ऐसी कोई बात हो या न हो पर यदि कुछ अंग्रेजी पत्रों पर विश्वास किया जाए तो यही लगेगा कि बहुसंख्यकों के अनेक षड्यंत्रों से सारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया खतरे में पड़ गई है। आज परिदृश्य लगभग वैसा है और तर्क भी वैसे ही दिये जा रहे हैं जैसे विभाजन के पहले मुस्लिम लीग और अंग्रेज दोनों मिलकर कांग्रेसियों को हिन्दूवादी दल कहने में आनन्द लेते थे। आज के कुछ अंग्रेजी पत्रों की दुनिया ही निराली है।

आज मूल रूप से बहुसंख्यकों के संगठनों की भर्त्सना में दो तरह की बातें कही जा रही हैं। वे पुरातनमंथी, एकांगी और सवर्ण-नियंत्रित हैं; पुनरुत्थानवादी व अंधराष्ट्रवादी होने के अलावा असंवैधानिक गतिविधियों में में भी लिप्त हैं। दूसरी ओर वे यह भी भविष्यवाणी कर रहे हैं कि भाजपा और हिन्दू संगठनों का अन्तर्द्वन्द्व टूट-फूट में तब्दील हो रहा है।

ध्रुवीकरण और सौदेबाजी का उत्तेजक रूप

कभी-कभी लगता है क्रि आज का युग स्पष्टवादिता का नहीं है क्योंकि यह कभी-कभी काफी महँगी सिद्ध होती है। एक झटके में ही वह अपको अनायास एक खेमे में खड़ा कर देती है। आप संशय के केन्द्र-बिन्दु हो सकते है" क्योंकि सम्भव है कि आपके मित्रों को अप्रिय सत्य पसन्द न हो और दुश्मनों की आलोचना के निशाने तो आप बन ही जाते है। पंथनिरपेक्षता आज राजनीतिक क्षेत्रों का एक ऐसा शब्द है जो राजनीति में ध्रुवीकरण एवं खेमेबंदी का उत्तेजक रूप प्रस्तुत करता आया है। दलगत राजनीति के अलग -अलग खेमों में विरोधियों पर अस्त्र की तरह उपयोग करने से इस नारे की निरर्थकता इस शब्द को बहुधा हास्यास्पद बना देती है।

उदारवादी गर्व तिरोहित

अब ११ सितम्बर, २००१ के बाद अमेरिका ने भी अपने आतंकवाद विरोधी अभियान के बाद के अन्दरूनी सामाजिक बदलावों के दौर में पंथनिरपेक्षता का मुखौटा एक उद्वेगपूर्ण प्रतिक्रिया के तहत उखाड़ फेंका और इस्लाम के अनुयायियों को शक के कटघरे में खुल कर खड़ा कर दिया। देश की सुरक्षा के नाम पर उनका उदारवादी गर्व अचानक तिरोहित हो गया है और आश्चर्य है उनके प्रशासन के किसी भी स्तर पर रंचमात्र भी हीनता की भावना नहीं है। इसके बावजूद हमारे देश के अंग्रेजी मीडिया या कथित पुरोगामी राजनीतिक दलों का यह मनोबल नहीं है कि वे उनके लिए नाजीवादी, फासीवादी, प्रतिगामी, और साम्प्रदायिक जैसे विशेषण प्रयुक्त करें जो बहुधा वे इस देश के बहुसंख्यकों के सगठनों के लिए संरक्षित रखते है व बिना आधार के प्रयुक्त करते रहते हैं। हमारे देश में पंथनिरपेक्षता को लोकतंत्र का ही एक विशेषण मानकर चलने वाले एक दोहरी जिन्दगी जी रहे हैं और उसमें वे प्रगतिशील भी हैं जो आज या तो 'लेमनचूस' समाजवाद के द्वारा सिर्फ असमानता के नारों पर जीवन यापन कर रहे हैं और हवाई तलवारबाजी द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आशा करते हैं। इस कथित प्रबुद्ध वर्ग द्वारा लगाए गए आरोपों की शब्दावली भी चित्ताकर्षक अपशब्दों से भरी है : अल्पसंख्यक विरोध, बहुलतावादी समाज के शत्रु, मानवद्रोही, नस्लवादी, मध्ययुगीन, पुरातनपंथी, मनुवादी, फासीवादी, साम्प्रदायिक, अंधराष्ट्रवादी, पुनरुद्वार के नशे में डूबी, खण्डित, प्रतिगामी और इतिहास-विरोधी दृष्टि युक्त इस भाषाई विकृति का प्रत्युत्तर देना सिर्फ अपेक्षित ही नहीं समय की एक बड़ी मांग है। हाल में पंथनिरपेक्षता के कथित हिमायतियों व वामपंथी दलों ने शिक्षा के केसरियाकरण के प्रश्न पर देशभर में हाहाकार मचाया था। पर सर्वोच्च न्यायालय ने इन बेबुनियाद आरोपों को खारिज कर दिया और उनके राजनीतिक मन्तव्यों का स्वतः पर्दाफाश हो गया।

आज जिस तरह का भारत आप देखना चाहते हैं वह इस बात पर निर्भर है कि आप कौन सा अखबार पढ़ते हैं। अंग्रेजी और हिन्दी या भारतीय भाषाओं के पत्र कभी-कभी लगता है दो अलग देशों की बात करते हैं।

निष्पक्षता और विश्वसनीयता समाप्तप्राय

अंग्रेजी के संमाचार-पत्र कभी-कभी प्रतीत होता है यथार्थ से दूर, विघटन, हिंसा, असहिष्णुता और वामपंथी विचारों की आड़ में नयी-नयी 'मिथ' भी प्रचारित करते हैं। इस देश में हर व्यक्ति की बहुआयामी पहचान है। अंग्रेजी अखबारों के पढ़ने से लगता है हर भारतीय शहरी है; पैसे वाला है, वैश्वीकरण और आधुनिकता का प्रसाद चख चुका है। जैसे ग्रामीण भारत का कोई अस्तित्व नहीं हैं और अपने पूर्वजों की आस्थाओं पर उसमें हीन-भावना भी है। नई जीवन-शैली से चमत्कृत वह अपनी जड़ों से कटता जा रहा है। साफ है अखिल भारतीय संदर्भ में अंग्रेजी के अधिकांश पत्रों की निष्पक्षता और विश्वसनीयता समाप्त होती जा रही है।

भारतीय भाषा के पत्र आज भी बहुधा हमारे बहुस्तरीय समाज को बांधने वाले धागों का काम कर रहे हैं। वरिष्ठ पत्रकार दिलीप पाडगाँवकर को भी हाल में यह कहना पड़ा कि अंगरेजी पत्रों में सत्य केवल खेल-पृष्ठों में, अर्धसत्य मौसम की खबरों के पृष्ठ में और बाकी पृष्ठों में असत्य का बोलबाला रहता है। वह तो यह भी मानते हैं कि हमारे देश में समाचार भी सम्पादकीय की तरह लिखे जाते हैं। इसका नतीजा यह है कि बहुसंख्यकों से सम्बन्धित समाचारों की जन्मभूमि ही राजनीतिक चालों और दुराग्रहों पर बनी हुई है। आज की संकीर्ण राजनीति हर चीज को विवादास्पद बना सकती है।

तर्कों का विकृत और नकारात्मक प्रयोग

तर्कों का विकृत और नकारात्मक प्रयोग हमारे अंग्रेजी प्रेस ने जिस तरह किया है उसके कुछ उदाहरण पर्याप्त हैं। उनका कितना बुरा और सांघातिक असर हो सकता है यह समझा जा सकता है। यह भुलाया नहीं जा सकता है। कुछ पत्र एक समय लिखते थे कि क्योंकि भारत ने पूर्वी पाकिस्तान को तोड़कर बंगला देश बनवाया उसके बाद यदि पाकिस्तान ने पंजाब में आतंकवाद को शह दी तो इसमें रोना किस बात पर ? इसी तरह बाबरी मस्जिद गिराने के बाद यदि मार्च १९९३ में आतंकवादियों ने पाकिस्तान की मदद से मुम्बई और दूसरी जगह बम के धमाके किए तो उस प्रतिक्रिया में कोई असामान्य बात नहीं थी। पर यह तर्क गोधरा में ट्रेन में जलाए लोगों के बाद की प्रतिक्रिया पर लागू नहीं होता है।

अंग्रेजी पत्रों के कुछ लेखक तो आज भी रट लगा रहे हैं कि राम के अयोध्या में जन्म होने का कोई साक्ष्य ही नहीं है; वहाँ मंदिर भी उस स्थल पर नहीं था। वे नहीं जानते हैं कि बहुसंख्यकों के विश्वासों का इस तरह मखौल उड़ाने में वे किसके मर्मस्थल को चोट पहुँचा रहे है और उन्हें स्वतः संगठित होने का अवसर दे रहे है।

हमारे देश में भारतीय संस्कृति के हिन्दू पक्ष को तरह-तरह से नकारते हुए पंथनिरपेक्षता के नाम पर "बहुसंख्यकों के मजहबी अत्याचारों" का हौवा लगातार खड़ा किया गया है, यह सब जानते हैं। हिन्दू शब्द की सामान्य भाववाचक संज्ञा 'हिन्दुत्व' के लिए अनेक अंग्रेजी पत्रों ने पंथनिरपेक्षता की नकारात्मक राजनीतिक परिभाषा के द्वारा काल्पनिक चित्र खींचे और यूरोपीय आधुनिक इतिहास के भयावह शब्द जैसे नरसंहार-जेनोसाइड, फासीवाद, नाजीवाद-नाजिज्म, को भारतीय समाज के संदर्भ में थोप कर अमेरिकी साम्राज्यवाद की शब्दावली को तोते की तरह रटना शुरू कर दिया।

हठधर्मिता

वैसे भी इंगलैण्ड या अमेरिका के कोई भी समसामयिक विषयों की अथवा अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की कोई भी पत्रिका देखने से कहीं भी 'सेक्लुरिज्म' शब्द का प्रयोग, जिस अर्थ में भारत के अंग्रेजी के पत्र करते हैं, नहीं मिलेगा। यह शब्द एक लेबल की तरह प्रतिद्वन्द्वी दल पर चिपकाया जा सकता है। आप रातों-रात 'साम्प्रदायिक' बन सकते हैं और फिर 'पंथनिरपेक्ष' भी यदि आप खेमा बदल डालें। जिस तरह यहाँ यह मंत्र अखबारों में जैसे जपा जाता है वह अखबारों की हठधर्मिता और उनके राजनीतिक एजेन्डा को परिलक्षित करता है।

सुविधावादी चुप्पी

चिन्ता का विषय तो यह है कि यह शब्द बहुसंख्यकों की आस्था पर समय-असमय चलाए जाने वाले कोड़े के रूप में प्रयुक्त होता है। ऐसे प्रबुद्ध लोगों को हर जगह हिन्दुओं का 'मैनीपुलेशन', विश्वासघात, कुप्रचार और साम्प्रदायिकता ही दीखती है। वे देश के इतिहास को नकारने का भी कोई मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहते है। देश में सारे पृथकतावादी आन्दोलनों का मूल रूप हिन्दू मानसिकता के उन्माद में दिखाई देने से उनका संतुलित विवेक खो जाता है, यह आज स्पष्ट है। यहाँ संदर्भ इस्लाम या किसी दूसरे सम्प्रदाय के शाश्वत सत्यों का नहीं है, उस दम्भ, छल या पाखण्ड का है जो हमारी तथाकथित सेक्युलर राजनीति के साथ जुड़ा है, जिसने विशेषकर आधुनिक पढ़े-लिखे देशवासियों की मानसिकता को इस तरह विकृत कर दिया है कि जहाँ-जहाँ कड़वा सच कहने का उन्हें जोखिम उठाना पड़ता है वहाँ एक सुविधावादी चुप्पी उनका सहारा बनती है। अंग्रेजी के समाचार पत्र 'हिन्दुत्व' शब्द मखौल या व्यंग्य के रूप में लगातार प्रयुक्त करते हैं। यह तो

वैसा ही हुआ जैसे ईसाइयों के लिए अंग्रेजी का 'क्रिस्टेन्डम' शब्द उन्हें नीचा दिखाने के लिए प्रयोग किया जाए।

हमारे देश में स्वतंत्रता के पांच दशकों बाद भी भारतीयता की संकुचित धारणाएँ प्रचारित की जा रही हैं। उनका पश्चिमी मानदण्डों द्वारा मूल्यांकन करने की जिद्द स्पष्ट है। विदेशों के मीडिया में अनुमोदन के लिए कुछ बुद्धिजीवी राष्ट्र की अवधारणा पर भी संशय प्रकट कर रहे हैं। ऐसे कुछ लोगों को जाली भद्रलोग- काउन्टरफीट जेन्ट्री- या यूरंडपंथी- यूरो इण्डियन- भी कहा जा रहा है। दूसरे कुछ शब्दों के प्रयोग भी सार्थक हैं- छद्म पंथनिरपेक्षवादी- स्यूडो सेकुलरिस्ट- प्रच्छन्न पंथनिरपेक्षवदी- क्रिप्टो सेकुलरिस्ट- अर्धपंथनिरपेक्षवादी- क्वासी सेकुलरिस्ट- वक्र पंथनिरपेक्षवादी- जिग-जैग सेकुलरिस्ट- दीर्घ वृत्ताकार- एलिप्टिकल सेकुलरिस्ट- कपटी या ढोंगी पंथनिरपेक्षवादी- शैम सेकुलरिस्ट- दोमुहाँ पंथनिरपेक्षवादी- जेनस फेस्ड सेकुलरिस्ट- दोहरी जबान वाले पंथनिरपेक्षवादी- फोर्कटंग सेकुलरिस्ट, आदि आदि।

विडम्बना

उनकी नजर में भारत अभी भी एक राष्ट्र नहीं है, बनने की प्रक्रिया में है। भारतीय मूल के अनेक प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक भी यही राग अलाप रहे हैं कि यह देश मात्र उनकी कल्पना का है, एक विचारमात्र है, एक प्रतीक है। उन्हें यहाँ सब कुछ विघटित होता हुआ, टूटता, बिखरता दीखता है जिसमें शून्यता, रिक्तता, गरीबी, घुटन, विषमता और सामाजिक अन्तर्विरोधों के घातक समीकरणों के अलावा कुछ नहीं है। वे क्या जानें कि भारतीयता तो मात्र नागरिकता है, बहुसंख्यकों के विश्वास ही राष्ट्रीयता के ताने-बाने हैं। आज के ज्वलन्त प्रश्नों के राजनीतिक उत्तर पुराने और खोखले होते जा रहे हैं, ऐसा लगता है। पंथनिरपेक्षता का कवच पहने एक नये प्रकार के अतिरेकी देश को कई सदमे दे चुके हैं। पर विडम्बना यह है कि वे किसी भी प्रकार के आत्मनिरीक्षण के लिए सिद्ध नहीं हैं।

नकारात्मक प्रयोग

पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य हर स्थिति में अल्पसंख्यकों की भावनाओं को उभाड़ने का काम जैसा कुछ राजनीतिक दल करते आ रहे हैं, नहीं है। ये कदम उन्हीं का नुकसान कर रहे हैं। हमारे संविधान में प्रयुक्त पंथनिरपेक्ष राज्य की परिकल्पना में सर्वपंथसमभाव का तात्पर्य था। यह न तो पंथ की अस्वीकृति से था न ही बहुसंख्यकों के विरुद्ध घृणा के एक अस्त्र के रूप में समाज के अन्तर्विरोधों को उजागर करने का माध्यम था। पंथनिरपेक्षता विभिन्न विश्वासों के सह-अस्तित्व की धारणा पर था। पर इस देश में इस शब्द को नकारात्मक रूप से प्रयुक्त कर अनुत्तरदायी राजनीतिज्ञों ने सदैव समाज के विघटन की कोशिश की है। इस प्रकार की पंथनिरपेक्षता में निश्चय ही कहीं खोट है, यह हमें मानना पड़ेगा क्योंकि हमारे देश में बहुसंख्यकों के दूसरों पर अत्याचार की मनगढ़न्त कहानियों से ही इसे बल मिलता है।

पंथनिरपेक्षता की अवधारणा भारत के संदर्भ में विशेषकर आज के जमाने में नैतिकता के ऊँचे मंच से अचानक कब राजनीतिक पाखण्ड में बदल गई, यह एक रोचक विषय है। जैसा ऊपर कहा गया है पंथनिरपेक्षता का प्रश्न अपने शाब्दिक अर्थ में मौलिक रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि जहाँ देश के अस्तित्व बोध के सत्य का प्रश्न है वह धार्मिक आधार से अलग हो ही नहीं सकता है। पंथनिरपेक्षता न तो आस्थाओं की प्रतिबद्धता है और न ही एक विश्वास का अहंकार है जो शासनतंत्र के भयादोहन का रास्ता निकालने का नाम है। इस तरह अल्पसंख्यकों को देश के परिप्रेक्ष्य में अपने स्वाभिमान को बनाये रखने का पूरा अधिकार तो है पर इसे दबावों के मकड़जाल के रूप में प्रयुक्त करना संवैधानिक रेखाओं का अतिक्रमण करना होगा। स्वतंत्रता के बाद से ही इस लक्ष्मण रेखा का आदर करने की कोशिश नहीं की गई। पंथनिरपेक्षता को सही तरह परिभाषित करने की कोशिशें नहीं की गई। इसका एक कारण यह भी था कि संविधान सभा ने देश के संविधान की उद्देशिका में इस शब्द का समावेश करना भी जरूरी नहीं समझा था।

अर्थ

पिछले दशकों में इस शब्द की अवधारणा कुछ भी रही हो, हम आज सेकुलर नहीं हैं। शब्दकोश में सेकुलर का अर्थ है– लौकिक, ऐहिक, सांसारिक, दुनियावी और पंथविरुद्ध। सेकुलरिज्म का अर्थ दिया गया है– पंथनिरपेक्षवाद, सांसारिकता ऐहिकता, लौकिक और पंथविरोध। इसकी दूसरी परिभाषा सारे विश्व में प्रचलित है– सेकुलरिज्म वह राजनीतिक प्रणाली या सामाजिक दर्शन है जो मजहबी विश्वास के किसी भी रूप को अस्वीकार करता है।

इस परिप्रेक्ष्य में हमारे राजनीतिक दल लाखों-करोड़ों अशिक्षित लोगों के साथ-साथ तथाकथित प्रगतिशील और सचेत मीडिया की सांठ-गांठ से इस शब्द का मंत्र जाप कर समाज में नये-नये तरह के अन्तर्विरोध बढ़ाते जा रहे हैं। 'पंथनिरपेक्ष' सरकारें इसके तात्विक अर्थ में सिर्फ चीन और पूर्व सोवियत संघ में ही हो सकती थीं जहाँ शासन तंत्र पंथ की अफीम मानकर ईश्वर– और आस्थाविहीन समाज तैयार करने का

लक्ष्य सामने रखती रही है तथा मजहबी अर्थ में निष्पक्षता का दावा कर सकती थी।

विकृत दृष्टि

देश के ८५ प्रतिशत हिन्दू पृथकतावादी इसलिये नहीं हो सकते क्योंकि वे इस देश को सदैव अपना मानते हैं। उनकी कहीं बाहर किसी तरह की प्रेरणा के लिये झाँकना आवश्यक नहीं है। इस बात को कहाँ तक छिपाया जायेगा कि जो अपने अतीत को स्वीकार करना नहीं चाहते हैं उनकी भारतीयता की परिभाषा सुविधावादी हो सकती है। यदि अखिल भारतीय एकता की अवधारणा- पैन इण्डियन सेंस आफ यूनिटी- संस्कृति में निहित है तो उससे घृणा कीजिये, यदि हमारी जड़े परम्पराओं में है तो उनका मखौल उड़ाइये। अगर दूसरे पंथ के प्रसंग, उनकी अविश्वसनीय दन्तक़थाओं या 'मिथ' की बात हो तो समाजशास्त्री का मुखौटा लगाकर उनकी सम्मोहन शक्ति की बात कीजिये; उनके तादीयत्व, लोकाचार, जड़ों और ऐतिहासिक मनःस्थिति पर आंसू बहाइये। पर हिन्दुओं की इन्हीं बातों को अंग्रेजी पत्र पिछड़ापन, अंधविश्वास, पोंगापंथी और खण्डित या 'फ्रैक्चर्ड', डूबती हुई समाज दृष्टि– 'डिक्लाइनिंग' और 'सिंकिंग' दृष्टिकोण की संज्ञा देते हैं। अब तो कुछ पत्र हिन्दू धर्म के राक्षसीकरण– 'डेमोनाइजिग हिन्दूइज्म' की भी बात कर रहे हैं। अभी कुछ दिन पहले दिल्ली और मुम्बई से प्रकाशित एक प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र ने 'खोखला हिन्दूधर्म'– 'हैलो हिन्दूइज्म' शीर्षक से एक अग्रलेख भी छापा था।

इतिहास को तोड़ने की कोशिशों के साथ हिन्दू विरोधी लॉबियों ने बिना शर्म के सुनियोजित रूप से शिक्षा के क्षेत्र में हिन्दू प्रभाव की बातों को निकाल बाहर करने की कोशिश की है। इतिहास नये सिरे से लिखने की कोशिश की गई है। संस्कृत को मृत और इसके साहित्य को 'ब्राह्मणवाद और पोंगापंथियों के शब्दजालों का पुलिन्दा' कहा गया है। दोहरे मानदण्डों की बात तो यह है कि दिन-रात अंग्रेजी पत्र जातीय दुर्भाव, क्षेत्रीय असन्तुलन, दलित-प्रतारण, सवर्णों की हिंसक प्रकृति, शोषण आदि की बात तो करते हैं पर यही बात जब विकसित देशों में होती है तब चुप्पी साध लेते हैं। अमेरिका की बन्दूक-संस्कृति के अनेक उदाहरण, जर्मनी में एक तुर्की श्रमिक को जीवित जला देना, फ्रांस और बेल्जियम में यहूदियों के पूजास्थानों को जलाना, न्यूयार्क से लेकर डेट्रायट तक बार-बार अफ्रीकी मूल के अश्वेतों के संघर्षों के नये-नये विस्फोट, रंग-भेद पर आधारित जातीय अपशब्दों की बौछारों और जातीय घृणा से उभरे दंगों की प्रतिक्रिया के रूप में 'काली शक्ति' का उदय, हाल में अमेरिका में इस्लाम पंथानुयाइयों पर शक करना– इस अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य के भारतीय पाठकों के समक्ष छिटपुट समाचार भी इस तरह छपते हैं कि जैसे हमारे अंग्रेजी पत्र कुछ संकोच दिखा रहे हैं। भारत में ईसाई पंथ पर दबावों को तो हमारे मीडिया ने दुनिया भर में इस तरह उछाला जैसे हजारों ईसाइयों का बहुसंख्यकों ने नरसंहार करने की ठान ली है जब कि यह वस्तुतः प्रलोभन पर आधारित मतान्तरण पर विरोध था जिसके लिए हमें अपराध बोध होना आवश्यक नहीं हैं। पर दूसरी ओर इन्डोनेशिया के पूर्वी टीमोर और दूसरे स्थानों में जहाँ पिछले कुछ वर्षों में हजारों ईसाइयों की दंगों में मौत हो चुकी थी, चर्च जलाये जा रहे थे उनके ऊपर कोई टिप्पणी, कोई गम्भीर चिन्ता कोई प्रचार अभियान या मानव अधिकार हनन, या नरसंहार-जेनोसाइड- आदि शब्दों का प्रयोग करने में उन्हें कदाचित कोई झिझक थी। हाँ, जब सी.एन.एन., बी.बी.सी. आदि भारतीय जनता पार्टी को लगातार हर बुलेटिन में 'हिन्दू' पार्टी, धर्मान्ध पार्टी कह कर परिभाषित करती है तब उसकी नकल हमारे पत्र भी बेझिझक कर लेते हैं।

अलगाववाद का मूल

यदि देश अस्थिरता से अराजकता की ओर मुड़ रहा है तब इसका श्रेय अंग्रेजी पत्रों के एक बड़े वर्ग को ही मिलेगा। इतिहास साक्षी है कि जब भी हिन्दू समाज किसी क्षेत्र में कमजोर हुआ या वे अल्पसंख्यक बन गये वहाँ पंथनिरपेक्षता का मुखौटा कुछ ही क्षणों में निकाल फेंका जाता है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बंगलादेश इसके उदाहरण हैं। आज भी जहाँ-जहाँ संख्या में हिन्दू कम हुए वहाँ अलगावाद की जड़ें मजबूत हुई है। कम्युनिस्ट या तथाकथित प्रगतिशील पत्रों की शब्दावली इस तथ्य को छिपा नहीं सकती। यदि इस देश के इतिहास, संस्कृति और जनमानस से हिन्दुत्व की बात पृथक की गई तब भारत में क्या बचेगा ? आधुनिकता और पंथनिरपेक्षता के आवरण विकसित पश्चिमी देश अपने ईसाई विश्वासों का सरकारीकरण करने में नहीं झिझकते हैं। चाहे वे राष्ट्रपति के अमेरिकी चुनाव हों जहाँ विभिन्न ईसाई सम्प्रदाय अलग-अलग उम्मीदवारों का समर्थन करते हैं, या 'क्रिश्चियन डेमोक्रेट' या इसी तरह के अनेकों दल हैं या चर्चों की गतिविधियों के लिये सरकारी विभाग हों– वे किस अर्थ में सेकुलर हो गये ? पर भारत के ८५ प्रतिशत हिन्दुओं को अपने ही देश में अपनी आस्था पर थूकने के लिये अंग्रेजी समाचार लगातार दबाव डाल रहे हैं।

एनी बेसेन्ट ने कहा था कि हिन्दू धर्म के बिना भारत पूरी तरह अप्रासंगिक होगा। पंथनिरपेक्षता की राजनीति ने

हमारे समाज का अन्दर-अन्दर सत्यानाश उसी तरह किया है जैसे समाजवाद की बात ने हमारी अर्थनीति का और इस उद्देश्य को पाने में सबसे मुखर है अंग्रेजी पत्रों का एक वर्ग।

समस्याओं की जड़

आज की समस्यायें धर्म और राजनीति के सम्बंधों की गलत व्याख्या से तो पैदा हुई हैं पर दो टूक शब्दों में कहा जाये तो राजनीतिज्ञों और मीडिया के एक बड़े वर्ग की अनुत्तरदायी और जहरबुझी भूमिका भी उसके कारण हैं। इसके लिए साक्ष्यों की खोज नहीं, इन्हें हम हर दिन अपने चारों और देख सकते हैं। सच्चा धर्म साम्प्रदायिक नहीं होता है, न ही अमानवीय बनाता है- अपने चारों ओर बढ़ते आतंकवाद को देखते हुए यह सब बातें थोथी और रूमानी लगती हैं। यथार्थ इताना कटु है कि बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता के दुष्परिणामों को व्याख्यायित करने वालों की जमात के भाषण बचकाने लगने लगे हैं। अल्पसंख्यकों की कट्टरता जब सर्वभक्षी बनकर जीवन मूल्यों, सद्भावों और समूची सभ्यता को निगलने की कोशिश व अलगाव पैदा करे फिर भी यदि राजनीतिज्ञ इसे राजनीतिक एजेन्डा के तहत ही देखें और सही-गलत का विवेक खो बैठें तो इस छल एवं पाखण्ड से लड़ने के लिए विकल्प सीमित हो जाते हैं।

वैचारिक अकाल

हमारे देश का इतिहास साक्षी है कि हिन्दू कोई सम्प्रदाय नहीं, संगठित पंथ भी नहीं, मात्र एक विशिष्ट जीवन शैली है। अलग-अलग उपासना-पद्धतियों वाले कई समूह जिनमें आस्तिक भी हैं, नास्तिक भी, बौद्ध, जैन, आर्यसमाजी, शैव, वैष्णव और दूसरे अनेक मतों को मानने वाले सदियों से अपने को हिन्दू कहते हैं। यहाँ तक कि मार्क्स और लेनिन भी इस उप महाद्वीप के वासियों को समग्र रूप से हिन्दू ही कहते थे। वह जीवन-दर्शन किसी एक उपासना पद्धति से बंधा नहीं था। ग्रीक भाषा में 'हिन्दुश' का उच्चारण 'इंडस' होने से योरोपीय देशों ने हमें 'इण्डियन' नाम से पुकारा। अरब देश वाले भी यहाँ के रहने वालों को 'हिन्दु' तथा देश को 'हिन्द' कहते थे। अभी भी महाद्वीप के उत्तर-पश्चिम के सुदूर पहाड़ों का नाम 'हिन्दूकुश' है। अरबी भाषा में आज भी गिनती के अंकों को 'हिन्दसा' कहते हैं। साफ है कि इस देश के निवासियों को शुरू से हिन्दू कहा जाता था जो किसी एक सम्प्रदाय को इंगित नहीं करता था। हिन्दू शब्द में एक भूसांस्कृतिक अवधारणा छिपी थी। हिन्द महासागर, इंडोनेशिया या हिन्द-चीन शब्द आज के नहीं है। इतिहास के इन बिखरे तथ्यों को आज के छिछले राजनीतिज्ञ नकार नहीं सकते हैं- वे सिर्फ 'हिन्दुत्व' शब्द, जो एक भाववाचक संज्ञा है उसको संकीर्ण दायरे में प्रचारित कर उस पर अपशब्दों की बौछार कर सकते हैं। अपनी पहचान, अपनी जड़ों और अपने इतिहास से जैसे उन्हें कुछ लेना-देना नहीं है। आज हम स्वयं कितना ही कहें कि हमारी संस्कृति समन्वयवादी है पर क्या दूसरे धर्म वाले स्वयं इस को स्वीकार कर रहे है। लगता है वे एक अजीब प्रतिस्पर्द्धा में लगे हैं जहाँ लक्ष्य हो जाता है भयादोहन और वोट बैंक पर नई नजरें। बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिता के नाम पर देश पर छाये सारे खतरों की खोज जारी है।

यह एक वैचारिक अकाल से कम नहीं क्योंकि देश में अपने सही स्वरूप व राष्ट्रीय चरित्र की पहचान के प्रयत्नों पर यह एक अविश्वसनीय और दुस्साहस से भरा दुराग्रह है। क्या इसे चुनौती देने के लिये हमारे पास मनोबल है ? □

सांविधानिक प्रावधान और पंथनिरपेक्षता

(पृष्ठ ४२ का शेष)

"वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करना"। यदि नागरिक इस कर्त्तव्य का पालन करें तो समाज को मजहब के मूलवाद, कट्टरतावाद और अज्ञानवाद से बाहर निकालने में सफलता मिल सकती है।

विडम्बना यह है कि जो लोग ४२वें संशोधन द्वारा संविधान की उद्देशिका में पंथनिरपेक्षता या 'सेक्युलर' शब्द को स्थान देने से गद्गद् हैं, उनमें से बहुत से लोग उसी ४२वें संशोधन द्वारा प्रतिपादित इस मूल कर्त्तव्य की ओर पूर्णतः उदासीन रहते हैं। □

– प्रोफेसर, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सन्दर्भ :

१. केशवानन्द भारती, विपक्षी केरल राज्य ए.आई.आर, १९७३, एस.सी., १६४१।
२. डॉ. महीप सिंह, धर्म, धार्मिकता और धर्म-निरपेक्षता, दैनिक जागरण, लखनऊ, १७-२-२०००।
३. सेक्रेटरी आई. एंड बी. विपक्षी क्रिकेट एसोसिएशन (१९९५) २ एस.सी., १६१।
४. एन.सी.ई.आर.टी. नाम से विख्यात वाद (ए.आई.आर., २००२, एस.सी., ३१७६)।
५. ए.आई.आर., १९९५, एस.सी., २९३।
६. ए.आई.आर., २००३, एस.सी. ३५५।
७. मुहम्मद अहमद खान विपक्षी शाहबानो बेगम, ए.आई.आर., १९८५, एस.सी., ९४५; सरला मुद्गल विपक्षी भारत संघ, ए.आई.आर., १९९५, एस.सी. १५३१।

छद्म पंथनिरपेक्षता की आड़ में

पंत सरकार द्वारा राम लीला शोभा यात्रा पर प्रतिबंध

□ शिव कुमार गोयल

कांग्रेस तथा गांधी जी द्वारा तुर्की के खलीफा के समर्थन में मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन का समर्थन इस लालच में किया गया था कि मुसलमान इसके बदले में स्वाधीनता के आन्दोलन में अपना योगदान करेंगे। किन्तु खिलाफत के समर्थन ने मुस्लिम कट्टरवाद को बढ़ावा दिया तथा आगे चलकर मलाबार (केरल) के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मोपलों द्वारा हिन्दुओं पर भीषण अत्याचारों, उनकी हत्याओं तथा मतान्तरण के रूप में उसके दुष्परिणाम सामने आने लगे।

देश में कई स्थानों पर मजहबी उन्माद में डूबे मुस्लिम गुण्डों ने हिन्दुओं पर अमानवीय अत्याचार ढाया। जगह-जगह उन्हें मतान्तरण के लिए बाध्य किया गया। इसके बावजूद गांधी जी तथा कांग्रेस मुस्लिमों को प्रसन्न करने के लिए उनके समक्ष आत्मसमर्पण की घातक नीति अपनाते रहे।

तथाकथित घातक समझौते

सन् १९२३ में दिल्ली में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में हिन्दू-मुस्लिम समझौते के नाम पर इंडियन नेशनल पैक्ट बनाया गया। इसमें **'कौमी इत्तहाद'** को हासिल करने के नाम पर मुसलमानों को ईद पर गाय की कुर्बानी देने की छूट देने को कहा गया तथा हिन्दुओं से कहा गया कि वे सड़कों पर मस्जिदों के सामने बाजा बजाकर मुसलमानों की भावनाओं पर आघात न पहुँचाएं।

दिसम्बर १९२३ में कांग्रेस के नेता सी.आर. दास ने **'हिन्दू-मुस्लिम महामदा'** नाम से एक पैक्ट तैयार किया जिसमें लिखा गया : **''मजहबी कुर्बानियों के लिए गऊकशी में हस्तक्षेप न किया जाए।''** साथ ही उसमें एक बात और बढ़ा दी गई कि **'कौंसिलों में खुराक के निमित्त गऊ के काटने पर पाबन्दी न लगाई जाए'**। बाजे के सम्बन्ध में कहा गया कि **''मजहबी रवादारी स्थिर रखने के लिए मस्जिद के सामने जुलूस वा बाजा न बजाया जाए।''**

उक्त दोनों समझौते जब काकिनाडा कांग्रेस के सामने आए तो श्री मदनमोहन मालवीय जी तथा श्याम सुन्दर चक्रवर्ती ने इन्हें हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं पर आघात बताने वाला बताकर उनका विरोध किया।

कांग्रेस 'हिन्दू-मुस्लिम समता की मृगमरीचिका' में फंसकर हिन्दुओं से खिलवाड़ करती रही। इसका कुपरिणाम यह निकला कि जब प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने तो उन्होंने गोहत्या तथा बाजा बजाने के प्रश्न पर मुसलमानों को ही तुष्ट करने के प्रयास जारी रखे।

रामलीला जुलूस पर रोक

सन् १९४६ की बात है। दशहरा पर्व के दौरान तीर्थराज प्रयाग के झूंसी क्षेत्र में पहले की तरह रामलीला का जुलूस निकालने की तैयारी शुरू हुई। दशहरा के एक सप्ताह पूर्व रामलीला के पात्रों को शोभायात्रा के रूप में रामलीला स्थल तक ले जाने की पुरानी परम्परा थी। रामलीला में सम्मिलित होने वाली झाँकियों को झूंसी के प्रशासन ने यह कहकर रोक दिया कि रास्ते में कुछ मुसलमानों के घर पड़ते हैं। उनकी भावनाओं पर आघात लगेगा।

उन दिनों उत्तर प्रदेश को संयुक्त प्रान्त कहा जाता था तथा उसके कांग्रेसी शासन के मुख्यमंत्री (उस समय प्रधानमंत्री) गोविन्द बल्लभ पंत व गृहमंत्री रफी अहमद किदवई थे।

रामलीला की चौकी (शोभा यात्रा) रोक देने से झूंसी व प्रयाग क्षेत्र में रामभक्त हिन्दुओं में रोष व्याप्त हो गया। दशहरे के दिन भी शोभायात्रा नहीं निकलने दी गई तब जाने-माने विख्यात **संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी** ने, जो स्वयं स्वाधीनता सेनानी के नाते मोतीलाल नेहरू व जवाहरलाल नेहरू आदि के साथ जेल में रह चुके थे, ने वहाँ जाकर कहा– **''प्रदेश में अपनी ही कांग्रेस की सरकार है, उसकी आज्ञा भंग करके उसे संकट में मत डालो। चौकियों के समीप शांतिपूर्वक भगवन्नाम संकीर्तन शुरू कर दो। प्रशासन को बुद्धि आएगी तथा वह प्रतिबंध हटा लेगा।''**

पूज्य ब्रह्मचारी जी गिरफ्तार

रामभक्तों ने भगवन्नाम संकीर्तन शुरू कर दिया। दशहरा तो मना ही नहीं - संकीर्तन चतुर्दशी तक चलता रहा। गृहमंत्री रफी अहमद किदवई लखनऊ से प्रयाग आए। उसी दिन प्रशासन ने संकीर्तन कर रहे ११ रामभक्तों को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया।

चतुर्दशी की रात को संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी की कुटिया को घेर कर उन्हें भी पकड़ कर जेल भेज दिया गया। ब्रह्मचारी जी महाराज ने लिखा **"मुझ मौनी साधु को कांग्रेसी सरकार ने क्यों गिरफ्तार किया, इसका उत्तर कौन दे ? कौन पूछे ? कौंसिलों में कोई हिन्दू हो तो वह पूछे भी। हिन्दुओं के मतों से जो कौसिलों में आए हैं वे तो अपने को हिन्दू कहते नहीं। वे तो राष्ट्रीय नेता हैं। उनके लिए हिन्दू-मुसलमान दोनों एक से हैं। नहीं-नहीं, मुसलमान उनके लिए माननीय हैं, पूजनीय हैं, आदरणीय हैं क्योंकि वे छुरी भोंकना जानते हैं। संगठित होकर हमला कर सकते हैं। गांधी जी को गाली दे सकते हैं। वे संख्या में कम होने पर भी, कांग्रेस में हिन्दुओं से कहीं अधिक अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। कांग्रेसी भला मुसलमानों को खुश रखने के लिए क्या-क्या नहीं कर सकते ?"**

ब्रह्मचारी जी की व्यथा

संत प्रभुदत्त जी अपने मन की व्यथा व्यक्त करने हुए 'मेरे महामना मालवीय जी' पुस्तक में आगे लिखते हैं : **"मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि कोई मुझे भी गिरफ्तार कर सकता है और फिर कांग्रेसी सरकार जो रामराज्य का दम भरती है और ऐसा मंत्रिमंडल जिसके अधिकांश मंत्री मेरे सहयोगी, जेल के साथी तथा अपने हों। किन्तु मेरा यह सब भ्रम सिद्ध हुआ। चतुर्दशी की रात्रि मैंने प्रयाग की मलाका जेल की कोठरी में बिताई।"**

ब्रह्मचारी जी महाराज को कई दिनों तक जेल में रखा गया। उन दिनों मुख्यमंत्री को प्रधानमंत्री कहा जाता था। पंडित गोविन्द वल्लभ पंत तीन दिन प्रयाग में रहे। उन्हें इस काण्ड की सूचना दी गई, किन्तु उन्होंने मुस्लिम पोषक नीति से इंच भर भी हटने का साहस नहीं दिखाया।

पहली बार २५ दिन तक भगवान श्री राम परिवार की सवारी झूंसी में यों ही खड़ी रही तथा पूज्य ब्रह्मचारी जी जेल में बन्द रहे।

एक दिन कल्याण के सम्पादक **भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार जी** तथा **संत बाबा राघवदास जी** अचानक जेल में पहुँचकर **संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी** से मिले। उन्होंने बताया कि **महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी महाराज** ने आपकी रिहाई के लिए पंत जी को पत्र लिखा है। महामना को आपकी गिरफ्तारी से बहुत दुख है। तब जाकर ब्रह्मचारी जी को जेल से रिहा किया गया तथा रामलीला की चौकी दशहरा से ३५ दिन बाद निकाली गई।

उपर्युक्त घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश के स्वाधीन होते ही कांग्रेस ने छद्म पंथनिरपेक्षता के नाम पर हिन्दुओं के पावन आयोजनों में बाधा डालनी शुरू कर दी थी। □

विकृत पंथनिरपेक्षता का यह एक रूप

कांग्रेस तथा उसके नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की मृगमरीचिका में फंसकर देववाणी संस्कृत तथा हिन्दी की जगह अरबी भाषा के शब्दों को जोड़कर एक नई हिन्दुस्तानी भाषा का निर्माण किया।

वर्धा शिक्षा के ऐतिहासिक पाठ्यक्रम में 'छद्म पंथनिरपेक्षता के नाम पर मुहम्मद, ईसा, जरस्थु, मूसा, इब्राहीम, अकबर आदि के नाम तो लिए गए किन्तु राम, कृष्ण, शंकराचार्य, महावीर, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आदि विभूतियों की चर्चा की आवश्यकता नहीं समझी गई। इसमें ताजमहल, फतेहपुरसीकरी, कुतुबमीनार का वर्णन है किन्तु मथुरा, रामेश्वरम्, अजन्ता, एलोरा का नाम तक नहीं लिया गया।

वर्धा शिक्षा के पाठ्यक्रम की एक पुस्तक में लिखा गया : बादशाह दशरथ के चार फरजन्द थे, शहजादा राम बड़े फरजंद थे। उनका विवाह बेगम सीता के साथ किया गया। मौलवी वाल्मीकि ने लव-कुश को पढ़ाया।

इतना ही नहीं, हिन्दू-मुस्लिम एकता के इस अनूठे प्रयोग में हिन्दूस्तानी भाषा के नाम पर हिन्दी के प्राचीन रूप को विकृत करने के लिए 'इ' को 'अि' 'उ' को 'अु' जैसे अजीबोगरीब प्रयोग किए गए। 'हिन्दुस्तानी' भाषा के नाम पर हिन्दी भाषा को विकृत करने के इस षड्यन्त्र का महाकवि निराला जी, तथा अन्य साहित्कारों ने बड़ा विरोध किया था।

महाकवि स्वामी रामचन्द्र वीर महाराज ने तो तभी लिखा था :

हिन्दी को मरोड़, अरबी के शब्द जोड़-जोड़,
हिन्दुस्तानी की जब खिचड़ी पकाएँगे
हंस से उतारकर वीणा पाणि शारदा को,
मुरगे की पीठ पर खींचकर बिठाएँगे।।
'बादशाह दशरथ 'शाहजादा राम' कह
मौलवी वशिष्ठ वाल्मीकि को बताएँगे।
देवी जानकी को 'वीर' बेगम कहेंगे जब,
तुलसी से संत यहाँ कैसे फिर आएँगे।।

महाकवि निरालाजी ही नहीं, महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी उस समय 'हिन्दुस्तानी' की आड़ में हिन्दी को विकृत न करने की चेतावनी दी थी। □

जम्मू-कश्मीर राज्य का पुनर्गठन और सेकुलरवाद

□ **बलराज मधोक**

संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में मान्य और प्रचलित सेकुलरवाद के तीन सर्वमान्य तकाजे अथवा लक्षण हैं। पहला है राज्य द्वारा अपने नागरिकों के बीच मजहब अथवा पंक्ष या पूजा-विधि के आधार पर भेदभाव न करना, दूसरा है सारे नागरिकों के लिए समान कानूनों की व्यवस्था और तीसरा है कानून के सामने सभी नागरिकों को बराबर मानना।

अक्टूबर, १९४७ में महाराजा हरिसिंह द्वारा अपने राज्य के खंडित हिन्दुस्तान में विलय के पूर्व वह राज्य इन लक्षणों के आधार पर पूरी तरह सेकुलर राज्य था। उस राज्य में नागरिकों के साथ उनके मजहब के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जाता था। सारे राज्य पर श्री रणवीर दंड विधि लागू थी और सारे कानून उसके आधार पर बनाए जाते और लागू किये जाते थे। जम्मू-कश्मीर के सभी नागरिक भले ही शैव, वैष्णव, बौद्ध, सिख, सनातनी अथवा आर्य समाजी हों या सुन्नी अथवा शिया मुसलमान हों उन पर यह कानून समान रूप में लागू होते थे। अगस्त, १९४७ में देश के विभाजन के समय पंजाब, सीमा-प्रांत, सिन्ध और पूर्वी बंगाल में साम्प्रदायिक मार-काट से जम्मू-कश्मीर राज्य सर्वथा अछूता रहा।

सारे जम्मू-कश्मीर राज्य में मुसलमानों का बहुमत था। परन्तु इसका पूर्वी भाग जो खण्डित हिन्दुस्तान के साथ लगता था और जिसमें लद्दाख और जम्मू क्षेत्र शामिल था, में बौद्ध और हिन्दू बहुमत था।

सेकुलर राज्य के अंत की शुरुआत

इस राज्य का खण्डित हिन्दुस्तान में विलय स्वीकार करते ही तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की थी कि जम्मू-कश्मीर राज्य हिन्दुस्तान के सेकुलर देश होने का ज्वलन्त प्रमाण और दृष्टान्त है। परन्तु दुर्भाग्य से वे स्वयं सही अर्थ में सेकुलर नहीं थे। उन्हें हिन्दुस्तान के हितों की अपेक्षा शेख अब्दुल्ला और उसके मुस्लिम अनुयायियों की अधिक चिन्ता थी। इसीलिए उन्होंने जम्मू-कश्मीर को सारे देश के गृह और देशी रियासतों के मन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा था। शेख अब्दुल्ला स्वयं एक साम्प्रदायिक व्यक्ति था। उसे डर था कि सरदार पटेल के अधिकार क्षेत्र में आने के बाद वह राज्य में अपनी साम्प्रदायिक नीतियाँ नहीं चला पायेगा। इसी कारण विलय के बाद सारे जम्मू-कश्मीर राज्य का प्रशासन उसके हाथ में देना उस राज्य में सेकुलरवाद के अन्त की शुरुआत सिद्ध हुआ।

कटु वास्तविकता

सत्ता में आते ही उसने सर्वप्रथम कश्मीर घाटी में पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी और सीमा प्रान्त के पेशवार क्षेत्र से आये हुए हजारों हिन्दू विस्थापितों को निकालना शुरू किया। उसका अगला निशाना रियासत के मुजफ्फराबाद क्षेत्र से पाकिस्तानी आक्रान्ताओं द्वारा खदेड़े गये हिन्दू शरणार्थियों को घाटी से निकालना था। उसके बाद उसने वहाँ के मूल हिन्दू निवासियों–कश्मीरी पण्डितों और सदियों से वहाँ बसे हुए केशधारी और सहजधारी पंजाबी हिन्दुओं और डोगरा हिन्दुओं को घाटी से खदेड़ना शुरू किया। इस प्रकार उसने कश्मीर घाटी से सारे हिन्दुओं को निकालने और पाकिस्तान की तरह उसका पूरा इस्लामीकरण करने की प्रक्रिया शुरू की। यह अब तथाकथित सेकुलर कश्मीर की कटु वास्तविकता बन चुकी है।

कश्मीर घाटी के इस्लामीकरण की प्रक्रिया शुरू करने के बाद उसने यही प्रक्रिया लद्दाख और जम्मू में शुरू की। १९४९ की युद्धबन्दी के बाद उसने बौद्ध लद्दाख के जनसकार क्षेत्र को लद्दाख से काटकर भारत में रह गये बल्ली भाषी मुस्लिम बहुल क्षेत्र, जिसमें द्रास और करगिल शामिल हैं, के साथ मिलाकर पहले लद्दाख को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटा और फिर ९० प्रतिशत बौद्ध जनसंख्या वाले लद्दाख का इस्लामीकरण शुरू किया। इसी उद्देश्य से उसने जम्मू के ऊधमपुर जिला के मुस्लिम बहुल डोडा भाग को काट कर अलग डोडा जिला बनाया और वहाँ से हिन्दुओं को निकालने की प्रक्रिया शुरू की।

इस्लामी राज्य बनाने की कुचेष्टा

श्री नेहरू पर दबाव डालकर जम्मू-कश्मीर राज्य को साम्प्रदायिक आधार पर विशेष दर्जा देने हेतु भारत के संविधान में धारा ३७० को जोड़ना जम्मू-कश्मीर राज्य को सेकुलर राज्य के स्थान पर साम्प्रदायिक इस्लामी राज्य बनाने की उसकी योजना को कार्य रूप देने का सबसे प्रभावी अस्त्र सिद्ध हुआ है। राष्ट्रवादी डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान में इस अनुच्छेद ३७० को डालने का विरोध किया। परन्तु नेहरू के

(शेष पृष्ठ ९८ पर)

पंथनिरपेक्षता का मुसलमानों द्वारा विरोध क्यों ?

□ हमीद दलवई

राजनीतिक और सामाजिक जीवन में से मज़हबी मान्यताओं को अलग रखना पंथनिरपेक्षता का अर्थ है। व्यक्ति और समाज से संबंधित आधुनिक दृष्टिकोण भी सभी तरह के राजनीतिक और सामाजिक क्रियाकलापों, पंथनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाने पर बल देता है। यह मत-पथ का उंच्चाटन करने का समर्थन नहीं करता अपितु इस बात का आग्रह करता है कि मत-पंथ की अवधारणा व्यक्तिगत श्रद्धा और आस्था का विषय है। आज के आधुनिक पंथनिरपेक्ष समाज के नैतिक जीवन-मूल्य वे पंथनिरपेक्ष जीवन-मूल्य हैं जो तर्क और विवेक पर आधारित हैं। विभिन्न मत-पंथों में आधुनिक युग के मूलभूत मानवीय अधिकार समाहित भी हो सकते हैं और नहीं भी। आधुनिकता से परिपूर्ण मानव अपनी सामाजिक चेतना को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने के लिए मजहब का सहारा नहीं लेता। हमारी सामाजिक चेतना तो हमारे द्वारा स्वीकृत और अपनायी गई लोकतांत्रिक शासन की व्यवस्था में अन्तर्निहित है। यह लोकतांत्रिक नैतिकता उदारवादी है और इसलिए वह बहुलवादी भी है। अतः लोकतन्त्र के लिए सही अर्थों में लोकतंत्रवादी बनने हेतु यह आवश्यक है कि वह अपने-आपको मत-पंथ संबंधी मान्यताओं से पूरी तरह अलग रखकर पंथनिरपेक्ष हो। एक लोकतांत्रिक समाज में सभी व्यक्तियों और समुदायों के लिए आधारभूत लोकतांत्रिक और नैतिक मान्यताओं पर निष्ठा रखना अनिवार्य है।

गलत वर्गीकरण

अनेक बार हम मजहब पर आधारित सामाजिक आचार-व्यवहार और मानवीय अधिकारों में अपरिहार्य संघर्ष होता हुआ देखते हैं। ऐसी परिस्थिति में एक आधुनिक लोकतंत्रवादी होते हुए हमारे सम्मुख एकमात्र विकल्प यही होता है कि हम लोकतंत्र के मार्ग में बाधक बनने वाले कतिपय मजहबी आचार-व्यवहारों को दूर हटा दें। अपने देश भारतवर्ष में मुसलमानों को अल्पसंख्यक और हिन्दुओं को बहुसंख्यक बताया जाना पंथ-निरपेक्षता संबंधी मान्यता के पूरी तरह विपरीत है। पंथनिरपेक्षता के आधार पर व्यक्तियों का समुचित वर्गीकरण वर्ग के आधार पर होगा, मजहब के आधार पर नहीं। उदाहरणार्थ श्रमिक-वर्ग का नेता पंथनिरपेक्ष व्यक्ति कहा जाएगा; इसके विपरीत अपने-आपको हिन्दू या मुसलमान का नेता बताने वाला पंथनिरपेक्ष नहीं कहा जाएगा।

अभाव

यद्यपि पंथनिरपेक्षता की अवधारणा भारत में उसके संविधान में दी गई है, फिर भी अभी भी यह एक अभिलाषा अथवा आकांक्षा मात्र है। उसने अभी तक हमारे सामाजिक जीवन को व्याप्त नहीं किया है। वस्तुतः वर्तमान समय में तो यह अवधारणा संकटपूर्ण स्थिति में है। यद्यपि हिन्दुओं में आज भी साम्प्रदायिक तत्त्व विद्यमान हैं, किन्तु उनमें उदारवादी और पंथनिरपेक्षतावादी प्रभावशाली व्यक्ति भी उल्लेखनीय संख्या में हैं। दूसरी ओर भारतीय मुसलमानों में ऐसे उदारवादी पंथनिरपेक्षतावादी व्यक्तियों का पूरी तरह अभाव है जो कि अपने सहमतावलम्बियों को लोकतांत्रिक उदारवाद के मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सकते।.... यदि मुसलमानों को वस्तुतः पंथनिरपेक्ष और एकीकृत भारतीय समाज के साथ एकरूप होना है तो उसके लिए उनके मध्य उदारवादी मुसलमानों का एक वर्ग होना अपरिहार्य है जिससे वे सतत रूप से साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों और मजहबी कट्टरतापन के विरुद्ध खड़े होकर उस पर लगाम लगा सके। ऐसे उदारवादी मुसलमान हिन्दू उदारवादियों और अन्य पंथनिरपेक्षतावादियों के साथ मिलकर सही अर्थों में अपने देश को आधुनिक भारतीय उदारमना वर्ग बनाने में सफल हो सकेंगे।

हिन्दुओं में उदार विशिष्ट वर्ग

प्रत्येक समाज में उदारमना बुद्धिजीवी एक सुदीर्घ और जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया के द्वारा अस्तित्व में आते हैं। आज हिन्दू समाज में एक प्रभावशाली उदारमना विशिष्टवर्ग विद्यमान है क्योंकि हिन्दुत्व ऐतिहासिक रूप से बहुलवादी है और उसमें मतभिन्नता के साथ समायोजन करने की क्षमता भी है। आधुनिक भारतीय उदारवादी परम्परा का आरम्भ राजा राममोहन राय से होता है जो कि हिन्दू समाज की ही देन हैं।

हिन्दू उदारवादियों ने अपने समाज की रूढ़िवादिता पर सदैव प्रहार किए हैं। और उनके द्वारा अपने सामाजिक परिवेश का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने और सामाजिक सुधारों के लिए नेतृत्व प्रदान करने से सम्पूर्ण हिन्दू समाज का पर्याप्त मात्रा में भला हुआ है। मेरे यह सब कहने का आशय यह

कदापि नहीं है कि हिन्दू समाज ने उदारवादियों द्वारा प्रचारित आचार-व्यवहार को स्वीकार करके अपने-आपको पूर्णरूप से आधुनिक बना लिया है। लेकिन हिन्दू समाज में उदारवाद की इस सतत परम्परा ने भारत के मुसलमानों की तुलना में उन्हें सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक सुखद स्थिति प्रदान की है।

भ्रामक सोच

भारत में मुसलमान क्यों इस उदारवादी विशिष्टवर्ग से वंचित रहे हैं ? इस प्रश्न के उत्तर संबंधी अनेक पहलू हैं। किन्तु एक बात सुनिश्चित है। मुसलमानों के पिछड़ेपन का एक सर्वप्रमुख कारण मुस्लिम मस्तिष्क की मनोरचना है।

भारतीय मुसलमान यह समझते हैं कि वे सामाजिक दृष्टि से एक पूर्ण समाज हैं और भारत के अन्य सभी समाजों से श्रेष्ठ हैं। इस विश्वास और आस्था का एक मुख्य कारण मुसलमान समाज की यह मान्यता है कि इस्लाम ने उन्हें एक परिपूर्ण समाज की रचना उपलब्ध करायी है और इसलिए परिपूर्ण मुसलमान होने के कारण उक्त समाज को अन्य कुछ करने अथवा प्रगति पथ पर बढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक दृष्टिकोण और मान्यताओं की दृष्टि से यह पूर्णतः गलत है।

व्यक्तिगत कानून मानवाधिकार विरोधी

इस्लाम का व्यक्तिगत कानून आधुनिक मानवाधिकारों की मान्यताओं का पूरी तरह उल्लंघन करता है। इसकी खामियाँ मुसलमान समाज के पुरुष वर्ग को छोड़कर सभी के सम्मुख स्फटिक के समान स्पष्ट हैं और इसलिए उनकी व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस विश्वास और आस्था का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि भारतीय मुसलमान अपने अल्पसंख्यक होने की स्थिति से बड़ा बेचैन है और सम्पूर्ण भारत को दारुल हरब से दारुल इस्लाम बनाने का ख्वाब देखता है अथवा कम से कम भारत पर शासन करने को लालायित है। वे अपने तथाकथित गौरवशाली दिनों की याद का रोना रोते हैं और तथाकथित उत्पीड़न-उन्माद से ग्रस्त हैं। मैं भारत के मुस्लिम प्रेस और जमात-ए-इस्लामी तथा मजलिस-ए-मुशव्वरात के नेताओं के वक्तव्यों से ऐसे अनेक उदाहरण दे सकता हूँ। इस विश्वास और आस्था का एक अन्य कारण भारत में देश-विभाजन से पूर्व की राजनीति है। मुसलमानों की सदैव यह मान्यता रही है कि वे राज्य के अन्तर्गत एक अलग राज्य और भारतीय समाज के दायरे में एक अलग समाज हैं। उनकी प्रतिनिधित्व संबंधी माँगें इसी मान्यता पर आधारित रही हैं और इसलिए वे लोकतांत्रिक समाज की अवधारणा के विपरीत व्यवहार करते हैं।

वर्तमान कालखंड में वे भारत के बहुसंख्यत समाज के समानान्तर एक पूर्ण स्वायत्तशासी समाज के रूप में अपना अस्तित्व मानते हैं। उनकी इस धारणा के द्वारा ही मुस्लिम व्यक्तिगत कानून में किसी तरह के संशोधन-परिवर्धन संबंधी विरोध को समझा जा सकता है। लेकिन भारत का मुसलमान समाज तो इससे भी आगे बढ़कर परिवार नियोजन का विरोध इसलिए करता है कि जिससे वह अपनी जनसंख्या बढ़ाकर देश की राजनीति में अपनी प्रभावी भूमिका को अंजाम दे सकें। यह वही घातक और खतरनाक दृष्टिकोण है जिसने पहले पाकिस्तान की माँग की थी और बाद में उसे प्राप्त भी कर लिया है। पाकिस्तान के प्रति उनकी निष्ठा का प्रमाण कश्मीर समस्या और असम सरीखे राज्यों में घुसपैठियों के समर्थन के प्रति अपनाया गया दृष्टिकोण है जो कि उनके पंथनिरपेक्षताविरोधी होने का स्पष्ट प्रमाण है। ये और इन सरीखे अन्य अनेक उदाहरण इस बात के निर्विवाद साक्ष्य हैं कि उन्होंने अपने-आपको शेष भारतीय समाज के साथ समरूप या एकरूप नहीं किया है।

फिरकापरस्त नेतृत्व की विडम्बना

भारतीय मुसलमानों में आज जो नेतृत्व है वह मूलतः पूर्ण रूप से फिरकापरस्त है। **एम.सी. छागला** जैसे उदारवादी मुसलमान के लिए भारत के मुसलमान समाज में कोई स्थान नहीं है और वे एक अपवाद हैं। भारतीय मुसलमानों को आज एक ऐसे सुसंगठित उदारवादी विशिष्ट वर्ग की आवश्यकता है जो उनको नेतृत्व प्रदान कर सही मार्ग पर ले चले। मुसलमानों के इस उदारवादी विशिष्ट वर्ग को आधुनिक भारत के अन्य उदारवादियों के साथ प्रगाढ़ सहयोग करते हुए मुसलमान साम्प्रदायिकता के साथ-साथ हिन्दू साम्प्रदायिकता का विरोध करना चाहिए। जब तक भारत के मुसलमानों में इस प्रकार का उदारवादी बुद्धिजीवी वर्ग अस्तित्व में नहीं आता तब तक भारतीय मुसलमान दकियानूसी रूढ़ियों, मध्यकालीन बुराइयों और घृणित साम्प्रदायिकता से ग्रसित रहेंगे और अन्ततः सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अपनी पहचान खो बैठेंगे। इससे भी बुरी स्थिति यह हो सकती है कि मुसलमान साम्प्रदायिकता के विरुद्ध होने वाली प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिन्दू पुनरुत्थानवादी अपने समाज के उदारवाद को एक किनारे लगा दें। इसका कारण यह है कि हिन्दू उदारवादी अपने समाज में तभी सफल

हो सकते हैं जबकि मुसलमानों का उदारवादी वर्ग अपने समाज के बन्धुओं को पंथनिरपेक्ष लोकतांत्रिक आदर्शों के प्रति आस्थावान बनाकर उन्हें आधुनिकता में दीक्षित करते हुए उनके साथ सहयोग करे।

एकमात्र उपाय

मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुसलमानों का जागरूक उदार और बुद्धिजीवी नेतृत्व ही मुस्लिम साम्प्रदायिकता का सामना करने का एकमात्र कारगर उपाय है। यह नेतृत्व मुसलमान समाज से ही विकसित होगा और उसे अपनी विश्वसनीयता बनाए रखकर अपने समाज-बन्धुओं को समझा-बुझाकर पंथनिरपेक्षता के मार्ग पर लाना होगा। इस उदारवादी नेतृत्व का पहला काम भारतीय मुसलमान समाज के ऊपर छाए हुए साम्प्रदायिक और दकियानूसी नेतृत्व को समाप्त करने का होगा। **जमात-ए-इस्लामी, मजलिस-ए-मुशव्वरात और तामीर-ए-मिल्लत** जैसे संगठनों का प्रभाव और पकड़ समाप्त करनी होगी। तथाकथित 'राष्ट्रवादी' मुसलमानों का पर्दाफाश करना होगा क्योंकि मूलतः वे फिरकापरस्त हैं। इसके साथ ही राजनीतिक दलों के मुसलमान नेताओं की कारगुजारियों का भी पर्दाफाश करना होगा क्योंकि वे निर्विवाद रूप से साम्प्रदायिक या फिरकापरस्त हैं। उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल के मुहम्मद इलियास जैसे कम्युनिस्ट नेता इसी वर्ग में आते हैं। मज़हब के नाम पर उलेमाओं द्वारा राष्ट्र-विरोधी विचारों के कुप्रचार पर रोक लगानी होगी। फिरकापरस्त मुस्लिम समाचार-पत्रों को निष्प्रभावी बनाना पड़ेगा। संक्षेप में, सभी तरह के व्यापक साम्प्रदायिक प्रभाव को पूरी तरह व्यर्थ बनाना पड़ेगा।

देश में कतिपय ऐसे मुसलमान मौजूद हैं जो कि भारतीय विशिष्ट जन के वर्ग में आते हैं, किन्तु वे आधुनिकता के प्रति अपने समाज के दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया से भयभीत हैं। ऐसे ढोंगी और पाखण्डी उदारवादी केवल हमारे लिए निरुपयोगी ही नहीं हैं अपितु वे भारतीय मुसलमानों की प्रगति के मार्ग में जबर्दस्त रूप से बाधक भी हैं। वे या तो नैतिक रूप से कायर व्यक्ति हैं अथवा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या के प्रति पूरी तरह उदासीन भी हैं। ध्यान रहे, फिरकापरस्ती की यह समस्या भारत के लोकतंत्र की भी सबसे प्रमुख समस्या है। उन्हें अब अपना मार्ग अवश्य तय करना होगा। यदि वे भारतीय मुसलमानों को उदारवादी बौद्धिक नेतृत्व प्रदान नहीं करते तो युवा पीढ़ी को आगे आकर इस जिम्मेदारी को उठाना होगा।

गलत तर्क

प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि मुसलमानों की फिरकापरस्ती हिन्दू साम्प्रदायिकता के विरुद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। लेकिन यह सत्य नहीं है। आज भारत में संघर्ष एक ओर सभी प्रकार के दकियानूसी विचारों, मतान्ध दृष्टिकोणों, पुनरुत्थानवादियों और रूढ़िवादियों का दूसरी ओर आधुनिक उदारवाद के मध्य है। भारतीय राजनेताओं के अदूरदर्शी और अवसरवादी होने से उन्होंने हमेशा फिरकापरस्ती और रूढ़िवादिता का समर्थन किया है और प्रायः उसका विरोध कभी भी नहीं किया है। फलतः समस्त उदारवादियों में अब इस बात पर एक सहमति होनी आवश्यक है कि वे सभी प्रकार की फिरकापरस्ती के विरुद्ध एक सशक्त और गैर-राजनीतिक आन्दोलन को आगे बढ़ायेंगे। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भारत में लोकतंत्र और उदारवाद की बलि चढ़ा दी जायेगी। अतः मसला बहुत ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। बड़े दुःख की बात यह है कि बहुत थोड़े व्यक्ति ही स्थिति की गम्भीरता को समझते हैं। उससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि वे समस्या के वास्तविक स्वरूप और उसकी गहनता को समझने में असमर्थ हैं। □

मुसलमानों में जातिभेद

बहुत कम लोग यह जानते हैं कि इस देश में मुसलमान सदा से तीन वर्गों में विभाजित रहे हैं और मुसलमानों में भी अधिक नहीं तो उतनी ही जातियाँ अवश्य हैं जितनी हिन्दुओं में पाई जाती हैं। विदेश से आने वाले अरब, तुर्क तथा ईरानी आक्रमणकारियों के वंशजों को मुसलमानों में **'अशरफ'** कहा जाता है। यह शब्द शरीफ का बहुवचन है और इसका अर्थ है कुलीन वर्ग, अभिजात्य वर्ग। ब्राह्मण तथा राजपूत इत्यादि उच्च कही जाने वाली जाति के जिन हिन्दुओं को किसी समय मुसलमान बनना पड़ा था उनको **'अजलाफ'** कहा जाता है और निम्न कही जाने वाली जातियों के जो हिन्दू मुसलमान बनाए गए उनको **'अरजाल'** कहा जाता है। यह शब्द 'रज़ील' का बहुवचन है और इसका अर्थ है नीच, कमीना।

नेहरूवादी पंथनिरपेक्षता का घृणित स्वरूप

□ वेद प्रकाश भाटिया

श्रेष्ठ टेलीकाम विशेषज्ञ और आन्ध्र प्रदेश प्रज्ञा भारती के अध्यक्ष **डॉ. टी.एच. चौधरी** ने सी.टी.एम.एस. पब्लिकेशन्स हैदराबाद द्वारा पुस्तक रूप में **'तनावग्रस्त भारत'** शीर्षक से प्रकाशित अपने लेख-संग्रह में लिखा है कि :

"जब मैं भारतीय विद्या भवन का अध्यक्ष था, तब मैंने आन्ध्र और कर्नाटक के दस विद्यालयों के अपने अध्यापक वर्ग का एक तीन दिवसीय शैक्षणिक पाठ्यक्रम आयोजित किया था। उसमें भाग ले रहे शिक्षकों के समक्ष जो प्रश्न सत्र के प्रारम्भ में एक दिन मैंने रखे और उनके जो उत्तर दिए गए, वे इस प्रकार हैं :

प्रश्न : आपके मध्य में क्या कोई शिक्षक ईसाई है ?

उत्तर : कई शिक्षकों ने अपने हाथ उठाकर इसकी पुष्टि की।

प्रश्न : क्या आपको इस बात का गर्व है कि आप ईसाई हैं ?

उत्तर : उन सबने एक स्वर से उत्तर दिया कि उन्हें अपने ईसाई होने पर गर्व है।

प्रश्न : क्या आपके मध्य में कोई मुसलमान भी है ?

उत्तर : फिर कई शिक्षकों ने हाथ ऊपर उठा दिए।

प्रश्न : क्या आपको अपने-आपको इस्लाम का अनुयायी होने का स्वाभिमान है ?

उत्तर : हाँ ! निस्संदेह हमें मुसलमान होने का स्वाभिमान है।

प्रश्न : क्या आपके बीच कोई हिन्दू भी है ?

उत्तर : किसी एक भी शिक्षक या शिक्षिका ने अपना हाथ नहीं उठाया। वे एक-दूसरे को ताक रहे थे।

मैंने पुनः जोर देकर अपना प्रश्न दोहराया। इस पर एक या दो हाथ खड़े हुए।

मैंने कहा कि अपने देश में दिन-रात सेकुलरवाद की रट लगाने और कई दशकों के सेकुलरवादी शासन का यह गंभीर दुष्परिणाम है। हिन्दू अपने-आपको अपने ही देश में हिन्दू कहलाने में शर्म अनुभव करते हैं। हालांकि स्वाधीनता आन्दोलन का उद्देश्य राष्ट्रीय पुनर्जागरण, और भारतीय समाज और उसके प्रत्येक घटक के अन्दर 'धर्म' और 'धार्मिक' आचरण को व्यावहारिक बनाना था। पूर्ण रूप से मजहबी आधार पर राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को मान्यता देकर भारत का विभाजन स्वीकार करते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस देश में सेकुलरिज़्म का उद्घोष किया जाने लगा और वही शासकों का प्रेरक मंत्र बन गया। इससे भी कोई समस्या खड़ी न होती। लेकिन सेकुलरिज़्म का अनुवाद धर्मनिरपेक्षता करने से उसका अर्थ धर्म की अवहेलना या अवज्ञा करना हो गया जिसमें सदाचार, न्यायप्रियता और नैतिक आचरण के लिए कोई स्थान नहीं था। जिस किसी व्यक्ति ने अपने को हिन्दू कहा, उसे साम्प्रदायिक, कट्टरतावादी, मुस्लिम विरोधी आदि घोषित कर दिया गया।

पंथनिरपेक्षता का अर्थ हिन्दू-विरोध और मुसलमानों की माँगों और भावनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता और अंध-समर्थन बताया जाने लगा। अल्पसंख्यक शब्द मुसलमानों का पर्यायवाची बन गया और उसके द्वारा यह दर्शाया जाने लगा कि इस देश के समस्त अहिन्दू निवासी गंभीर संकट में हैं और केवल 'पंथनिरपेक्षता' ही उनका संरक्षण कर सकती है" **(हिन्दुत्व एंड रिलीजस माइनारटीज़, पृ. १७)।**

एक घृणित शब्द

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि अपने-आपको हिन्दू कहने का यह संकोच और उससे भय न खाना नेहरूवादी पंथनिरपेक्षतावाद की विरासत है जिसने कि हिन्दुत्व को एक अपशब्द बना दिया है। यह बात अलग है कि इस प्रक्रिया में पंथनिरपेक्षतावाद स्वयं एक घृणित शब्द बन गया है। यहाँ तक कि इस तथ्य को कुलदीप नैयर जैसे व्यक्ति ने भी अपने एक लेख में स्वीकार किया है।

विचित्र अवधारणा

वस्तुतः पंडित नेहरू इस्लाम के प्रति एक विचित्र प्रकार की अवधारणा रखते थे। अपने मिश्रित राष्ट्रवाद की संकल्पना में उनकी मान्यता यह थी कि हिन्दुत्व के द्वारा इस्लाम और ईसाइयत को नया रूप देने के स्थान पर उसे इस्लाम और ईसाइयत की सहायता से अपना नवीन रूप विकसित करना चाहिए। १९४५-४६ के चुनावी महाभारत में मुस्लिम लीग की देश-विभाजन की माँग को सदा-सर्वदा के लिए दफन कर देने की घोषणा में विफल होकर नेहरू जी ने अपना गुस्सा उन असंख्य बेसहारा और बेबस हिन्दुओं पर उतारना शुरू कर दिया जो अपने-अपने घरों से उजड़कर देश की राजधानी दिल्ली में आ गए थे और पाकिस्तान-समर्थक मुसलमानों को

वहाँ से खदेड़कर उनके निवास स्थानों में जा बसना चाहते थे।

गाडगिल का अभिमत

नेहरू जी के मंत्रिमंडलीय सहयोगी **एन.वी.गाडगिल** ने **'गवर्नमेंट फ्राम इनसाइड'** नामक अपनी संस्मरण पुस्तक में लिखा है कि श्री नेहरू के हिन्दू विरोधी कटु-भाषण महात्मा गांधी की हत्या जैसी त्रासदी की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए जिम्मेदार हैं। सच्चाई तो यह है कि उन्होंने हिन्दुत्व या इस्लाम के वास्तविक स्वरूप को समझने का कभी प्रयास ही नहीं किया। उनके साथ १९४२-४५ की अवधि में अहमदनगर कारागार में रहने वाले 'राष्ट्रवादी' मुसलमान नेता **'आसफ अली'** की डायरी में दी गई जानकारी के आधार पर यह कहा गया है कि अपने को पसंद न आने वाली बातों और व्यक्तियों की वजह से श्री नेहरू अपना मानसिक संतुलन बहुत शीघ्र खो बैठते थे। उन्होंने "हिटलर की सैन्य शक्ति के अभाव में भी अपने अनुयायियों पर हिटलर जैसी शक्ति रखने वाले" **जिन्ना** के मुसलमानों को दिए गए निर्देशों और अपीलों को समझने का कभी प्रयास नहीं किया। जबकि इस विषय का थोड़ा सा भी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति इस तथ्य को भली भाँति समझ सकता था कि **'इस्लाम खतरे में'** का नारा देकर जिन्ना किसी उग्र व्यक्ति की भाँति मुसलमानों क़े अन्दर इस्लाम में अन्तर्निहित कट्टरता और मतान्धता का ज्वार उत्पन्न कर सकते थे। इसे सरलता से उपलब्ध मुस्लिम नाजीवादी शक्ति कहा जा सकता है क्योंकि फासिस्टवादी मनोरचना के समाज इस्लाम की मूल प्रकृति भी संसार को दो परस्पर-विरोधी संघर्षरत खेमों में बाँट देती है।

लेकिन जिन्ना की राजनीतिक रणनीति को विफल बनाने में असफल होकर श्री नेहरू ने देश-विभाजन के बाद मतान्ध मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए हिन्दुओं के विरुद्ध जबर्दस्त अभियान छेड़ दिया। अपने-आपको मात्र **'जन्मतः हिन्दू'** घोषित कर वे वस्तुतः हिन्दुत्व और हिन्दुओं के प्रति जिन्ना की ही भाँति अपनी घृणा का प्रदर्शन कर रहे थे। यही कारण है कि उन्हें **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तमदास टंडन,** यहाँ तक कि **सरदार पटेल** और **जी.बी. पन्त** एवं अन्य अपने अनेक निष्ठावान हिन्दू सहयोगियों से गहरी अवमानना और अवज्ञा थी। **गांधी जी** और **पटेल** के निधन के उपरान्त उन्होंने कांग्रेस से चुन-चुनकर सभी निष्ठावान हिन्दुओं को अलग करना शुरू कर दिया था। नेहरू के मंत्रिमंडलीय सहयोगी और तदुपरान्त उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रह चुके **के.एम. मुंशी** ने उनकी हिन्दू-विरोधी और मुस्लिमपरस्त मनोरचना का वर्णन निम्न शब्दों में किया है।

नेहरू के संबंध में के.एम. मुंशी के विचार

"जवाहरलाल नेहरू कश्मीर के अभिजात्य परिवार के एक ऐसे वंशज थे जिनका परिवार अतीत में मुसलमान शासकों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ था और इस कारण श्री नेहरू कभी भी समस्या को समझ नहीं सके। उन्हें हिन्दू जीवन-दर्शन से अत्यधिक चिढ़ थी। वे हिन्दुओं के द्वारा उठाए गए रक्षात्मक कार्य को भी उग्रवाद बताते हुए उसकी घोर निन्दा करते थे और मुसलमानों की श्रेष्ठता को यदि प्रसन्नता के साथ नहीं तो कम से कम सौजन्यतावश अवश्य स्वीकार करते थे।....

"सन् ९९९ से सन् १७६१ के मध्य तुर्क, अफगान और मुगल आक्रमणकारियों ने देश के विभिन्न भागों में हिन्दू राज्यों का विनाश किया था। अपने इन आक्रमणों के दौरान उन्होंने बड़ी संख्या में हिन्दू पुरुष और महिलाओं को जबरन मुसलमान बनाया। वे और उनके समर्थकों ने बड़ी संख्या में हिन्दू महिलाओं को जबरन पकड़कर या भगाकर उन्हें अपनी-अपनी पत्नियाँ बनने पर विवश किया।

मुसलमान शासकों द्वारा शासित प्रदेश में इन मतान्तरित मुसलमानों को शासक वर्ग के अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। शासक उनके ही मजहब को मानने वाले व्यक्ति थे। सत्ता अथवा प्रभाव से संबद्ध प्रत्येक पद और ऊँचे वेतन उन्हीं को प्राप्त होते थे और जीवन के सभी भौतिक सुख-साधन उनके पास थे।" (**पिलग्रिमेज टु फ्रीडम**, पृ. ६२-६४)।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि **सरदार पटेल** और **सरोजिनी नायडू** दोनों ने **माउण्टबेटन** को यह जानकारी दी थी कि "नेहरू ने हिन्दू जनभावनाओं को कभी समझने का प्रयास नहीं किया।" **सरोजिनी नायडू** का कहना था कि "नेहरू अपनी सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा, दृष्टिकोण और मन-मस्तिष्क की रचना में अंग्रेजों के समान थे।" (**माउण्टबेटन एंड इंडिपेण्डेन्स आफ इंडिया**, विकास, पृ. ३३)। लेकिन नेहरू इस तथ्य को कभी समझ नहीं सके कि हिन्दुत्व अथवा हिन्दू जीवन-दर्शन का उत्पीड़न किया गया है और इसे इस्लामी बर्बरता से मुक्त कराना है। इसके विपरीत पंथनिरपेक्षता के नाम पर उन्होंने एक नये प्रकार की दासता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ब्रिगेडियर बी.एन. शर्मा (सेवानिवृत) अपनी पुस्तक **"इंडिया बेट्रेड : दि रोल आफ नेहरू"** (मानस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, १९९७) में लिखते हैं कि :

हिन्दू अस्मिता का परित्याग

"नेहरू पंथनिरपेक्ष सिद्धान्त के विषय में स्वयं स्पष्ट

नहीं थे। व्यावहारिक रूप में पंथनिरपेक्ष सिद्धान्त से नेहरू का आशय भारतीय संस्कृति की अस्मिता और हिन्दू तत्त्वों का परित्याग करना था क्योंकि उन्हें वे कालबाह्य, प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी और मिथ्यावादी समझते थे। वे उसे दो विदेशी जीवन-दर्शनों– इस्लाम और ईसाइयत– से परिपूर्ण करने के समर्थक थे क्योंकि उनकी दृष्टि में इस्लाम और ईसाइयत उदार और समतावादी मतवाद हैं। लेकिन ऐसा कहना तथ्यों का मखौल उड़ाना है। इसका कारण यह है कि इस्लाम और ईसाइयत ने अपने तमाम गुणों के बावजूद अपने-आपको समृद्ध बनाने की दिशा में कोई पहल नहीं की है और वे आज भी अपनी पुरानी मान्यताओं से चिपके हुए हैं। उनकी आधारभूत मान्यताओं का अभिन्न अंग अन्य पंथावलम्बियों को फुसलाकर, लालच देकर और जबरन अपने मत-पंथ में दीक्षित करना है। इसके लिए वे बल-प्रयोग को भी उचित मानते हैं। फिर भी इस्लाम के अनुयायियों ने अन्य पंथावलम्बियों को अपने मजहब से जोड़ने के लिए मुख्य रूप से बल-प्रयोग का सहारा लिया है, ईसाइयत ने सभी तरीकों का प्रयोग किया है। बहरहाल इस्लाम और ईसाइयत नामक ये दोनों मज़हब मतान्तरण के लिए बल-प्रयोग को अपना एक अति महत्त्वपूर्ण साधन मानते हैं। लेकिन हिन्दू जीवन-दर्शन में दूसरों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपने में जबरन सम्मिलित करने को न तो मान्यता दी गई है और न ही उसको व्यवहार में लाया गया है। ... वह तो किसी भी जीवन-दर्शन में उपलब्ध श्रेष्ठ मान्यताओं को आत्मसात करने की सामर्थ्य रखता है और अपने अनुयायियों में भी मतभिन्नता को सहर्ष स्वीकार करता है। लेकिन नेहरू जी की दृष्टि में ऐसा धर्म दकियानूसी और कूपमंडूकता को प्रश्रय देता है और इसलिए वह त्याज्य है। आज के नेतागण नेहरूजी के इन विचारों का आँख मूँदकर पालन करते हैं। यहाँ तक कि नेहरू जी प्राचीन भारत की हिन्दू अस्मिता के उल्लेख से भी तौबा करते थे क्योंकि वे तो तथाकथित मिश्रित संस्कृति के अंधपोषक और समर्थक थे।

"हिन्दू जीवन-दर्शन अथवा हिन्दुत्व से अन्ततः हमारा आशय क्या है ? हिन्दू जीवन-दर्शन, पूजा-उपासना पद्धति का एक स्वरूप नहीं है। वह हमारी वैदिक विश्व-दृष्टि से संबंधित हृदय की धड़कन का संगीत, जीवन संबंधी दार्शनिक ज्ञान, इस प्राचीन भारत अथवा धरती माता की शाश्वत सुगंध, हमारी अस्मिता का प्रतीक, हमारे मनीषी ऋषि-मुनियों की सृजनात्मक प्रतिभा, हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की अभिव्यक्ति तथा हमारी वैदिक आत्मचेतना का भाष्य है। हिन्दुत्व अथवा हिन्दू जीवन-दर्शन इतिहास-काल से पूर्व एवं अति प्राचीन भारतीय दर्शन के शाश्वत सिद्धान्तों का अभेद्य सम्मिश्रण, सभी तरह की व्यक्तिगत उपासना पद्धतियों को समाहित करने वाला सर्वव्यापी जीवन दर्शन है जिसमें नास्तिकतावादी, एकेश्वरवादी, बहुदेववादी, समस्त देवी-देवतागण और उनकी उपासना की विधियाँ तथा ज्योतिष-ज्ञान संबंधी संकल्पना, विश्व की उत्पत्ति की जानकारी कराने वाला ज्ञान एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सार्वदेशिक तथा सार्वजनीन मानव-मूल्यों का अक्षय भंडार समाहित है। हिन्दू जीवन-दर्शन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उच्चादर्श से अनुप्राणित है जो सृष्टिकर्ता परमपिता परमात्मा को जनक के रूप में मान्यता देकर विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रतिष्ठापक एवं परिचायक है।" □

(पृष्ठ १२ का शेष)

हिन्दुत्व में पंथनिरपेक्षता

राजधर्म

व्यक्तिगत जीवन में पंथनिरपेक्षता बहुत ही कठिन है। व्यक्तियों की अपनी आस्था होती है, अपने आराध्य में अटूट श्रद्धा होती है और इसलिए निरपेक्ष रहना सरल नहीं है। फिर भी यदि कोई निरपेक्ष रह सकता है तो वह हिन्दू ही है। किसी राज्य अथवा सरकार के लिए पंथनिरपेक्षता एक वांछनीय व्यवस्था है। पंथनिरपेक्ष राज्यों से अपेक्षा रहती है कि वे या तो आस्था के विषयों में किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप न करें अथवा सभी के प्रति समभाव रखते हुए सबके साथ एक जैसा व्यवहार करें। भारत में ऐसा नहीं हुआ। जब पंडित जवाहर लाल नेहरू ने हिन्दू कोडबिल, हिन्दू मैरेज एक्ट, हिन्दू प्रापर्टी एक्ट बनाए तो अन्य मतावलम्बियों के लिए ऐसे कानून नहीं बनाए गए। सम्भव है उनमें इतना साहस नहीं था कि मुस्लिम कोड बिल, मुस्लिम मैरेज ऐक्ट अथवा मुस्लिम प्रापर्टी ऐक्ट जैसे कानून बनाते या फिर पंथनिरपेक्ष रहते हुए भारतीय कोड बिल, भारतीय मैरेज ऐक्ट और भारतीय प्रापर्टी ऐक्ट बनाते। यदि इंसान और इंसान में भेद नहीं करना है तो सबके लिए एक जैसे कानून होने चाहिएं। इसी प्रकार यदि प्रदेश और प्रदेश में भेद नहीं करना है तो सभी प्रान्तों के साथ एक जैसा व्यवहार होना चाहिए। भारत में पिछले पचपन वर्षों से सेकुलरवाद और सर्वपंथ समभाव की बातें तो बहुत होती रही हैं परन्तु वोट की राजनीति के कारण व्यवहार में तुष्टिकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं हुआ है। ऐसी परिस्थिति में बिना संकोच के कहा जा सकता है कि रामराज्य की कल्पना के अनुरूप हिन्दूराष्ट्र की स्थापना ही पंथनिरपेक्षता की गारंटी हैं। यदि कोई अन्य मताधारित व्यवस्था स्थापित हो गई तो पहली गाज पंथनिरपेक्षता पर ही गिरेगी। □

अल्पसंख्यकवाद अथवा मुस्लिम तुष्टिकरण बनी पंथनिरपेक्षता

□ जे. आर. पांवगी

अस्सी के दशक में कानपुर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित करते हुए श्री रामकृष्ण मिशन के प्रमुख स्वामी रंगनाथानन्द जी ने कहा था कि हम भारतवासी 'इतिहास के शिकार' हैं (विक्टिम्स आफ हिस्ट्री)। इससे उनका आशय था कि हम इतिहास से सबक नहीं लेते और अपनी पुरानी गलतियों को दुहराते रहते हैं। हमारी लम्बी दास्ता का एक प्रमुख कारण यह भी रहा है।

पंथनिरपेक्षता बनाम तुष्टिकरण

अनेक संघर्षों के उपरान्त जब भारत १५ अगस्त, १९४७ को स्वतंत्र हुआ तो उस समय हमारे पास एक ऐसा अवसर था जब हम इतिहास को स्मरण रखते हुए ऐसी नीति बनाते जो हमें एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में सहायक होती। परन्तु हमारे नेताओं ने इस सुअवसर को खो दिया। दुर्भाग्य से देश का नेतृत्व जिनके पास था वे यथार्थवादी न होकर कल्पना लोक में विचरण करने वाले आदर्शवादी थे। जिन्ना और मुस्लिम साम्प्रदायिकता से त्रस्त रहे भारतवासियों के लिए एक अवसर था, जब वे भारत को इससे मुक्त कर सकते थे। पहले तो महात्मा गांधी यह कहते रहे कि भारत देश का विभाजन उनकी लाश पर होगा, परन्तु लाखों निरीह हिन्दुओं की पंजाब, सिंध और पूर्वी बंगाल में लाशें बिछती रहीं और विभाजन स्वीकार कर लिया गया। नेहरू सरीखे कांग्रेस नेताओं को सत्ता पाने की जल्दी थी। आखिर द्वि-राष्ट्रवाद को स्वीकार करने का परिणाम ही पाकिस्तान के उदय के रूप में हुआ और पाकिस्तान एक इस्लामी राष्ट्र बन गया। परन्तु हमारे कर्णधारों पर आदर्शवाद इस कदर हावी था कि वे भारत को सेक्युलर देखना चाहते थे। उनकी इस नीति और ४५ वर्ष सत्तासीन कांग्रेस तथा कुछ अन्य तथाकथित पंथनिरपेक्ष, कम्युनिस्टों के प्रभाव वाले व कथित समाजवादी, पर वास्तव में अवसरवादी सत्तासीनों की नीतियों का दुष्परिणाम आज हमें भारत के मुस्लिम समुदाय के एक बड़े वर्ग की आक्रामकता के रूप में झेलना पड़ रहा है। इसका मूल कारण 'पंथनिरपेक्षता' के नाम पर मुस्लिमपरस्ती या अल्पसंख्यकवाद का सतत पोषण है। सेक्युलर का जो अर्थ पंथ-निरपेक्षता है उसे सतत धर्मनिरपेक्षता कहा जाता है, और कार्य रूप में इसका भाव बहुसंख्य हिन्दुओं का अपमान व उनकी उपेक्षा व अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के नाम पर उनका अनुचित 'तुष्टिकरण' रहा है। वास्तव में यही हो गया है देश की राजनीतिक स्थिति का सार और निरीह सा हिन्दू समाज इसे झेल रहा है।

मुसलमानों के आरक्षण की माँग

इधर जब हिन्दू संगठनों ने इन नीतियों के विरुद्ध आवाज उठाना प्रारम्भ किया है तो कांग्रेस सहित सभी विपक्षी दल, जिनका कई राज्यों में शासन भी है, जोर-शोर से इस आवाज को दबाने का प्रयास कर रहे हैं। इसे हवा देने में कम्युनिस्ट और समाजवादी आगे हैं। बहुसंख्य हिन्दुओं को साम्प्रदायिक घोषित किया जा रहा है, जबकि सभी जानते हैं कि इस देश में साम्प्रदायिकता की जड़ मुस्लिम कट्टरपंथी हैं और इन्हीं लोगों ने भारत का विभाजन करा कर पाकिस्तान का निर्माण कराया। वास्तविकता यह है कि कांग्रेस ने अंग्रेजों की 'बाँटो और राज्य करो' की नीति को ही अपनाया और मुसलमानों का भयादोहन किया, ताकि उनके वोट थोक में उन्हें मिल सकें और वह लम्बे समय तक सत्तासीन रह सकें। और ऐसा हुआ भी। कांग्रेस और उसके सरीखे विचार वाले राजनीतिक दलों ने 'पंथनिरपेक्षता' के आवरण में मुसलमानों का भयंकर तुष्टिकरण किया। उन्हें देश की नहीं; सत्ता की परवाह रही है और आज भी है। पंथनिरपेक्षता, जिसे धर्मनिरपेक्षता का त्रुटिपूर्ण सम्बोधन दिया गया, के अर्थ 'सर्वधर्म समभाव' को तिलांजलि देकर मुसलमान अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण का मार्ग अपनाया गया। इसी कारण भारत के मुसलमान जो कट्टरपंथियों और मुल्लाओं के प्रभाव में अधिक हैं, राष्ट्र की मुख्यधारा में सम्मिलित नहीं हुए और अपने को विशेषाधिकारसम्पन्न समझकर अनेक विशेषाधिकारों की अपेक्षा और माँग करने लगे हैं। इसका ताजा उदाहरण दलित मुसलमानों के नाम पर आरक्षण की माँग समय-समय पर उठाना है, जबकि संविधान में पूजा-उपासना के आधार पर आरक्षण वर्जित है। ऐसी ही माँग ईसाई भी उठाने लगे हैं। प्रश्न यह है कि जब मुसलमान और ईसाई कहते हैं कि "उनके यहाँ हिन्दुओं की तरह सामाजिक असमानता

नहीं है'', तो फिर ये दलित या पिछड़े मुस्लिम या ईसाई कहाँ से आ गये ? स्पष्ट है कि जिन दलित हिन्दुओं को बहला-फुसला कर या लालच दिखाकर उनका मतान्तरण कराया गया है वे आज भी उसी हाल में है और उपेक्षित हैं। जिन्होंने इस वर्ग का मतान्तरण कराया वे ही अब उनके लिए आरक्षण माँगते हैं।

सेकुलर शब्द जोड़ने के नतीजे

यह जानते हुए भी कि भारतवासी हिन्दू सदैव से पंथनिरपेक्ष रहे हैं और स्वतंत्र भारत तो एक पंथनिरपेक्ष देश है, तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने मुसलमानों व ईसाइयों को खुश करने के लिए संविधान में 'सेक्युलर' शब्द जुड़वाया। परन्तु इसका उलटा प्रभाव पड़ा। अल्पसंख्यक, खासकर मुसलमान, अपने को विशेषाधिकारसम्पन्न नागरिक समझने लगे। उनके कार्यकाल में ही जम्मू-कश्मीर में आतंकवादी घटनाओं का प्रारम्भ हुआ। पाकिस्तान के साथ हुए १९७१ के युद्ध में पाकिस्तान को जीता हुआ भूभाग लौटाकर जो भारी भूल की गई उसका परिणाम भी भुगतना ही था। राजीव गांधी द्वारा एक कदम आगे बढ़कर उच्चतम न्यायालय के शाहबानो प्रकरण के निर्णय को निष्प्रभावी बनाना इस्लामी कट्टरपंथियों की और विजय सिद्ध हुई। मुस्लिम महिलाएँ पुरुषों की दासता में पिसते रहने को मजबूर रहीं। जहाँ एक ओर तो संविधान के अनुसार समान नागरिक संहिता बनाने की आवश्यकता थी, उसके विपरीत मुसलमानों को अधिकाधिक विशेषाधिकार देने का क्रम चलता रहा। अल्पसंख्यकवाद की नीति का यह एक बड़ा प्रमाण है कि भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश में सभी नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता लागू नहीं हो सकती है। खेद की बात तो यह है कि जिस भाजपा के एजेण्डा में 'समान नागरिक संहिता का मुद्दा सदैव रहा है, उसने भी वर्तमान भाजपा नेतृत्व की गठबंधन सरकार ने उसे फिलहाल ताक पर रख दिया है। यह भी अल्पसंख्यकवाद की देश के नेताओं की नीति का ही परिणाम है।

अल्पसंख्यक आयोग क्यों ?

अल्पसंख्यक आयोग का गठन भी विघटनकारी तत्त्वों को बढ़ावा देने वाला कार्य सिद्ध हो रहा है। भारत सरीखे पंथनिरपेक्ष देश में जहाँ कि ८५ करोड़ हिन्दुओं के रहते भी अल्पसंख्यक पूरी तरह सुरक्षित हैं, वहाँ इस तरह के आयोग के गठन की आवश्यकता समझ से परे है। अब स्थिति यह है कि यह आयोग सामाजिक समरसता कायम करने के प्रयास के बजाय अवसर पाकर हिन्दू समाज पर दोषारोपण करने और बिखराव उत्पन्न करने में सहायक हो रहा है। ताजा उदाहरण उत्तर प्रदेश में जैन समुदाय को अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाना है। वास्तविकता यह है कि सिख और बौद्ध मतावलम्बियों की तरह जैन हिन्दू समाज के और भी निकट के अविभाज्य अंग हैं। कोई नीर-क्षीर विवेकी भी जैनियों और हिन्दुओं में भेद नहीं कर सकता, कारण इन परिवारों में रोटी-बेटी के सम्बन्ध हैं। हमारा दुर्भाग्य यह है कि बहुसंख्य सहनशील हिन्दुओं को कोसना व अपमानित करना 'सेक्युलरिज़्म' की पहचान बन गया है। हिन्दू धर्म में अनेक मत रहे हैं और अब 'मत' को 'धर्म' का पर्यायवाची समझकर हिन्दू समाज को विघटित करने के प्रयास हो रहे हैं।

मुस्लिम जनसंख्या में वृद्धि

इस अल्पसंख्यकवादी नीति का एक बड़ा उदाहरण मुस्लिम जनसंख्या में तीव्र वृद्धि है। जनसंख्या वृद्धि भारत की एक गंभीर समस्या है। इस वृद्धि को थामने के लिए सरकार के प्रयास आधे-अधूरे हैं। बहुसंख्य हिन्दू, सिख आदि जहाँ परिवार नियोजन को अधिकाधिक अपना रहे हैं, वहीं मुस्लिम परिवार मजहब की आड़ लेकर अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि में सहायक हो रहे हैं। इसके दो दूरगामी परिणाम सामने आ रहे हैं। इससे गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा जैसी समस्याएँ तो बढ़ती रही हैं; आनुपातिक रूप से हिन्दुओं की जनसंख्या मुसलमानों की तुलना में कम होती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार जहाँ हिन्दुओं की जनसंख्या वृद्धि में प्रतिवर्ष एक प्रतिशत की कमी हो रही है वहीं मुसलमानों की जनसख्या वृद्धि की दर प्रतिवर्ष एक प्रतिशत बढ़ रही है। कुछ मुस्लिम आशावादी तो यह कहते हैं कि आने वाले १०० वर्षों में हमारी जनसंख्या हिन्दुओं के बराबर और उसके बाद १०० वर्षों में हिन्दुओं से काफी अधिक हो जायेगी। अर्थात् भारत बिना लड़े ही इस्लामी राज्य हो जायेगा। 'लड़ के लिया है पाकिस्तान, हँस के लेंगे हिन्दुस्थान' के फलीभूत होने का डर बढ़ रहा है। उन्हें इसकी परवाह नहीं है कि अभी एक अरब जनसंख्या के दबाव को झेल रहा भारत, यदि यही क्रम रहा तो दो या ढाई अरब आबादी को कैसे झेलेगा उन्हें क्या खिलायेगा, क्या पढ़ायेगा, कहाँ और कैसे रखेगा ? परन्तु इस अति गंभीर समस्या के प्रति मुसलमानों को परिवार नियोजन के लिए आग्रह करना तो दूर, उनको जागरूक कर शिक्षित करने का भी गंभीर प्रयास नहीं हो रहा है। यह हमारी अल्पसंख्यकवादी नीति का एक चिन्ताजनक उदाहरण है।

(शेष पृष्ठ ९३ पर)

कभी संसद में यह निनाद निनादित हुआ था कि :

'धर्मनिरपेक्षता' कोरी व्यर्थता

□ वचनेश त्रिपाठी

आज से १० वर्ष पूर्व की बात; सन् १९९३ का वर्ष था; संसद में तत्कालीन राष्ट्रपति का अभिभाषण समाप्त हुआ तो तुरन्त वहाँ समुपस्थित भारतीय जनता पार्टी के एक सांसद जो अपने 'सत्यज' उपनाम से काव्य-रचना किया करते थे, अपनी सद्यः-रचित एक कविता राष्ट्रपति के अभिभाषण के उत्तर में संसद में पढ़ने लगे। उन सांसद 'सत्यज' जी का पूरा नाम है, श्री सत्यनारायण जटिया 'सत्यज'। उस कविता का शीर्षक था : **'धर्म निरपेक्षता' कोरी व्यर्थता'**।

जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, वह मार्च का महीना था, संभव है– ठीक समय मुझे स्मरण न रहा हो। वह पूरी कविता इस प्रकार है :

''धरती सूरज का चक्कर लगाती है।
और चन्द्रमा धरती के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है।
इनकी सापेक्ष गति से दिन-रात होते हैं,
और मौसम बदल जाते हैं।
यदि कहीं इनकी मति मारी जाये
ये लोगों के कहने में आ जायें
और एक-दूसरे के चक्कर न लगायें
अर्थात् 'धर्म-निरपेक्ष' हो जाएँ
तो दिन-रात कैसे होंगे ?
और मौसम भी नहीं बदलेंगे।
तात्पर्य यह कि सूरज-धरती और चंदा
का रिश्ता निरपेक्षता का नहीं
सापेक्षता का है।
धर्म, प्रकृति की तरह सापेक्ष होता है।
निरपेक्षता का अर्थ जड़ता है।
इस प्रकार 'धर्म-निरपेक्षता' कोरी व्यर्थता है।''

इस सर्वथा सामयिक महत्व की कविता ने संसद के वातावरण में 'पंथनिरपेक्षता' के प्रश्न को धूल में मिला दिया और सुकवि सांसद श्री 'सत्यज' की सांसदों ने खुलकर प्रशंसा की। आज उसके १० वर्ष बीत जाने के बाद भी इस कविता के सामयिक प्रासंगिक होने का महत्त्व यथावत बरकरार है, प्रभावी है– इसी कारण मैं इसे यहाँ 'पंथनिरपेक्षता' के प्रसंग पर उद्धृत किये बिना न रह सका। और मुझे अपने एक सुपरिचित कवि इसी सन्दर्भ में स्मरण आते हैं, जिनका नाम है– 'वाहिद अली वाहिद'। अवश्य पुनः अब इस ८९ वर्ष पूरी होने आने पर संदेह होता है कि कहीं मैं यहाँ भी नाम-स्मरण में विस्मृति का शिकार न हो जाऊँ। खैर, यदि सचमुच नाम का उल्लेख करने में कोई भूल रही हो तो पाठक और स्वयं उक्त कवि महोदय मुझे क्षमा करेंगे। 'वाहिद' साहब ने एक समय लिखा था कि :

''ये कहना कि 'मजहब वतन से बड़ा है',
बगावत नहीं है तो और क्या है ?''

सुकवि वाहिद अली 'वाहिद' साहब का यह प्रश्न इस महान राष्ट्र की उस मुस्लिम बिरादरी से उत्तर की अपेक्षा रखता है, जो अच्छे-खासे इस्लामी आलिम माने जाकर भी कह रहे हैं कि ''**हमारे लिए हमारा मजहब (इस्लाम) पहले है, मुल्क (वतन हिन्दुस्तान) बाद में**''।

हिन्दुस्तान में जिन दिनों मुस्लिम लीग की माँग बुलन्द करते हुए शहरों-कस्बों में जुलूस निकल रहे थे और उन जुनूनी जुलूसों में नारे लग रहे थे,

''ले के रहेंगे पाकिस्तान !
नारा– ये तकबीर
अल्ला-हो-अकबर''

कम्युनिस्ट और इकबाल

और इन हथियारबन्द जुलूसों के द्वारा खूनी दंगे भी जहाँ-तहाँ लाशें गिरा रहे थे, उन दिनों इस देश की कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र ''जनयुग'' और ''पीपुल्स-एज' मुस्लिम लीग की माँगों को 'जायज' करार देते हुए, अपना पूर्ण समर्थन देते हुए लिख रहे थे कि, ''**यह तो लीग के आत्मनिर्णय के अधिकार की बात है, जिसका मुस्लिम लीग को प्राप्त करने (यानी पाकिस्तान बनाने) का पूरा हक है**''। इस तरह मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान बनाने की माँग को कम्युनिस्टों ने ''राइट ऑफ सेल्फ डिटरमिनेशन'' (आत्म-निर्णय का अधिकार) घोषित किया और उसका आधार कम्युनिस्ट नेताओं ने ''पंथनिरपेक्षता''

को ही बनाया। प्रश्न है, मुस्लिम लीग या पाकिस्तान की माँग करने वालों ने 'पंथनिरपेक्षता' से अपना दामन कम जोड़ा ? उन्होंने पाकिस्तान की माँग और उससे जुड़े आन्दोलन से इस्लामी ''अल्ला-हो-अकबर'' के नारे को हमेशा संयुक्त कर रखा– कभी उस नारे से विघटन और बिखराव वाली मुहिम को जुदा नहीं होने दिया। पढ़े-लिखे शहरी तहजीब में पले-बढ़े बड़े-बड़े मुस्लिम शायर डॉ. मोहम्मद इकबाल और 'सौदा' किस कदर इस नितान्त अराष्ट्रीय प्रवृत्ति और मुस्लिम लीगी मानसिकता से प्रेरित थे, उसके ज्वलन्त प्रमाण स्वयं उन्हीं की लिखी ये पंक्तियाँ हैं; डॉ. मोहम्मद इकबाल ने लिखा कि :

''याद आता है कभी मर्दे-मुसलमां तुझको ?
कलमा पढ़ते थे तलवारों के साये में हम।
नक्श तौहीद का हर दिल पर बिठाया हमने,
और जेरे-खंजर भी लिये पैगाम सुनाया हमने,
काट कर रख दिये कफ़्फार के लश्कर हमने...''

और ये वही अल्लामा इकबाल थे, जिन्होंने पहले यह प्रसिद्ध वतनपरस्ती का गीत लिखा था कि :

''हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी, ये गुलिस्तां हमारा।।''

लेकिन फिर मजहबी विद्वेष और कठमुल्लेपन ने उन्हीं शायरेआला इकबाल को राष्ट्रवाद के सर्वथा विपरीत यह लिखने को प्रेरित किया था कि :

''चीनो-अरब हमारा, हिन्दोस्तां हमारा।
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा।।''

पाकिस्तान के जनक इकबाल

इकबाल की वतनपरस्ती, देश-प्रेम को मुस्लिम लीगी अलगाववाद, देश-विभाजन और हिन्दू-विरोध के पीछे क्या कभी 'पंथ-निरपेक्षता' की भावना आधारभूत रही, नहीं; मजहबी कठमुल्लेपन ने ही इकबाल को मोहम्मद अली जिन्ना से कहीं अधिक हिन्दू-विद्वेषी और विघटनवादी बना डाला। इसी कारण 'काकोरी केस' में १५ वर्ष की आयु में १४ वर्ष काले पानी की सजा अण्डमान की सेलुलर जेल में झेलने वाले जाने माने मार्क्सवादी लेखक स्व. मनमथनाथ गुप्त ने लिखा था कि : **''उर्दू के विख्यात कवि मोहम्मद इकबाल ही पाकिस्तान के पिता थे''** (उनके मूल शब्द थेः ''ही वाज फादर आफ पाकिस्तान'')।

यद्यपि जब पाकिस्तान बना तो इकबाल उसके काफी पहले ही, दुनिया से कूच कर चुके थे और ये वही इकबाल थे जो अपने को ब्राह्मण पूर्वजों की संतान मानते थे, स्वयं इकबाल की ही लिखी अपनी आत्म-कथा के ये शब्द हैं कि, **''मैं बरहमन-ज़ादा-ये-कश्मीर हूँ''** अर्थात् ''मैं कश्मीरी ब्राह्मण की औलाद हूँ।''

और यह प्रलाप

लेकिन आगे चलकर मजहबी कट्टरपन और हिन्दू-विद्वेष ने उन्हें न सिर्फ मुस्लिम लीगी वरन् **''पाकिस्तान का पिता''** बना दिया, हालांकि यह बात बहुत कम लोगों को पता है। क्रान्तिवीर मन्मथनाथ गुप्त तो इतिहासकार भी थे। शुरू में ही उन्होंने ''भारतीय क्रान्ति का इतिहास'' लिखा था। वे ठीक-ठीक समझ सके थे इकबाल को। मार्क्सवादी जबकि पक्का 'पंथनिरपेक्ष' माना जाता है, लेकिन कम्युनिस्ट विचारधारा आत्मसात करके भी मन्मथदा कभी राष्ट्रवाद को दरकिनार नहीं कर सके वरन् भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय मन्मथदा ने एक अपने लेख का शीर्षक दिया था : **''याहया खां को फांसी दो''**। यह लेख छपने पर अपने को पुख्ता पंथनिरपेक्ष साबित करते हुए दिल्ली के एक पत्र में 'मुद्राराक्षस' महाशय ने मन्मथदा के लेख की आलोचना करते हुए लिखा था, ''याहया ही क्यों, मुजीब क्यों नहीं ?'' अर्थात् 'मुद्राराक्षस' की नजर में याहया खाँ और शेख मुजीब में तब कोई फर्क नहीं था, क्योंकि तब तक बंगलादेश का निर्माण नहीं हुआ था वरन् शेख मुजीब पूर्वी पाकिस्तान में उन दिनों पूर्वी बंगाल को स्वतंत्र कराने के लिए आन्दोलन कर रहे थे और याहया खाँ उस आन्दोलन का दमन कर रहा था। फिर भी पंथ-निरपेक्षता का लबादा ओढ़े बैठे साहित्यकार 'मुद्राराक्षस' महाशय को शेख मुजीब और याहया खाँ में इस कदर समानता नजर आती थी कि **''याहया खाँ को फाँसी देने की माँग मन्मथनाग गुप्त क्यों कर रहे हैं ? शेख मुजीब को क्यों न फाँसी दी जाये ?''** कैसा गजब ढाने वाली सिद्ध होती रही यह तथाकथित पंथ-निरपेक्षता की मुहिम और विचारधारा। दूसरी ओर 'इकबाल' की तरह ही भारत के 'सौदा' जैसे उर्दू शायर भी यही लिखते रहे थे कि,

''ग़र हो कशिशे शाह-खुरासान तो 'सौदा'
सिजदा न करूं हिन्द की नापाक ज़मी पर''

अर्थात् अगर कहीं खुरासान का बादशाह मुझे कह दे कि 'सौदा' तू यहाँ (खुरासान) आ जा, तो मैं इस नापाक (अपवित्र) हिन्दुस्तान की ज़मीन पर खुदा (अल्लाह) को सिज़्दा (बन्दगी) भी नहीं करूँ- यानी यहाँ की नापाक ज़मीन पर बनी मस्जिद में

नमाज भी न दूँ– सीधे फौरन खुरासान रवाना हो जाऊँ, हमेशा के लिए इस नापाक ज़मीन वाले हिन्दुस्तान को त्याग दूँ।

अश्फाक उल्ला खाँ की आरजू

पंथ-निरपेक्षी महानुभाव 'सौदा' के इस स्वदेश-द्वेष, खुरासान प्रेम को क्या कहेंगे ? विदेश होकर भी खुरासान शायर 'सौदा' को इसलिए प्यारा है, पाक-ज़मीन है क्योंकि वह मुस्लिम मुल्क है। जाहिर है कि 'सौदा' साहब की नज़र में हिन्दुस्तान हमेशा हिन्दू या 'काफिर देश' ही बना रहा। इसी से उन्होंने यहाँ जन्म लेकर भी यहाँ पले-बढ़े होने के बावजूद इस सरज़मीन हिन्दुस्तान को पवित्र नहीं माना। जबकि हिन्दू संस्कृति-निष्ठ दरिया साहब जैसे मुसलमान लिखते रहे कि, **"जो - दरिया' तो भी मैं, राम तुम्हारा"**, कि "हे राम जी ! यद्यपि मैं मुसलमान हूँ, फिर भी मैं तुम्हारा ही हूँ"। जबकि 'इकबाल' और 'सौदा' के चिन्तन वाले मुसलमान इस महान देश (भारत) को हमेशा दारुल-हरब (नापाक मुल्क) ही मानते रहे और इसी से मुस्लिम लीगियों को यह ख्वाब आता रहा कि वे इस देश को 'दारुल-इस्लाम' बनायेंगे अर्थात् इस्लामी हुकूमत यहाँ होने से यह 'पवित्र देश' कहलायेगा। पाकिस्तान इसी विचारधारा की चरम परिणति है और आज विगत १० वर्षों से जम्मू-कश्मीर में जो नरसंहार जारी है, लाखों लोग मारे जा चुके हैं, वह भी इसी जिहादी सोच और जिहादी मुहिम की देन है। तथाकथित पंथ-निरपेक्षतावादी नेता उन हत्यारों को 'जिहादी' मानने से कतराते हैं जबकि उन खूनी संगठनों के नाम ही 'मुजाहिद' (जो जिहाद करे) शब्द से जुड़े हैं। और जिहाद है क्या ? जो देश या लोग इस्लाम में नहीं है– उन्हें इस्लाम में लाओ, नहीं आते तो इसके लिए वहाँ जंग करो, इस्लाम न कबूल करने वालों को कत्ल करो– यही जिहाद है। किन्तु स्वयं को पंथ-निरपेक्ष घोषित करने वाले भारतीय नेतागण कभी कश्मीर में जघन्य हत्याकाण्डों के आधारभूत इस 'जिहाद' का नाम नहीं लेते; क्योंकि उससे एक पंथ इस्लाम जुड़ा हुआ है। कश्मीर में हो रहे नर-संहार को जिहाद की देन बताने से उनकी पंथ-निरपेक्षता पर संशय का सवाल खड़ा हो जायेगा। परन्तु भारतीय नेताओं की यह 'पंथ निरपेक्षता' आगे भी क्या गुल खिलायेगी, इसे खतरों से भरा भविष्य ही बतायेगा। भारत का भूतकाल तो गांधी-नेहरू की पंथनिरपेक्षता की देन पाकिस्तान से आहत और रक्त-रंजित रहा ही है। वर्तमान भी उसी तरह खून से रंगा जा रहा है। अतः आवश्यक है कि हम इस तथाकथित वैचारिक पाखण्ड पंथ-निरपेक्षता को जाँचें-परखें और वह भी इतिहास की सच्चाई की कसौटी पर पर– तभी भारत की अखंडता और सीमायी सुरक्षा के साथ-साथ राष्ट्र की स्वतंत्रता संरक्षित रह सकेगी, क्योंकि इस्लाम पंथ में 'राष्ट्रवाद' नाम की चीज ही नहीं है। यही वजह है कि जहाँ तक मुस्लिम क्रान्तिकारी शहीद की मिसाल है तो सन् १८५७ के बाद सन् १९२७-२८ तक केवल एक मुसलमान आजादी के लिए क्रान्ति'पथ का पथिक बनकर फाँसी पर चढ़ा– वह था **मोहम्मद अश्फाक उल्ला खाँ वारसी 'हसरत'**, जिसने फांसी के एक दिन पहले यह लिखा था कि :

"कोई आरजू नहीं है, है आरजू तो ये है
रख दे कोई ज़रा-सी खाके-वतन कफन में।"

इस देश की मिट्टी उसके लिए इतनी पवित्र थी, क्योंकि 'सौदा' की तरह अश्फाक इस देश को 'नापाक' (हरब) नहीं मानते थे, वरन् कहते थे इसे अपनी माता, 'मातृभूमि' मानकर कि,

"हे मातृभूमि ! तेरी सेवा किया करूँगा,
फांसी मिले मुझे, या जन्म कैद मुझको,
बेड़ी बजा-बजा कर तेरा भजन करूँगा।"

रहीम की हिन्दू धर्म-सापेक्षता

जबकि आज मुस्लिम इमामों-काजियों-मुल्लाओं के लिए यह 'भजन' 'कुफ्र' नाम पा गया है। अलबत्ता अमीर खुसरो कहते थे कि "कयामत के रोज मैं फरिश्तों को हिन्दवी ज़बान (हिन्दी) में ही उनके सवालों के जवाब दूँगा, उनसे कहूँगा कि 'मुझसे हिन्दवी में ही सवाल करो, अरबी में नहीं।" अवश्य पंथ-निरपेक्ष की तंग गली त्यागकर और इस्लामी जिहाद से हटकर कभी अकबर के दरबारी वजीर अब्दुर्रहीम खानखाना ने अपने मित्र गोस्वामी तुलसीदास को यह लिखा था कि :

"जेहि रज ऋषि'पत्नी तरी, सो ढूंढत गजराज"

क्योंकि तुलसीदास ने रहीम को यह लिखकर पूछा था कि **"धूरि धरत नित सीस पर, कहु रहीम केहि काज"** अर्थात् "रहीम मिया ! बताइये, हाथी हमेशा अपने सिर पर धूल क्यों उंडेलता रहता है ?" तो 'रहीम' ने उक्त पंक्ति में उन्हें उत्तर दिया था वरन् रहीम ने तो यहाँ तक लिख डाला कि :

"राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा नेवाद
कह 'रहीम' तिन्ह आपने जनम गंवायो बादि।"

कि "जिन्होंने राम नाम से नाता नहीं जोड़ा उन्होंने अपनी जिन्दगी बेकार गंवा दी।" □

पंथनिरपेक्षता की चुनौती

□ विजय कुमार

कभी-कभी यह सोचकर बड़ा आश्चर्य होता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्ष बाद भी हम अभी तक यह निर्णय नहीं कर पाये हैं कि पंथनिरपेक्षता और साम्प्रदायिक सद्भाव की सही परिभाषा क्या है ? जब परिभाषा ही नहीं मालूम तो इनको प्राप्त करने का मार्ग भला कैसे मालूम होगा ? और जब मार्ग नहीं मालूम, तो फिर लक्ष्य तक कैसे पहुँचेंगे ? प्रत्येक राजनीतिक दल और सामाजिक संगठन इनकी व्याख्या अपनी-अपनी सोच के अनुसार करते हैं। उनकी यह सोच खरबूजे के रंग की तरह बदलती भी रहती है। यानि चुनाव के पास आने पर कुछ और चुनाव के बाद कुछ। चुनाव में जीतने पर कुछ और चुनाव में हार जाने पर कुछ। और खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, यह तो सबने सुना ही है। इसलिए एक के रंग बदलते ही उसका विरोधी राजनीतिक दल या संगठन भी तुरन्त ही रंग बदलते हुए अपनी परिभाषा में संशोधन कर लेता है। पर इतना तो निश्चित है स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय, जाति और वर्गविहीन समाज आदि की स्थापना की जो लम्बी-चौड़ी बातें हमारे तत्कालीन नेता करते थे, आज का परिदृश्य उसके एकदम विपरीत दिखायी देता है। जितना प्रयास इनकी प्राप्ति के लिए किया गया, बात उतनी ही बिगड़ती चली गयी। यानि मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की। इससे ही स्पष्ट है कि या तो हम अपने आदर्शों के प्रति पूरी तरह ईमानदार नहीं हैं या फिर हमारी मूलभूत सोच में ही कही बड़ी भारी भूल है। इसे सुधारे बिना आगे बढ़ते रहने का अर्थ निश्चित रूप से किसी गहरे कूप में गिरना है।

राजनीतिक विवशता

जहाँ तक अपने लक्ष्य और आदर्शों के प्रति ईमानदारी का प्रश्न है, यह अब शीशे की तरह साफ हो चुका है कि हमारी राजनीतिक व्यवस्था पूरी तरह चुनाव और वोटों की गणित की गुलाम हो चुकी है। भारी-भरकम शब्दजाल की आड़ में प्रत्येक राजनीतिक दल का उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण सत्ता में आना और फिर उसमें बना रहना ही रह गया है। यद्यपि वे दल, जिनके पास राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण संस्कारित नेताओं की पूंजी है, उनकी कार्यप्रणाली में कुछ अन्तर अवश्य दिखायी देता है, पर उन्हें भी हर समय यही चिंता लगी रहती है कि अपने अनुकूल वोट बैंक और ऐसे वोट बैंकों का गठबंधन कैसे तैयार किया जाये ? दुर्भाग्य से वोट बैंक आज मजहब, जाति और क्षेत्रीय सीमाओं में सिमट कर रह गये हैं। इसलिए किसी भी प्रकार से तुष्टिकरण की नीति अपनाते हुए उन्हें खुश रखना भी वर्तमान राजनीति की एक विवशता बन कर रह गयी है।

भूल जाते हैं कि...

ऐसे माहौल में पंथनिरपेक्षता के बारे में एक बार फिर विचार करने की आवश्यकता अनुभव होती है। भारत के अधिकांश राजनीतिक दलों के लिए पंथनिरपेक्षता का अर्थ मात्र हिन्दू विरोध बन कर रह गया है। इसलिए हिन्दू और हिन्दुस्थान की बात करने वालों संगठनों या लोगों से हाथ मिलाने में उन्हें शर्म आती है। जबकि दूसरी ओर जातिवादी, भाषायी, मजहबी और क्षेत्रवादी दलों से गठबंधन करने में उन्हें किंचित भी परहेज नहीं होता। वोट के लालच में ऐसे दल बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता और हिन्दू आक्रमकता जैसे शब्द बोलते हुए राष्ट्रीय संगठनों को ही गाली देने लगते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि भारत के इसी हिन्दू समाज ने मातृभूमि के विभाजन का घोर अपराध करने वाले मुसलमानों को न केवल फिर से भारत में रहने दिया, अपितु उन्हें हर तरफ की सुख-सुविधा और मान-प्रतिष्ठा प्रदान की। राष्ट्रपति से लेकर उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जैसे महत्त्वपूर्ण पद उन्हें दिये। जबकि यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पाकिस्तान के निर्माण में सर्वाधिक योगदान वर्तमान भारतीय क्षेत्र में रहने वाले मुसलमानों का ही था।

यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भारत से टूटकर बना पाकिस्तान और उससे टूटकर बना बंगलादेश आज पंथनिरपेक्ष देश क्यों नहीं है ? पाकिस्तान ने अपने निर्माता मोहम्मद अली जिन्ना द्वारा पाकिस्तान की संविधान सभा में की गयी घोषणाओं को क्यों भुला दिया ? इसी प्रकार बंगलादेश ने भी अपने मुक्तिदाता शेख मुजीबुर्रहमान द्वारा निर्मित संविधान को कूड़ेदान में क्यों फेंक दिया ? इसका उत्तर भारत की हिन्दू परम्परा, मानस और चरित्र में समाहित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तृतीय सरसंघचालक श्री बालासाहब देवरस प्रायः अपने सार्वजनिक भाषणों में कहा करते थे कि जिस दिन भारत में हिन्दू समाज अल्पसंख्यक हो गया, उसी दिन यहाँ न पंथनिरपेक्षता बचेगी

और न ही लोकतन्त्र। एक अन्य भी प्रश्न विचारणीय है कि इस तथाकथित पंथनिरपेक्षता के स्वर हिन्दू समाज के भीतर से ही क्यों उठते हैं ? इतना ही नहीं, तो उन्हें हिन्दू नेता ही क्यों उठाते हैं ? मुस्लिम या ईसाई समाज के नेता अपने समाज के भीतर इन विषयें पर चिंतन-मंथन करने को तैयार क्यों नहीं है ? कुछ ऐसे स्वर उठते भी हैं, तो उन्हें दबा क्यों दिया जाता है ? या फिर उन्हें कठमुल्लों के फतवों के भय से छिपकर क्यों रहना पड़ता है ? मोहम्मद करीम छागला, हमीद दलवई, सलमान रुश्दी, तस्लीमा नसरीन, अनवर शेख आदि को मुख्यधारा का मुसलमान क्यों नहीं माना जाता ?

एकतरफा पहल नहीं

स्पष्ट है कि पंथनिरपेक्षता की पहल एकतरफा नहीं हो सकती। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कांग्रेस अपने जन्मकाल १८८५ से ही इस प्रश्न से जूझ रही है कि मुस्लिम समाज को स्वतंत्रता आंदोलन में हिन्दुओं के साथ सक्रिय कैसे किया जाये ? १९१६ का लखनऊ समझौता तथा १९२० में गांधी जी द्वारा खिलाफत आंदोलन को दिया जाने वाला समर्थन इसी हेतु से किया गया था। पर कांग्रेस अपने इस उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी। बहुत कम मुसलमानों ने ही उसका साथ दिया। १९४६ का चुनाव इसी केन्द्रीय प्रश्न को लेकर लड़ा गया था कि भारत अखंड रहे या उसका विभाजन हो ? ९९ प्रतिशत हिन्दुओं ने अखंड भारत का समर्थन किया, जबकि ९५ प्रतिशत मुसलमानों ने मौलाना आजाद जैसे कांग्रेसी नेता की अपील की उपेक्षाकर जिन्ना द्वारा रखी गयी पाकिस्तान की मांग का समर्थन किया। यह नहीं भूलना चाहिए कि मौलाना आजाद पांचों समय की नमाज पढ़ने वाले, अरबी-फारसी के श्रेष्ठ विद्वान तथा एक सच्चे मुसलमान थे जबकि जिन्ना सूअर का मांस खाने वाला, उर्दू-फारसी न जानने वाला, कभी नमाज न पढ़ने वाला छद्म मुसलमान था।

कुछ लोगों की धारणा थी कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच यह अलगाववादी भावना अंग्रेजों ने फैलाई है। इसलिए एक बार अंग्रेज चले गये तो सब ठीक हो जाएगा। कुछ लोगों का मत था कि देश का विभाजन हो जाने के बाद हिन्दू और मुसलमानों के बीच होने वाले दंगे समाप्त हो जाएँगे। लोकतान्त्रिक भारत में जो मुसलमान रह भी जाएँगे, वे पंथनिरपेक्षता के आदर्शों के प्रति ईमानदार होंगे, पर आजादी के गत ५६ वर्ष का इतिहास उन लोगों की धारणाओं पर पानी फेर चुका है। यद्यपि ऐसे लोग, संगठन तथा राजनीतिक दल आज भी अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं वे आज भी उस कुचक्र में फंसे हैं, जिसके अन्तर्गत अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति बनाकर हिन्दू शब्द को उसके मूल भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अर्थ से हटाकर एक मजहब का रूप दे दिया और इस प्रकार उसे भी मुसलमान तथा ईसाई जैसे मजहबों की श्रेणी में खड़ा कर दिया।

मौलिक अन्तर

भारतीय इतिहास के गहन अध्ययन और अपने सौ से भी अधिक वर्ष के अनुभव से अंग्रेजों ने समझ लिया था कि 'हिन्दू' और 'हिन्दुत्व' एक लम्बी व अखंड ऐतिहासिक प्रक्रिया का नाम है। उसने भारत नामक विशाल भूप्रदेश पर रहने वाले सभी मानव समूहों को उनकी समस्त परम्पराओं और विविधताओं के साथ स्वयं में समाहित कर लिया है। 'अनेकता में एकता, हिन्दू की विशेषता' का यह रहस्य अंग्रेज अपनी तीव्र बुद्धि से बहुत पहले ही समझ गये थे। दूसरी ओर वे यह भी जान गये थे कि मुस्लिम या ईसाई मजहब मूलतः एक राजनीतिक आंदोलन हैं, जिन्होंने भले ही पूजा-पद्धति का मुखौटा पहन रखा हो, पर उनका अंतिम लक्ष्य किसी भी प्रकार से दुनिया में अधिकाधिक भूमि कब्जाकर अधिकाधिक लोगों को अपने झंडे तले लाना है।

दुष्प्रचार

अंग्रेज यह भी समझ गये थे यदि भारत में अधिकाधिक समय तक राज्य करते हुए भारत की धन-सम्पदा का शोषण करना है, तो यह अति आवश्यक है कि भारत के लोग आपस में लड़ते रहें। इसीलिए उन्होंने योजनाबद्ध रीति से भारतीय इतिहास को विकृत तरीके से लिखवाया तथा इस प्रकार के प्रबन्ध किये, जिससे भारत में रहने वाले लोग कभी एक न हो सकें। उन्होंने हिन्दू धर्म के विशाल दायरे में आने वाले सिख, बौद्ध, जैन आदि पंथों को भी मुस्लिम तथा ईसाइयों जैसे मजहबों की श्रेणी में रख दिया। इतना ही नहीं, तो भारत के जन-मन के हित में काम करने वाले समाज सुधारकों, भक्तों, वीरों, वीरांगनाओं, कवि, कलाकारों और साहित्यकारों, यहाँ तक की देवी-देवताओं को भी जाति और क्षेत्र की क्षुद्र सीमाओं में बाँट दिया। इसी क्रम को और आगे बढ़ाते हुए उन्होंने मुसलमानों के दिल में बैठा दिया कि वे भारतभूमि में जन्मे महापुरुषों को छोड़कर मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी, मोहम्मद गोरी, बाबर, तैमूर लंग, औरंगजेब जैसे विदेशी आक्रमणकारियों को अपना महापुरुष मानें, चूँकि ये सब मुसलमान

मजहब को मानने वाले थे।

विश्वव्यापी मुस्लिम समस्या जैसे विषय को डॉ. हेडगेवार, वीर सावरकर, लोकमान्य तिलक और डॉ. अम्बेडकर जैये मनीषियों ने गत शताब्दी में जोर-शोर से उठाया। आज वह अपने विराट और विकराल रूप में भारत ही नहीं, तो पूरी दुनिया के सम्मुख खड़ा है। किसी भी देश में राष्ट्रीय एकता की स्थापना तब तक नहीं हो सकती, जब तक वहाँ के निवासी अपने पूर्वजों और अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से जुड़कर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव न करे। दुर्भाग्य से इस्लाम मजहब मातृभूमि, पितृभूमि, जन्मभूमि... आदि के विचार को मूलभूत रूप से ही खारिज करता है। यहाँ तक कि मुसलमानों के लिए मजहबी समानता की घोषणा भी मृग-मारीचिका सिद्ध हुई है। अब तो वे शिया-सुन्नी-अहमदी आदि सम्प्रदायों में बँट गये हैं। इसीलिए इराक और ईरान में, पाकिस्तान और बंगलादेश में युद्ध होता है, तथा पाकिस्तान में शियाओं की मस्जिदों पर बम फेंके जाते हैं।

विकराल रूप

आज इस प्रश्न पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है कि यदि पंथनिरपेक्षता का अर्थ 'सर्वधर्म समभाव' है, तो अरब के रेगिस्तानों से उपजे मुसलमान और ईसाई जैसे मजहब इसे स्वीकार क्यों नहीं करते ? मुस्लिम देशों में मुसलमान तथा शेष लोगों के लिए अलग-अलग कानून क्यों हैं ? दुनिया के जिन देशों ने मार्क्स की आर्थिक विचारधारा के आधार पर मुस्लिम समस्या को हल करने का प्रयास किया, वे विफल क्यों हो गये ? निस्संदेह इनके उत्तर को समझने से ही हमें 'पंथनिरपेक्षता' की भ्रामक धारणाओं का अर्थ भी समझ में आने लगेगा। हमें यह भी समझ में आ जाएगा कि १९४७ से पूर्व जो मुस्लिम समस्या देश की आजादी के मार्ग में बाधा बनकर खड़ी थी, वही आजादी के बाद भी देश की प्रगति के मार्ग में अवरोधक क्यों बनी है ? मुस्लिम पहचान के संकट के नाम पर खड़ा किया गया द्विराष्ट्रवाद का वह विषधर, जिसने देश का विभाजन करा दिया, आज फिर से अपने विकराल रूप में फन फैलाकर क्यों फुंकार रहा है ?

इस मतिभ्रम का परिणाम है कि जब कभी इस मजहबी पृथकतावाद के विरुद्ध राष्ट्रवाद से ओतप्रोत कोई संगठित स्वर उभरता है तो तुरन्त तथाकथित पंथनिरपेक्ष दल और उनके नेता उसे 'बहुसंख्यक-साम्प्रदायिकता' या 'आक्रामक हिन्दुत्व' कहकर गरियाने लगते हैं। राम मन्दिर आन्दोलन में वे राम को हिन्दुओं के साथ और विदेशी आक्रमणकारी बाबर को मुसलमानों के साथ जोड़ देते हैं। इसी सोच ने इस विषय को इतना उलझा और भटका दिया है कि इसका समाधान कैसे होगा, इसका स्पष्ट उत्तर देना आज कठिन सा लगता है। स्वतंत्रता प्राप्ति और देश विभाजन के बाद यह आशा की जाती थी कि कम से कम अब तो भारतीय नेताओं की सोच में सार्थक परिवर्तन होगा। पर दुर्भाग्य से सरदार पटेल, डॉ. अम्बेडकर, वीर सावरकर और डॉ. मुखर्जी जैसे लोगों के बजाय सत्ता की लगाम जवाहरलाल नेहरू जैसे वामपंथी के हाथ में आ गयी। उन्हीं की 'पंथनिरपेक्ष' सोच के दुष्परिणाम आज भी हम भोगने को विवश हैं।

वोट की राजनीति छोड़ें

भारतीय राजनीति ने कांग्रेस के पचास वर्ष और गैर कांग्रेसियों के पाँच वर्ष का शासन देख लिया है। यह बात सत्य है कि पचास वर्ष में योजनाबद्ध रूप से स्थापित की गई समस्याओं का निदान पाँच वर्ष में करना असंभव है, पर देश की मूलभूत समस्याओं के निदान के बारे में कोई विशेष वैचारिक अन्तर दोनों पक्षों में नहीं लगता। राजसत्ता की व्यावहारिक कठिनाइयों का तर्क देकर बात पर लीपापोती तो अवश्य की जा सकती है पर इससे मूलभूत समस्याओं का समाधान नहीं निकाला जा सकता। इसलिए समय आ गया है कि राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता और पंथनिरपेक्षता जैसे प्रश्नों पर सब लोग वोट की राजनीति से ऊपर उठकर विचार करें। इसी से भारत राष्ट्र फिर से प्रगति के पथ पर बढ़ सकेगा। □

– सहायक सम्पादक, राष्ट्रधर्म मासिक,
राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

हल्दी घाटी के युद्ध के समय अब्दुल कादिर बदायूँनी ने पूछा : दोनों ओर के राजपूतों में भेद कैसे करें ? इस पर मुगल सेनानायक आसफ खाँ ने उत्तर दिया : गोली किसी को भी लगे, दोनों ओर काफिर हैं, वह ही मरेगा और इससे लाभ इस्लाम को होगा।

(मुत्तरवान-उल-तव रीख-अब्दुल कादिर बदायूँनी, खंड २ 'अकबर दि ग्रेट मुगल' में विन्सेंट स्मिथ द्वारा उद्‌धृत)

स्व. भाऊराव देवरस व्याख्यानमाला में वैशाख शुक्ल ११, सं. २०५७ तदनुसार १४ मई, २००० को दिया गया उद्बोधन

'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को देश-निकाला दो

□ डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी

.....मैं श्रीमती सोनिया गांधी के विचारों से सहमत नहीं हूँ। किन्तु जब विवेकानन्द दिवस मनाया जा रहा था तब उन्होंने एक भाषण दिया। लिखित तो वह होता ही है। पर एक वाक्य उसमें बहुत अच्छा था। उन्होंने कहा कि **"हिन्दुत्व के छाते के बिना इस देश में सेक्युलरिज़्म संभव नहीं था।"** यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। इस वाक्य की सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता। **'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'** की हमारी परम्परा सर्व धर्म समभाव, सेक्युलरिज़्म की आधारशिला है। यह व्यापक मैत्री-भाव हिन्दुत्व का हिस्सा है, हिन्दू हेरिटेज अर्थात् कुल-परम्परा का हिस्सा है। कबीर हमें वह तत्त्व देते हैं कि हमारे संविधान का सर्वधर्म समभाव कायम है और रहेगा।

विधिसम्मत नहीं

श्रीमती सोनिया गांधी अपन सास की बहुत भक्त हैं। यह मुझे बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि आप जानते हैं कि सास-बहू के रिश्ते प्रायः अच्छे नहीं होते। श्रीमती इंदिरा गांधी जब प्रधानमंत्री थीं तब उन्होंने संविधान का आमूलचूल परिवर्तन किया। यहाँ तक कि संविधान का प्राक्कथन भी बदल डाला। उसमें उन्होंने पहली बार 'सेक्युलर' शब्द जोड़ा। संविधान का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना पड़ता है। राष्ट्रपति जी द्वारा अधिकृत करने से पहले संविधान किसी विशेषज्ञ को दिखाया जाता है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी और संविधान दोनों को जानने वाले केन्द्र में बहुत कम हैं। हिन्दी जानने वाले बहुत हैं। संविधान जानने वाले बहुत हैं; परन्तु दोनों को जानने वाले कम हैं। इस स्थिति में मुझसे कहा गया कि इसे देखकर प्रमाणित कर दें। मैंने उनके 'हैबियस कार्पस' का कड़ा विरोध किया था। यहाँ तक कि मैंने अपने फार्म हाउस का नाम भी 'हैबियस कार्पस' रख दिया था।

जब मेरे पास संविधान का हिन्दी अनुवाद आया तो उसमें **'सेकुलर'** का अनुवाद **'धर्मनिरपेक्ष'** किया गया था। यह अनुवाद विधिसम्मत नहीं था। मेरे पत्रकार-बन्धु इस शब्द का प्रयोग करते हैं। वे मुझे क्षमा करें, वह भी विधि-सम्मत नहीं है। इसने अपने देश के शत्रुओं का बड़ा उपकार किया है। मैंने उस समय लिखा कि जिसने **'सेकुलर'** का अनुवाद **'धर्मनिरपेक्ष'** किया है उसे न तो भाषा का ज्ञान है, न देश की परम्परा का, न अवधारणा का।

'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को देश-निकाला

इस पर श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुझे बुलाया और कहा, **"क्या तकलीफ है, हमें जल्दी है, प्रमाणित कर दीजिए।"** मैंने उत्तर दिया : **"यह एक ऐसा प्रश्न है कि इसे मैं स्वीकार कर ही नहीं सकता। यदि किसी एक शब्द को देश-निकाला देने की इजाजत दी जाए तो मैं इस 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को देश-निकाला देना पसन्द करूँगा।"** उन्होंने पूछा : **"ऐसी क्या बात है ?"** मैंने उत्तर दिया : **"आप तो धर्म में बड़ी श्रद्धा रखती हैं, आप यह भी जानती हैं कि धर्म का अर्थ होता है– 'कर्त्तव्य' जो करणीय है। जैसे मैं अपने पड़ोसी के साथ सद्व्यवहार करूँ, यह मेरा धर्म है। धर्म के बिना न संविधान रह सकता है, न राज्य। ऐसे राज्य में रहना उचित नहीं है।"** उन्होंने कहा : **"सब चलता है।"** मैंने कहा : **"मैं इसे प्रमाणित करने को तैयार नहीं हूँ।"** इस पर उन्होंने फिर पूछा : **"अच्छा बताइये इसका अनुवाद क्या होगा ?"** मैंने कहा : **"दो शब्द हो सकते हैं– पहला 'पंथनिरपेक्ष'; दूसरा 'सर्वधर्म समभाव'।"** इन्दिरा जी ने **'पंथनिरपेक्ष'** को मान लिया। वही प्रामाणिक संविधान में लिखा हुआ है। वहाँ **'धर्मनिरपेक्ष'** शब्द है ही नहीं। मैं आपसे करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि आप संविधान को पढ़ें। आप **'धर्मनिरपेक्ष'** शब्द लाये कहाँ से ? इस धर्म-धरा पर धर्म से उदासीन होकर कोई कैसे जियेगा ? कर्त्तव्य-बोध से छूटकर कोई कैसे जी सकता है ? किन्तु मालूम नहीं क्यों, लोगों को धर्म के नाम से चिढ़ हो गई है ? सूडो इंटलेक्चुअल्स अथवा छद्म बुद्धिजीवी हैं, जिन्हें परम्परा, धर्म, दर्शन, साहित्य की जानकारी नहीं है। वे शब्दों के जाल में हमको बाँधे हुए हैं।

□

भारतीय मुसलमान हिन्दू राष्ट्र के अंग

□ अनवर शेख

भारत के मुसलमानों को अब इस सच्चाई को भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि जिस देश में उन्होंने जन्म लिया, पालन-पोषण हुआ और अन्ततः जहाँ उन्हें दफनाया गया, वही उनका वास्तविक घर अथवा मातृभूमि है। अतः उसके प्रति उन्हें पूर्ण श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा रखनी चाहिए। उन्हें यह पता होना चाहिए कि पाकिस्तान ने तो भारतीय मुसलमानों के लिए अपने द्वार १९५१ में ही अपनी सीमाओं को सील करके बन्द कर दिया था। अभी भी एक समय के पूर्व बंगाल के २,५०,००० पूर्वी पाकिस्तानी पिछले ३० वर्षों से भी अधिक समय से बंगलादेशी शिविरों में पड़े हुए हैं। वे इसी भूभाग के मूलतः निवासी हैं लेकिन उनके साथ किस प्रकार का निर्मम दुर्व्यवहार उनके सहधर्मियों द्वारा किया जा रहा है। यहाँ तक कि अल्लाह की दया या रहम भी उनसे रूठ कर जा चुकी है।

मुसलमान जन्मतः भारती हैं

अपनी एक पूर्व रचना अथवा लेख में मैं इस बात का समर्थन कर चुका हूँ कि भारतीय मुसलमानों को मताधिकार से इसलिए वंचित कर देना चाहिए क्योंकि उन्होंने पाकिस्तान की माँग करके अपने-आपको शेष भारवासियों से विलग कर लिया था। लेकिन मेरा ऐसा सोचना गलत था क्योंकि राष्ट्रीयता प्रतिशोध अथवा प्रतिहिंसा पर आधारित नहीं हो सकती। भारत के मुसलमान वंश, भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दू राष्ट्र के अंग हैं। अतः मुसलमानों को यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि वे जन्मतः भारती हैं और अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को पूर्ण किये बगैर वे किसी तरह के अधिकारों का दावा नहीं कर सकते।

राष्ट्रद्रोह

अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय यह है कि भारत सरकार अपने देशवासियों के प्रति अपने राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह अभी तक नहीं कर सकी है। एक राष्ट्र, एक कानून– यह सर्वमान्य सार्वदेशिक नियम है। समान नागरिक संहिता को लागू न करके भारत सरकार द्विराष्ट्रवाद सिद्धान्त की समर्थक बन गई है। यह तो राष्ट्रद्रोह के समान है। भारत जैसे विशाल आकार वाले देश के लिए वस्तुतः यह अत्यन्त लज्जा की बात है कि वह अभी भी विदेशी कानून का पालन कर रहा है जबकि वह भारत को आज भी दारुल-हरब मानता है।

वस्तुतः बिना किसी भेदभाव के समान नागरिक कानून देश के सभी व्यक्तियों पर समान रूप से अवश्य लागू होना चाहिए।

कठोर कार्रवाई आवश्यक

भारत के मुसलमान हिन्दू राष्ट्रवाद के अंग हैं। उनका अलग अस्तित्व भारत देश और उसके निवासियों के लिए चिन्ता का विषय है। भारतीय उपमहाद्वीप में पंथ के माध्यम से जनता को मूर्ख बनाकर अपने निहित स्वार्थ पूरे करना राजनीतिक नेताओं के लिए सामान्य बात है। यह बुरी परम्परा कर्नाटक में पुनः अपना सिर उठा रही है। पिछले दिनों हुबली में आहूत मिल्ली संसद के प्रस्ताव खतरे की घंटी हैं। यदि सरकार समय रहते कठोर कार्रवाई नहीं करती तो यह मुस्लिम लीग की उत्तराधिकारी बनकर भारत के लिए संकट का सबब बन सकती है। □

(पृष्ठ ८५ का शेष)

अल्पसंख्यकवाद अथवा मुस्लिम तुष्टिकरण बनी पंथनिरपेक्षता

मुस्लिमपरस्ती के दुष्परिणाम

संक्षेप में अल्पसंख्यकों की बढ़ती संख्या की समस्या अब कहीं अधिक भयावह हो गई है। गोधरा हत्याकाण्ड की घटना पुरानी नहीं हुई है। संसद पर हमले का प्रयास हुआ। मन्दिरों में घुस कर निःशस्त्र हिन्दुओं को मारा जा रहा है। जम्मू-कश्मीर में हिन्दू-सिख पुरुषों, महिलाओं, वृद्धों और बच्चों की सामूहिक हत्याएँ हो रही हैं। यह सब स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर आज तक की केन्द्र और राज्य सरकारों की अल्पसंख्यक या मुस्लिमपरस्त नीति का दुष्परिणाम है।

हिन्दू जनता में जागृति आ रही है। परन्तु देश और प्रदेशों की सरकारें सो रही हैं। तमिलनाडु में मतान्तरण पर रोक का कानून बनते ही हो-हल्ला मच गया। हिन्दू संगठन तो संघर्ष और प्रयास कर ही रहे हैं, परन्तु आजीवन कांग्रेसी रहे श्री वसन्त साठे सरीखे बुजुर्ग नेता भी इस स्थिति से व्यथित हो उठे हैं। वीर सावरकर के चित्र को संसद कक्ष में लगाने के कांग्रेस के विरोध की निन्दा करते हुए उन्होंने माँग की है कि संविधान में संशोधन करके भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित किया जाय और भारतवासियों को हिन्दू सम्बोधित किया जाय। प्रश्न यह है कि क्या इससे कांग्रेस सहित सभी अल्पसंख्यकवादी दल समय रहते चेतेंगे। □

'पंथनिरपेक्षता' और समान नागरिक संहिता

□ डॉ. गौरीनाथ रस्तोगी

संविधान सभा की कार्यवाही का गंभीरता से अध्ययन-मनन और विश्लेषण करने से यह तथ्य सूर्य की तरह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान निर्माता इस देश को **'एक राष्ट्र और एक जन'** का गणराज्य बनाने के लिए कृतसंकल्प थे। इसी कारण मुस्लिम लीग के सदस्यों द्वारा जब एक संशोधन के माध्यम से संविधान सभा में मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिये जाने की माँग उठाई गई तब उसका जोरदार शब्दों में विरोध करते हुए तत्कालीन उपप्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री सरदार बल्लभभाई पटेल ने संविधान सभा में स्पष्टतम शब्दों में कहा था कि **"जब पाकिस्तान मान लिया गया तब कम से कम यह भी मान लिया गया था कि शेष भारत में, ८० प्रतिशत भारत में एक राष्ट्र होगा और यहाँ भी दो राष्ट्रों की बात करने का कोई प्रयत्न न होगा।"** अतः संविधान सभा ने इस देश को एक राष्ट्र और एक जन वाला राज्य को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से संविधान के **अनुच्छेद ४४** में **समान नागरिक संहिता** (Uniform Civil Code) पारित किये जाने की व्यवस्था की जिससे भारत सही अर्थों में एक पंथनिरपेक्ष राज्य बन सके।

अनुच्छेद ४४ की व्यवस्था

उक्त अनुच्छेद में कहा गया है कि **"राज्य भारत के सम्पूर्ण राज्य-क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों के लिए एक समान सिविल या नागरिक संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।"** फलस्वरूप संविधान सभा के एक सदस्य **तजम्मुल हुसैन** ने अनुच्छेद ४४ के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों की व्यवस्था में अपने मजहब, मत-पंथ का प्रचार करने की छूट देने का सख्त विरोध किया था। उन्होंने यह भी माँग की थी कि संविधान में स्पष्ट तौर पर यह लिख दिया जाना चाहिए कि **"मजहब, पंथ या मत पर आचरण निजी तौर पर होगा।"** उनका यह भी कहना था कि भारत को पूर्ण रूप से पंथनिरपेक्ष राज्य बनाने के लिए यह जरूरी है कि **"कोई भी व्यक्ति न तो कोई ऐसा चिह्न धारण करेगा और न ऐसा नाम ही रखेगा और न ऐसे कपड़े पहनेगा जिससे यह पता लग सके कि उसका मत-पंथ क्या है ?"**

भेदभाव न करने का अभिवचन

कहने का तात्पर्य यह है कि संविधान निर्माताओं की मूल भावना इस देश को पूर्ण रूप से एक पंथनिरपेक्ष राज्य बनाने की थी और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने संविधान में अनुच्छेद ४४ के माध्यम से समान नागरिक संहिता बनाए जाने का प्रावधान किया था। किन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि २६ नवम्बर, १९४९ को संविधान पारित और २६ जनवरी, १९५० को उसके लागू होने के तुरन्त बाद से वोट की राजनीति के तहत उसको लागू न करने की हठधर्मिता भारतीय शासन अपने प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के समय से ही कर रहा है। कांग्रेस संगठन, कांग्रेस संसदीय दल, वामपंथी और राष्ट्रतोड़क कम्युनिस्ट तथा अन्य तथाकथित पंथनिरपेक्षतावादियों ने अपने दुष्प्रचार द्वारा यहाँ तक कहना प्रारम्भ कर दिया कि समान नागरिक संहिता लागू कराने की माँग करने वाले दल, राजनेता, व्यक्ति और संगठन फिरकापरस्त या साम्प्रदायिक हैं। मत-पंथ को देश के सार्वजनिक जीवन से अलग रखने की माँग करने वाले ही अब यह गुहार लगाने लगे कि समान नागरिक संहिता तब तक लागू नहीं की जा सकती जब तक कि भारत के मुसलमान समाज द्वारा इसकी पुरजोर माँग न की जाए। अतः उस पर आश्चर्य होने के साथ-साथ दया भी आती है। इसका कारण यह है कि प्रकारान्तर से ये तत्त्व देश के सार्वजनिक जीवन में पंथनिरपेक्षता को तिलांजलि देकर मत-पंथ का समावेश उसमें कर रहे हैं। इतना ही नहीं, वह संविधान द्वारा घोषित एक राष्ट्र और एक जन की संकल्पना पर भी कुठाराघात कर रहे हैं क्योंकि मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत समानता और स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत की गई व्यवस्था में असंदिग्ध शब्दों में भारत के समस्त नागरिकों को समान माना गया है और उनमें वंश, नस्ल, लिंग, मजहब, भाषा, निवास स्थान आदि किसी भी आधार पर भेदभाव न करने का अभिवचन दिया गया है।

आपत्तिजनक क्यों ?

अनुच्छेद ४४ वस्तुतः इस संकल्पना और मान्यता पर आधारित है कि सभ्य समाज में मजहब और वैयक्तिक विधि (Personal Law) के बीच कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। १९९५ के **सरला मुद्‍गल बनाम भारत संघ** मुकदमे में उच्चतम न्यायालय द्वारा इसी तथ्य की पुष्टि की गई है। (संदर्भ सरला मुद्‍गल बनाम भारत संघ १९९५-३ एस.सी.सी. ६३५)।

फलतः राज्य द्वारा हिन्दू और मुसलमानों में विभेद किया जाना अन्याय है। हिन्दुओं की पारम्परिक विधि को आधुनिक रूप देकर उसका संहिताकरण कर दिया गया है। जो अधिकार हिन्दू, ईसाई या अन्य मतावलम्बी महिलाओं को प्राप्त हैं उनसे मुसलमान महिलाओं को वंचित करना उनके साथ अन्याय है। अब जबकि अपराध या साक्ष्य से संबंधित मामलों में अब समस्त देशवासियों पर एक समान विधि लागू होती है और उसकी परिधि में मुसलमान भी आते हैं तब वैयक्तिक विधि से संबंधित विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, दत्तक व्यवस्था आदि के मामलों में सम्पूर्ण देशवासियों के लिए एक समान विधि या कानून लागू किया जाना कैसे आपत्तिजनक हो सकता है ?

आधारभूत तत्त्व

ध्यान रहे पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान के आधारभूत तत्वों में से एक है। उसका मुख्य उद्देश्य इस राष्ट्र के समस्त निवासियों में भावात्मक एकता कायम करके उसे सुदृढ़ बनाना है। समान नागरिक संहिता को पारित न करने के फलस्वरूप ही देश में विभेदकारी शक्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। इसका कारण यह है कि दान, तलाक, गुजाराभत्ता, संरक्षकत्व, पति के निधन की स्थिति में श्वसुर के जीवन-काल में उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकार, बाबा की सम्पत्ति में उत्तराधिकार, बहुविवाह आदि के मामलों में समस्त देशवासियों को समान नहीं समझा गया है। इसके फलस्वरूप देश के सामाजिक जीवन में जो गम्भीर विषमताएँ और विसंगतियाँ खड़ी होती हैं, वे राष्ट्रीय एकता, एकात्मता और एकजुटता की प्राप्ति में सबसे बड़ा रोड़ा हैं। यदि समस्त देशवासियों के लिए समान नागरिक संहिता के माध्यम से एक समान विधि-व्यवस्था लागू कर दी जाए तो सभी लोग राष्ट्र की मुख्य धारा में आ जायेंगे और राष्ट्र में एकता, एकात्मता और एकजुटता प्राप्त करना सरल हो जाएगा। यहाँ पर स्पष्ट रूप से यह समझ लेना चाहिए कि समान नागरिक संहिता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि हिन्दू विधि सभी देशवासियों पर लागू होगी। इसका अर्थ यह है कि एक समान नागरिक संहिता अधिनियमित की जाएगी जो समस्त देशवासियों पर लागू होगी।

शपथ का उल्लंघन

समान नागरिक संहिता के विरोधी यह तर्क भी देते हैं कि राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आने वाला **अनुच्छेद ४४** न्यायपालिका की परिधि में नहीं आता है, अतः राज्य समान नागरिक संहिता को अधिनियमित करने के लिए बाध्य नहीं है।

लेकिन यह तर्क देने वाले इस सच्चाई को भूल जाते हैं कि हमारे समस्त जन-प्रतिनिधि अथवा सांसद (विधायक भी) संविधान के अनुपालन और संरक्षण की शपथ लेकर ही अपना कार्यभार सँभालते हैं। इसका आशय यह है कि उन्होंने सम्पूर्ण संविधान के अनुपालन और संरक्षण की शपथ ग्रहण की है। उसके किसी भाग की नहीं। इस पृष्ठभूमि में यदि उक्त तर्क को स्वीकार किया जाएगा तो हमारे देश के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री से लेकर समस्त संसद-सदस्य संविधान के अनुपालन और संरक्षण की झूठी शपथ लेने के दोषी करार दिये जायेंगे। स्मरण रहे कि सांविधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रपति भी संसद का अविभाज्य अंग है।

उच्चतम न्यायालय के निर्देश

यदि **अनुच्छेद ४४** की शब्दावली को ही अक्षरशः ले लिया जाए तब भी प्रश्न उठता है कि विगत ५३ वर्षों में भारत की सार्वभौम और संप्रभु संसद ने समान नागरिक संहिता के अधिनियमन की दृष्टि से कौन से पग उठाए हैं ? यही कारण है कि उच्चतम न्यायालय ने **अहमद बनाम शाह बानो** (१९८५) २ एस.सी.सी. ५५६, **जार्डन बनाम चोपड़ा** (१९८५) ३ एस.सी.सी. ६२ और **सरला मुद्‌गल बनाम भारत संघ** (१९९५) ३ एस.सी.सी. ६३५ में केन्द्र सरकार को बार-बार सचेत किया है कि वह समस्त देशवासियों के लिए एक समान नागरिक संहिता अधिनियमित कर उसे क्रियान्वित करे।

अपने इन्हीं महत्त्वपूर्ण निर्णयों में एक बार तो उच्चतम न्यायालय ने केन्द्र सरकार से यहाँ तक प्रश्न पूछा था कि वह यह बताए कि इस संविधान के लागू हो जाने के बाद से इतना सुदीर्घ कालखण्ड व्यतीत हो जाने के उपरान्त भी उसने समान नागरिक या सिविल संहिता की रचना करके उसे अब तक लागू क्यों नहीं किया है ?

सहमति का मुद्दा बेबुनियाद

पुनः, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि **अनुच्छेद ४४** के प्रावधान या उपबन्ध में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं की गई है कि समान नागरिक संहिता का अधिनियमन भारत के मुसनमान समाज की सहमति के बाद ही किया जाएगा। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निदेशक सिद्धान्त का क्रियान्वयन भारतीय जनसंख्या के १२ प्रतिशत भाग की दया पर छोड़ा नहीं जा सकता। यह सांविधानिक विधि के समस्त सिद्धान्तों के प्रतिकूल और उनका हनन है। इसके साथ ही राज्य के नीति निर्देशक

सिद्धान्तों से संबंधित **अनुच्छेद ३७** में स्पष्ट रूप से घोषणा की गई है कि **"इस भाग में समाहित उपबन्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे, किन्तु फिर भी इनमें अभिकथित तत्त्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि निर्माण में इन तत्त्वों को लागू करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।"** संविधान की उद्देशिका का प्रारम्भ भी **"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए"** ...... से होता है, विभिन्न जातीय समूहों से नहीं। इसका स्पष्ट आशय है कि संविधान निर्माताओं ने **'एक राष्ट्र, एक जन'** के सिद्धान्त की उद्घोषणा करते हुए ही संविधान का प्रारूप **"अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित"** किया है। संभवतः इन सांविधानिक व्यवस्थाओं को दृष्टि में रखकर उच्चतम न्यायालय ने सरकार से समान नागरिक संहिता के अधिनियमन और क्रियान्वयन करने का मुद्दा अत्यंत गंभीरता के साथ उठाया था।

न्यायाधीशों के कथन

इतना ही नहीं, मुम्बई उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश विद्वान् न्यायमूर्ति **मोहम्मद करीम छागला** ने स्पष्ट किया था कि **"अनुच्छेद ४४ एक आज्ञापरक प्रावधान है जो सरकार को आबद्ध करता है। .... संविधान संपूर्ण देश के लिए अधिनियमित किया गया था। वह संपूर्ण देश पर बाध्यकारी है और प्रत्येक वर्ग तथा संप्रदाय को उसके उपबंधों और निदेशों को स्वीकार करना होगा।"** इसी भाँति भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश विद्वान् न्यायमूर्ति **एम.यू. बेग** ने इस विषय में लिखा है कि **"विवाह और उत्तराधिकार का जो नियम किसी हिन्दू या सिक्ख कुटुम्ब के लिए न्यायपूर्ण है... वह किसी अन्य कुटुम्ब के लिए अन्यायकारी है क्योंकि वह किसी अन्य मजहब को मानता है।**

इस्लामी देशों की स्थिति

हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि बहुत से मुसलमान देशों ने मुसलमानों के वैयक्तिक कानून में आवश्यक संशोधन कर उन्हें आधुनिक बनाया है। बहुत से इस्लामी मतावलम्बी देशों ने मुसलमान पुरुषों के लिए चार के स्थान पर एक विवाह का कानून बनाकर उसे लागू किया है। उन्होंने मुसलमानों के वैयक्तिक विधि के अन्य अनेक नियम भी बदल दिये हैं। इन देशों में ईरान, मिस्र, मोरक्को, ट्यूनीशिया, सीरिया, जोर्डन, तुर्की, पाकिस्तान आदि देश शामिल हैं। **न्यायमूर्ति छागला** ने तो मुसलमानों में प्रचलित बहुविवाह की व्यवस्था को नारी जाति का अपमान बताया था। इतना ही नहीं, इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, चीन, रूस आदि देशों में रहने वाले मुसलमान अपने विवाह, तलाक, दत्तक-ग्रहण और उत्तराधिकार आदि मामलों में वहाँ के राष्ट्रीय कानूनों से शासित होते हैं, इस्लामी वैयक्तिक विधि से नहीं।

ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि भारत में ही समान नागरिक संहिता के अधिनियमन और तदुपरान्त उसके क्रियान्वयन का विरोध क्यों किया जा रहा है ? हम यह भी देखते हैं कि इसको व्यावहारिक रूप न दिये जाने से जातिवादी, मजहबी वोट बैंक की राजनीति देश में फल-फूल रही है और उससे राष्ट्र की एकता, एकात्मता, एकजुटता और अखंडता को गंभीर खतरा उत्पन्न हो रहा है। इस्लामी आतंकवाद को बढ़ाने में वह बहुत सहायक रहा है। अतः अब समय आ गया है जबकि एक क्षण का भी विलम्ब न करते हुए हमारे राजनीतिक कर्णधारों को समान नागरिक संहिता का अधिनियमन और फिर उसका क्रियान्वयन करने की दिशा में प्रभावशाली पग उठाना चाहिए अन्यथा मौलाना खालिद रशीद निजामुद्दीन, मोहम्मद फिरंगी जैसे मजहबी नेता १२-१३ वर्ष की आयु की मुसलमान लड़कियों के विवाह का समर्थन करते रहेंगे जिसे आज का आधुनिक सभ्य समाज स्वीकार करने को कभी भी तैयार नहीं होगा।

□

उत्थान की कहानी

पंथनिरपेक्षतावादी नेता हरिजनों व गरीबों के उत्थान की केवल बात ही करते हैं। ५६ वर्ष में उनके कल्याण के नाम पर हजारों करोड़ रुपए खर्च किये गये पर नैतिकता के अभाव में उसका अधिकतर भाग स्वार्थी नेताओं के पेट में चला गया, पंचवर्षीय योजनाएँ असफल हुईं, देश पर कर्ज बढ़ता गया और वह गरीब होता गया।

भारत की पंथनिरपेक्षता को आग लगाते पाकिस्तानी मदरसे

□ अर्जुन देशप्रेमी

पाकिस्तान पर आतंकवादियों को शह देने के आरोप अब भारत ही नहीं, पूरी दुनिया लगाने लगी है। सवाल उठता है कि आखिर पाकिस्तान में ऐसा क्या है कि आतंकियों की नई खेप वहीं तैयार हो रही हैं ? इसके साथ एक सवाल यह भी है कि क्या सचमुच पाकिस्तान के सभी शासक आतंकियों को दिल से प्रश्रय देते रहे हैं या फिर उनकी कोई बड़ी मजबूरी है जो वे चाहकर भी आतंकवाद को रोक नहीं पा रहे हैं ? दरअसल इसके पीछे पाकिस्तान की वह मदरसा संस्कृति है जिसने वहाँ के उन हुक्मरानों को भी बेबस कर रखा है जो दिल से चाहते हैं कि पाकिस्तान इस सबसे उबरकर नयी पहल करे। अफगानिस्तान में जब रूसी फौजों ने कदम रखा तब कम्युनिज्म के बढ़ते खतरे को भांप अमेरिका ने पाकिस्तान के सिर पर हाथ रखा। भारत-रूस दोस्ती व भारत से पाकिस्तान के खराब रिश्ते की बुनियाद पर पाकिस्तान के साथ दोस्ती कर रूसी फौजों को खदेड़ने के लिए जेहादियों की फौज खड़ी करने के लिए अमेरिका ने पाकिस्तान को तैयार कर लिया।

पाकिस्तान के तत्कालीन फौजी हुक्मरान जनरल जिया उल हक ने ऐसे जेहादियों की फौज को तैयार करने का जिम्मा मदरसों को सौंपा और उन्हें भारी धन उपलब्ध कराया जो जकात के रूप में जिया सरकार को मिलता था। अमेरिका से प्राप्त होने वाला धन भी इस कार्य में खर्च किया गया। यही कारण था कि पाकिस्तान में अफगानिस्तान सीमा के पास के इलाकों में मदरसों की बाढ़ सी आ गई। पाकिस्तान ने लम्बे अरसे तक भारत के खिलाफ जंग की मंशा से रक्षा बजट पर जो खर्च किया उसके कारण वह शिक्षा पर अपनी कुल आमदनी का २ प्रतिशत भी खर्च नहीं कर पाता। पाकिस्तान में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण इस दो प्रतिशत का लगभग चौथाई हिस्सा भी धरातल पर नहीं पहुँचता। जाहिर है कि इस स्थिति में वहाँ के सरकारी स्कूलों की स्थिति बद-से-बदतर होती गई। इसके विपरीत पाकिस्तान में एक तबका ऐसा भी था जिसने उम्दा स्कूलों की स्थापना आरम्भ की जहाँ फीस इतनी अधिक थी कि आम आदमी अपने बच्चों को वहाँ पढ़ा ही नहीं सकता था। इस हालात में जो मदरसे खुले उन्होंने न सिर्फ निःशुल्क शिक्षा की बात कही, वरन् किताब और कापियों के साथ बच्चों को खाने, रहने, और वजीफे देने की घोषणाएँ भी कर डाली। मदरसों के मंसूबों से बेपरवाह आम पाकिस्तानी ने अपने बच्चों को इन मदरसों में भेजना आरम्भ किया। पाकिस्तान की तत्कालीन सरकारों को यह भी पता नहीं चला या उन्होंने यह जानने की कोशिश नहीं की कि ये मदरसे किस तरह की शिक्षा दे रहे है ? ऐसे में ये मदरसे लगातार ताकतवर होते चले गये। इन मदरसों में हथियार चलाने के प्रशिक्षण भी दिये जाने लगे। आजादी के समय पाकिस्तान में जहाँ मदरसों की संख्या १४७ थी, वहीं वर्ष २००० में पंजीकृत मदरसों की संख्या ११००० से भी ज्यादा थी। एक रिपोर्ट के अनुसार पाकिस्तान में गैर-पंजीकृत मदरसों की संख्या लगभग ५०००० हजार है। अर्थात करीब ४०००० ऐसे मदरसे हैं जो पंजीकृत नहीं हैं और उन पर पाकिस्तान की सरकार या प्रशासन को कोई नियंत्रण नहीं हैं।

इन मदरसों में विज्ञान या गणित की पढ़ाई नहीं होती। इसकी जगह इनमें सिर्फ जेहादी मानसिकता पैदा करने वाली पढ़ाई के साथ कुरान रटायी जाती है। मदरसों से शिक्षा पाने के बाद वहाँ से निकले युवक यदि कुछ करने की स्थिति में होते हैं तो यह कि मस्जिदों में नौकरी कर लें या शादी-ब्याह सम्पन्न कराने का काम करें। दिक्कत यह है कि पाकिस्तान में उस रफ्तार से मस्जिदों का निर्माण नहीं हो सका जिस रफ्तार से मदरसों से युवक निकले। वैसे पाकिस्तान के अनेक मदरसे ऐसे भी हैं जहाँ सब कुछ ठीक-ठाक है, पर ज्यादातर के बारे में पढ़े-लिखे पाकिस्तानियों का मानना है कि वे आतंकियों को पैदा करते हैं। ऐसे लोग खुलेआम स्वीकार करते हैं कि ये मदरसे सरकार के वश में नहीं हैं। इनके अपने कायदे-कानून हैं। अगर पाकिस्तान मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट २००१ को सही माने तो साफ होता है कि वहाँ के मदरसों में से एक तिहाई में सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता है और ये मदरसे अपने छात्रों को लड़ने के लिए दूसरे स्थानों पर भेजते हैं। आयोग की रिपोर्ट के अनुसार इन छात्रों के माता-पिता को भी यह मालूम नहीं होता कि उनके बच्चों को जेहादी जंग में झोंका गया है। अफगानिस्तान से आगे क्यों बढ़ा पाकिस्तानी मदरसों का आतंक ? इसके पीछे बहुत ही सामान्य तर्क है। जब रूस को अफगानिस्तान से अपनी फौजों को वापस बुलाना पड़ा तो इसे जेहादियों ने अपनी विजय करार दिया। मदरसों के आकाओं को लगा कि जब वे रूस जैसी महाशक्ति को परास्त करने में सफल रहे तो किसी को भी झुकाने में सफल हो सकते हैं।

इस बढ़े मनोबल के कारण ही इन्होंने अपने कदम कश्मीर और चेचन्या की ओर बढ़ाये। इसके आलावा एक बार रूस के पीछे हटने के बाद इन्हें दूसरे ठिकाने की तलाश थी।

यदि ये मदरसे यहीं रुक जाते तो इनके अस्तित्व पर ही संकट आने लगता। ऐसे में इन्होंने नये स्थान तलाशे और उन स्थानों को निशाना बनाया जहाँ बहुतायत में मुस्लिम आबादी तो थी ही, विवाद की गुंजाइश भी थी। इसी के मद्देनजर कई पाकिस्तानी शासकों ने भी भारत के प्रति अपने कुत्सित इरादों को कामयाब बनाने के लिए इनका पूरा उपयोग करना आरम्भ किया। पर कई ऐसे पाकिस्तानी हुक्मरान भी थे जो असलियत से वाकिफ होने के बाद इन पर लगाम कसने की तैयारी कर रहे थे। जैसे ही इसकी भनक कट्टरपंथियों को लगी उनकी विदाई कर दी गई। स्वयं पाकिस्तानी प्रेस के एक बड़े वर्ग का मानना है कि इनकी अनदेखी कर पाकिस्तान में कोई शासन चला ही नहीं सकता है। ऐसे में ये मदरसे ही अब पाकिस्तानी शासकों के लिए नासूर बनते जा रहे हैं और उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि इन पर किस तरह से काबू पाया जाये ? ११ सितंबर की घटना के बाद बदली हुई परिस्थितियों में तो यह बात और स्पष्ट हुई है। पाकिस्तान की एक बड़ी मजबूरी अमेरिका के इशारे पर नाचने की है। पर इस्लामी आतंकववाद से परेशान अमेरिका अब यह चाहता है कि पाकिस्तान इन पर नियंत्रण करे। इस्लामी आतंकवाद से परेशान पाकिस्तान का एक और मित्र चीन भी यह चाहता है कि पाकिस्तान इन पर लगाम कसे, क्योंकि चीन के कई प्रांतों में इस्लामी आतंकवाद ठीक उसी तरह से नासूर बन गया है जिस तरह कश्मीर और चेचन्या में।

सम्भवतः यही कारण है कि अफगान युद्ध के समय आतंकवाद पर नियंत्रण के तहत वर्तमान फौजी शासक जनरल परवेज मुशर्रफ सबसे पहले इन्हीं मदरसों पर बरसे और उन पर नकेल कसने के उद्देश्य से एक के बाद एक उपायों की घोषणा भी की। मदरसों पर नकेल कसने की कवायद का एक प्रमुख कारण स्वयं पाकिस्तान के एक बड़े तबके की सोच में आया परिवर्तन भी है। इस तबके का मानना है कि यह आतंकवाद एक दिन उन्हें कहीं का नहीं छोड़ेगा। बावजूद इसके अभी तक इन मदरसों पर कोई असर नहीं पड़ा है। वे अपने को बदलने को तैयार नहीं है। पाकिस्तान सरकार दिखावे के लिए मदरसों पर लगाम लगाने की बातें तो कर रही है, पर हकीकत में सब कुछ वैसा ही चल रहा है जैसा ११ सितंबर २००१ से पहले चल रहा था। □

जम्मू-कश्मीर राज्य का पुनर्गठन और सेकुलरवाद

(पृष्ठ ७७ का शेष)

सामने उनकी चली नहीं और जम्मू कश्मीर राज्य पहले शेख अब्दुल्ला और बाद में उनके बेटे फारूख अब्दुल्ला के सत्ता काल में तेजी से एक सेकुलर राज्य के स्थान पर मजहबी इस्लामी राज्य बनने लगा।

शेख अब्दुल्ला और उसके बाद के उस राज्य के सभी कश्मीरी मुस्लिम शासकों का यह सतत प्रयत्न रहा है कि जम्मू और लद्दाख क्षेत्र को साम्प्रदायिक आधार पर बाँट कर कश्मीर घाटी और इसके साथ लगे पीर पंजाब पर्वत के दक्षिण में स्थित जम्मू के क्षेत्र को मुस्लिम बहुल क्षेत्र बनाकर विशाल इस्लामी कश्मीर राज्य का निर्माण किया जाय। जम्मू के मुस्लिम बहुल भाग में बसे अधिकतर मुसलमान कश्मीरी मूल के हैं इसलिए यह इलाका इस्लामी आतंकवाद का शिकार बना हुआ है और योजनाबद्ध रूप से उसे हिन्दुओं से खाली कराया जा रहा है।

पुनर्गठन एकमात्र उपाय

इस सेकुलरवाद विरोधी योजना की एकमात्र प्रभावी काट जम्मू-कश्मीर राज्य का भौगोलिक और इतिहास के आधार पर पुनर्गठन करके कश्मीर घाटी और जम्मू को हिन्दुस्तान के अन्तर्गत पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाना और लद्दाख की केन्द्रशासित प्रदेश बनाना है।

इस प्रकार के पुनर्गठन के बाद जम्मू राज्य और लद्दाख में तो सेकुलरवाद की रक्षा होगी ही और वहाँ सेकुलरवाद के सभी तकाजों को कार्य रूप दिया जा सकेगा।

यदि कश्मीर घाटी में निकाले गये लगभग ४ लाख हिन्दुओं के पुनर्वास की व्यवस्था हो जाय तो कश्मीर घाटी को भी पुनः सेकुलर राज्य बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास हो सकता है। अन्यथा कश्मीर राज्य खंडित हिन्दुस्तान में मुस्लिम बहुल राज्य बना रहेगा और पाकिस्तान इसे हस्तगत करने और पाकिस्तान में शामिल करने का प्रयत्न करता रहेगा। परन्तु जम्मू और लद्दाख के अलग राज्य बनने और वहाँ के प्रशासन पर इस्लामवादी कश्मीरियों की पकड़ कम होने से पाकिस्तान के मनसूबे के पूरा होने में प्रभावी रुकावट खड़ी की जा सकेगी।

ऊपर दिये गये तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कश्मीर में सेकुलरवाद को बचाने और जम्मू तथा लद्दाख को भारत के अन्य राज्यों की तरह पंथनिरपेक्ष राज्य बनाये रखने और पाकिस्तान के मनसूबों को प्रभावी ढंग से काटने के लिए जम्मू-कश्मीर राज्य का भौगोलिक और इतिहास के आधार पर पुनर्गठन करना न केवल हालात का तकाजा और समय की आवश्यकता है अपितु वहाँ सही अर्थ में सेकुलरवाद को व्यावहारिक रूप से जीवित रखने के लिए भी अनिवार्य है।

क्या सेकुलरवाद के नाम पर साम्प्रदायिकता और मुस्लिमपरस्ती का खेल खेलने वाले ऐसा होने देंगे, इसका उत्तर समय ही दे पायेगा। □

जानकारियों का ये उपहार
जीवन की खुशियाँ रखे बरकरार

एच.आई.वी./एड्स से बचाव के उपाय

- संयमित व्यवहार अपनायें।
- जीवन-साथी के प्रति वफादार रहें।
- कण्डोम का इस्तेमाल करें।
- जाँचा हुआ खून इस्तेमाल करें।
- नयी या २० मिनट उबाली सुई / सिरिंज का इस्तेमाल करें।

उत्तर प्रदेश राज्य एड्स नियन्त्रण सोसाइटी, लखनऊ

उपलब्धियाँ एवं विकास
(विगत एक वर्ष)

शैक्षिक विकास

1. वर्ष 2002 सत्र से इंजीनियरिंग एवं तकनीकी संस्थान के अन्तर्गत।

अ- इन्फॉर्मेशन टेक्नालाजी, इलेक्ट्रानिक्स एवं इन्स्ट्रुमेंटेशन तथा मैकेनिक इंजीनियरिंग की नई शाखाओं में पठन-पाठन।

ब- बी0फार्मा पाठ्यक्रम प्रारम्भ।

स- इन्वायरमेंटल साइंस, अप्लाइड माइक्रोबायोलाजी, अप्लाइड बायोकेमेस्ट्री, एग्रो बिजनेश, ई0 बिजनेश सहित कुल 11 पाठ्यक्रमों का संचालन इसी सत्र से प्रारम्भ।

2. पूर्व संचालित पाठ्यक्रमों के लैब, वर्कशाप आदि अद्यतन कराये गये।
3. खाली पड़े शैक्षिक पदों को भरने हेतु साक्षात्कार शीघ्र।

निर्माण सम्बन्धी कार्य

1. 104 की क्षमता का महिला छात्रावास बनकर पूर्ण।
2. 100 की क्षमता का पुरुष छात्रावास बनकर पूर्ण।
3. टाइप-3 के 12 फ्लैट एवं टाइप-2 के 36 फ्लैट के 3 भवन बनकर पूर्ण।
4. विश्वविद्यालय प्रशासनिक भवन का 'सी' ब्लाक बनकर पूर्ण।
5. टाइप-4 के 4 एवं टाइप-3 के 2 अन्य भवनों का निर्माण।
6. विश्वविद्यालय का मुख्यद्वार (मेनगेट) का

निर्माणाधीन कार्य

1. संगोष्ठी भवन (क्षमता) 1000 (एक हजार)।
2. केन्द्रीय पुस्तकालय।
3. शिक्षक अतिथि भवन।
4. इलेक्ट्रिकल, इंजीनियरिंग, मैकेनिकल इंजीनियरिंग तथा कम्प्यूटर सांइस एण्ड इंजीनियरिंग विभागों के भवनों का निर्माण।
5. इंजीनियरिंग संस्थान के 360 छात्रों की क्षमता के नए छात्रावास का निर्माण।
6. ओवर हेड (पानी की टंकी) का निर्माण।
7. टाइप-2 के 12, टाइप-2 के 1 फ्लैट का निर्माण।
8. ड्राइवर आवास एवं बाउण्ड्रीवाल का निर्माण।

यथाशीघ्र प्रारम्भ किये जाने वाले निर्माण कार्य

1. छात्र सुविधा केन्द्र।
2. बी. फार्मा भवन।
3. स्टेडियम का निर्माण।
4. द्वितीय महिला छात्रावास का निर्माण।
5. टाइप-2 के एक भवन का निर्माण।

अन्य उपलब्धियाँ

1. कम्प्यूटर केन्द्रों का निर्माण।
2. इण्टरनेट सेवा का प्रारम्भ।
3. 14 राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार एवं कार्यक्रमों का आयोजन।

मतान्तरण विरोधियों की आलोचना क्यों ?

□ एम.एन.राव

पूर्व मुख्य न्यायाधीश, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय

मत-पंथ अथवा मजहब (रिलीजन) की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। फिर भी सामान्यतया इस बात पर प्रायः सहमति प्रतीत होती है कि पंथ या रिलीजन एक ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व और मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिए उसके उपदेशों पर आस्था और विश्वास रखता है।

विधिसम्मत शासन से संबंधित लोकतांत्रिक देशों में मत-पंथ या रिलीजन की स्वतंत्रता एक मान्यता प्राप्त मूल अधिकार है। यह स्वतंत्रता विभिन्न देशों में अलग-अलग है। मजहबी राज्य में मजहब और कानून का एक-दूसरे से घालमेल रहता है और राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त से इतर मतावलम्बियों को प्राप्त स्वतंत्रता नाम-मात्र की होती है। मजहबी स्वतंत्रता अब सर्वमान्य संकल्पना है। इसे मानवीय अधिकारों के सार्वदेशिक घोषणा-पत्र, दो अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं और संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के कतिपय घोषणा-पत्रों में समाहित किया गया है।

प्रत्येक लोकतांत्रिक देश का संविधान अपने नागरिकों को मजहबी स्वतन्त्रता देने की गारन्टी देता है। अमेरिका में मजहब को राज्य से पूरी तरह अलग रखा गया है और इसे सन् १७९१ में पारित अमेरिकी संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम द्वारा लागू किया गया था। अमेरिका में मजहबी स्वतंत्रता का आलम न्यायिक व्याख्याओं से अत्यधिक निराला स्वरूप ग्रहण कर चुका है– यहाँ तक कि राष्ट्रीय ध्वज को सलामी देने से इनकार करना भी एक मजहबी स्वतन्त्रता है और उसके विरुद्ध कोई कानून नहीं बनाया जा सकता।

सौभाग्यवश हमारे उच्चतम न्यायालय ने १९५४ में ही **सिरूर मठ मुकदमे** में अमेरिकी न्यायपालिका द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को अमान्य कर दिया था।

मजहब के अनुपालन और प्रचार करने की स्वतन्त्रता का प्रावधान करते समय हमारे संविधान निर्माताओं ने उसे उच्च प्राथमिकता प्रदान की और उनका विवरण अनुच्छेद २५ से २८ में किया है। उन पर केवल सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य संबंधी सीमाएँ आरोपित की गई हैं। हमारी मजहबी स्वतन्त्रता का उपबन्ध मुख्य रूप से आयरलैण्ड के संविधान के अनुच्छेद ४४ पर आधारित है।

मतान्तरण की स्वतंत्रता

मजहबी स्वतन्त्रता में मतान्तरण की आजादी भी शामिल है। लोग अनेकानेक कारणों से मतान्तरण करते हैं। यदि मतान्तरण अन्तःकरण की प्रेरणा के आधार पर स्वेच्छया किया जाता है तब उस पर कानून या नैतिकता में से किसी भी दृष्टिकोण से आपत्ति नहीं की जा सकती।

गांधी जी मतान्तरण को व्यक्तिगत विषय मानते थे और भौतिक लाभ अथवा लोभ-लालच के छलावे से किए जाने वाले मतान्तरण से घृणा करते थे। अपने पुत्र हरिलाल के द्वारा धन के लालच में इस्लाम को स्वीकार करने के बारे में बापू की प्रतिक्रिया सर्वविदित है। उस समय गांधी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि **"शुद्ध हृदय के बगैर किया गया मतान्तरण ईश्वर और मत-पंथ दोनों की अवहेलना है।"**

परस्पर विरोधी विचार

संविधान सभा में जब मजहबी स्वतन्त्रता से संबंधित अंश विचारार्थ प्रस्तुत हुआ तब विभिन्न मतावलम्बी सदस्यों द्वारा परस्पर-विरोधी विचार प्रकट किए गए। **के.एम.मुंशी** के अनुसार मजहब के प्रचार का अधिकार भाषण की स्वतंत्रता का एक भाग है। **आई.जे.एम. निकोलस राय** नामक एक निष्ठावान ईसाई सदस्य ने अवयस्कों द्वारा मतान्तरण करने का भी समर्थन किया। लेकिन इस सुझाव का बाकी सभी सदस्यों द्वारा विरोध हुआ। फिर भी इस बात पर आम सहमति थी कि मतान्तरण का अधिकार मजहबी स्वतन्त्रता का भाग है। **सरदार पटेल** ने संविधान सभा में परामर्शदात्री समिति द्वारा अनुमोदित निम्न उपखंड प्रस्तुत किया था :

"जोर-जबरदस्ती अथवा अवांछित प्रभाव का प्रयोग कर एक मत-पंथ से दूसरे में किया गया मतान्तरण कानून द्वारा वैध नहीं होगा।"

इस पर **के.एम. मुंशी** ने एक संशोधन प्रस्तुत किया :

"छल-कपट, जोर-जबरदस्ती या अवांछित प्रभाव का

प्रयोग करके एक मत-पंथ से दूसरे में मतान्तरण अथवा १८ वर्ष से कम आयु के अवयस्क का मतान्तरण कानून द्वारा वैध नहीं होगा।" (संविधान सभा की कार्यवाही (अंग्रेजी), खंड-तृतीय, पृ. ४८८)।

परामर्शदात्री समिति की संस्तुति

बहरहाल यह मामला परामर्शदात्री समिति के पुनः विचारार्थ उसे वापस भेज दिया गया क्योंकि सदस्यों ने इस बात पर गहरी आपत्ति प्रकट की थी कि क्या छल-कपट या धोखाधड़ी से कराए गए मतान्तरण पर कानूनी निर्बन्धन लगाने की व्यवस्था को संविधान में उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए ?

अन्ततः मतान्तरण से संबंधित उपखंड को इस आधार पर संविधान में शामिल नहीं किया गया कि जोर-जबरदस्ती अथवा अवांछित प्रभाव के माध्यम से किए-कराए गए मतान्तरण का निस्तारण सामान्य विधि द्वारा किया जाना ही उचित है और वह मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत रखे जाने योग्य नहीं है। परामर्शदात्री समिति ने २५ अगस्त, १९४७ को संविधान सभा में प्रस्तुत किए गए अपने प्रतिवेदन में यह मत अभिव्यक्त किया कि :

"और आगे चलकर विचार करने पर हमारा यह मत है कि इस उपखंड द्वारा एक सुस्पष्ट सिद्धान्त को ही प्रतिपादित करने से इसे संविधान में समाहित करना अनावश्यक है और हमारी संस्तुति है कि इसे छोड़ दिया जाए।"

सरदार पटेल का कथन

प्रभावशाली ढंग से अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए सरदार पटेल ने संविधान सभा में कहा कि **"इस विषय के गुण-दोष के विषय में कोई मतभेद नहीं है कि जोर-जबरदस्ती से कराये गये मतान्तरण को कानून द्वारा मान्यता न दी जाए अथवा उसे वैध न माना जाए।"** परन्तु उन्होंने उसे संविधान में समाहित करने का विरोध इस आधार पर किया कि **"यह सब सामान्य विधि से संबंधित मामले हैं और मौलिक अधिकारों में स्थान पाने योग्य नहीं हैं।...... हम प्रत्येक काल्पनिक बात के लिए मौलिक अधिकार का प्रावधान नहीं कर सकते। हम विधि का निर्माण नहीं कर रहे हैं।"**

इस ऐतिहासिक तथ्य की मौजूदगी के होते हुए भी हमारे संविधान निर्माताओं ने मतान्तरण से संबंधित उपबंध संविधान में क्यों समाहित नहीं किया, जब कभी कोई राज्य विधानमंडल बल प्रयोग, छल-कपट, अवांछित प्रभाव अथवा लोभ-लालच के द्वारा मतान्तरण कराए जाने का निषेध करने हेतु विधि का निर्माण करता है, विवाद खड़ा हो जाता है।

मध्य प्रदेश और उड़ीसा की विधियाँ

१९६७-६८ में मध्य प्रदेश और उड़ीसा ने बल-प्रयोग, लोभ-लालच अथवा अन्य छल-कपट के तरीकों से कराये जाने वाले मतान्तरण के विरुद्ध विधि अधिनियमित की थी। उड़ीसा द्वारा अधिनियमित अधिनियम को उड़ीसा उच्च न्यायालय ने इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया कि बल-प्रयोग, छल-कपट और लोभ-लालच की परिभाषा ईसाइयों द्वारा उनके मत-पंथ या मजहब का प्रचार करने के अधिकार का उल्लंघन करते हैं। उड़ीसा उच्च न्यायालय ने यह मत भी अभिव्यक्त किया कि मजहब अथवा मत-पंथ से संबद्ध विषय पर विधि-निर्माण की शक्ति केवल सातवीं अनुसूची की सूची संख्या एक की प्रविष्टि ९१ के अन्तर्गत केवल संसद को प्राप्त है और इसलिए मत-पंथ या मजहब से संबंधित विषयों पर कोई भी राज्य विधानमंडल विधि अधिनियमित नहीं कर सकता। दूसरी ओर मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश के अधिनियम को वैध घोषित किया क्योंकि इसमें सभी की मजहबी स्वतंत्रता की गारण्टी दी गई है और उसमें किसी भी मत-पंथ या व्यक्ति की स्वतंत्रता का किसी भी रूप में अतिक्रमण नहीं हो रहा है। राज्य सरकार को इस विषय पर विधि-निर्माण के लिए पूर्ण शक्ति प्राप्त है क्योंकि विषय मजहब से नहीं बल्कि सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित है।

उच्चतम न्यायालय का ऐतिहासिक निर्णय

दोनों निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें की गईं। संविधान पीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए **मुख्य न्यायाधीश रे** ने मध्य प्रदेश और उड़ीसा दोनों राज्यों की विधियों को इस आधार पर विधिसम्मत घोषित किया कि किसी दूसरे व्यक्ति का मतान्तरण कराना संविधान के अनुच्छेद २५(१) के द्वारा नागरिकों को दिए गए अन्तःकरण की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का भाग नहीं है और जोर-जबर्दस्ती से कराया गया मतान्तरण सार्वजनिक व्यवस्था को उध्वस्त कर देता है।

अभी कुछ समय पूर्व का अधिनियमित **'तमिलनाडु बल प्रयोग का मतान्तरण निषेध अधिनियम, २००२'** (Tamilnadu Prohibition of Forcible Conversion of Religion Act, 2002) सभी दृष्टि से मध्य प्रदेश और उड़ीसा के

अधिनियमों के सदृश हैं।

अतः ऐसे कानूनों की आलोचना करना पूरी तरह निरर्थक है। भारतीय दंड संहिता के उपबन्ध उन आकस्मिक और प्रासंगिक स्थितियों के लिए किसी भी प्रकार का दण्ड-विधान नहीं करते जिनको मतान्तरण विरोधी अधिनियम में समाहित किया गया है।

मतान्तरण असीमित नहीं

मजहबी आस्था में परिवर्तन होने के अनेक कारक हैं। जहाँ तक हिन्दुत्व का संबंध है उसके दो प्रमुख कारकों में से एक सामाजिक असमानता और दूसरा अस्पृश्यता है। एक विशेष समुदाय में जन्म लेने के कारण अपने साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार और लोकनिन्दा अथवा अपकीर्ति से दुःखित होकर अनेक बार लोग अपने मतान्तरण को उचित ठहराते हैं क्योंकि मतान्तरण कराने वाला मत-पंथ उन्हें सम्मानजनक जीवन जीने का अभिवचन देता है अथवा उसे सुनिश्चित बताता है। संविधान में किन्हीं विशेष व्यवस्थाओं का उल्लेख न होने के आधार पर यह दावा नहीं किया जा सकता कि संविधान किसी भी उपाय या तरीके से मतान्तरण करने का अधिकार नागरिकों को प्रदान करता है। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि भारत में प्रत्येक नागरिक अपना मत-पंथ बदलने को स्वतंत्र है बशर्ते यह मतान्तरण अपने अन्तःकरण की पुकार पर स्वेच्छापूर्वक किया गया हो।

निराधार

जब देश की उच्चतम न्यायिक इकाई ने छल-कपट से कराए गए मतान्तरण की वैधता के पक्ष में स्पष्टतम निर्णय दे दिया है, तब उनकी आलोचना इस आधार पर करना कि वे अल्पसंख्यक मत-पंथों के अधिकारों पर कुठाराघात करते हैं, पूरी तरह निराधार है। अतः केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों को इस बात के लिए दोषी ठहराना कि वे इन अधिनियमों को लागू करके संविधान के अनुपालन के अपने दायित्व को पूर्ण करने में विफल रही हैं, स्पष्टतः निहित स्वार्थों से प्रेरित कथन हैं और उनका उद्देश्य अन्तरराष्ट्रीय जगत में सस्ती लोकप्रियता हासिल करना है। आश्चर्य तो यह है कि अभी तक सरकार के किसी भी उत्तरदायी अधिकारी अथवा प्रवक्ता या किसी प्रमुख राजनीतिक दल ने इस सम्पूर्ण विवाद के सही तथ्य जन-समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किए हैं। अतः आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार संबंधी उप-आयोग को इस देश की विधिक अथवा कानूनी स्थिति की सही जानकारी समय रहते दे दी जाए जिससे मतभ्रमित आलोचक उसकी छवि को और अधिक कलुषित न कर सकें। □

मारड पर सेकुलर जमात के मौन का मतलब

□ शंकर शरण

तीन मई के प्रमुख अखबारों को पलटें तो कोझिकोडे, केरल की एक खबर दिख सकती है। कई बड़े अंग्रेजी अखबारों में नदारद भी है। दिल्ली के दो बड़े अंग्रेजी दैनिकों ने उसे किसी कोने में और बिल्कुल गलत रूप में दिया। **'टाइम्स आफ इण्डिया'** ने उसे केवल दो पंक्तियों में निपटाया, वह भी पूरा झूठ। **'इंडियन एक्सप्रेस'** में खबर पूरी और प्रामाणिक थी, मगर शीर्षक और निष्कर्ष गोलमोल। कोई पाठक ये सभी अखबार देख ले तब भी उसे लगेगा कि साम्प्रदायिक हिंसा जैसा 'कुछ' हुआ है। इसीलिए नियमित अखबार पढ़ने वालों को भी माराड नाम से कुछ ध्यान न आए, तो आश्चर्य नहीं। मलयाली अखबारों से उसकी विस्तृत जानकारी मिलती है। संयोग से १९ मई के **'इंडिया टुडे'** ने भी लम्बी रिपोर्ट छापी। इनसे पता चलता है कि हुआ क्या था, जिसे स्वघोषित **'लीडर'** अंग्रेजी अखबार ने छिपाया। शुक्रवार २ मई को शाम माराड में समुद्र तट पर एक मन्दिर के पास कुछ हिन्दू मछुआरे बैठे हुए थे। एकाएक धारदार हथियारों से लैस एक मुस्लिम भीड़ आई और उन पर हमला बोल दिया। कुछ ही देर में नौ हिन्दू मार डाले गए, शेष बुरी तरह घायल हो गए। सभी हमलावर फाइबर ग्लास की मोटरबोट में बैठकर समुद्र में फरार हो गए। कोझिकोडे के पुलिस कमिश्नर के अनुसार **''यह किसी प्रशिक्षित गैंग द्वारा बिना किसी उकसावे के किया गया सुनियोजित हमला था।''**

पुलिस ने बाद में नजदीक की एक मस्जिद से भारी मात्रा में धारदार हथियार और तलवार बरामद किए। प्रारम्भिक जाँच से ही इस काण्ड में एक इस्लामी उग्रवादी संगठन **एन.डी.एफ.** का हाथ होने की पुष्टि हो गई। इसमें **इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग** के भी कुछ लोग थे। पहली बार मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने भी इस हत्याकाण्ड का जिम्मेदार सीधे एन.डी.एफ. और मुस्लिम लीग को ठहराया और गोधरा जैसे इस हत्याकाण्ड को हमारे लीडर अंग्रेजी प्रेस ने 'दो गुटों के बीच हिंसा' बताकर उसी दिन रफा-दफा कर दिया। कल्पना करें यदि इसका उल्टा हुआ होता।

किसी हिन्दू भीड़ ने किसी मस्जिद के सामने नौ मुसलमानों को मार डाला होता तो अभी सेकुलर प्रेस का क्या जलवा रहता ? नियमित बयान, लेख, जुलूस, संसद का स्थगन और देशी-विदेशी सरकारों, संस्थाओं को ज्ञापन दिये जा चुके होते। पूरी दुनिया में हंगामा मचा होता। धीरे-धीरे भारतीय पाठक यह सेकुलर पाखण्ड समझ चुके हैं। जब मरने वाले 'लोग' हों तो इसका मतलब होता है मृतक हिन्दू थे, क्योंकि जहाँ कोई मुस्लिम या ईसाई मारा जाए तो उसकी यह पहचान जरूर बताई जाती है, चाहे वह कैसी भी गतिविधि में क्यों न लिप्त रहा हो। गोधरा हो या नंदीमर्ग, इतने 'लोग' मरे। किन्तु गोधरा में बाद की हिंसा में मरने वाले लोग नहीं, 'मुस्लिम' या 'मोस्टली मुस्लिम' थे। हमारे तमाम सेकुलर-वामपंथी पर्चों में और उनकी देखादेखी दुनिया भर के प्रेस में यह बात कही गयी। जैसे गोधरा या नंदीमर्ग, वैसे ही माराड के लिए पूरी बात आई-गई हो गई, बल्कि अधिकांश को तो खबर तक नहीं हुई। न्याय माँगने की तो बात ही क्या ?

केरल में लंबे समय से मुस्लिम रह रहे हैं। वहाँ इस्लाम सबसे पहले आया था। वह भी शांतिपूर्वक। कोडुंगलूर में लगभग ७वीं-८वीं सदी में भारत की सबसे पहली चेरामन मस्जिद बनी, लेकिन केरल के मुसलमानों में बाहरी खून नहीं है। उनके ज्यादातर पूर्वज हिन्दू हैं जिन्हें टीपू सुल्तान के दौर में जबरन धर्मान्तरित कराया गया था। टीपू भी बड़ा जिहादी था। उसके आतंक से भारी संख्या मे हिन्दू मालाबार छोड़कर कोचीन भागे थे। आज भी लोक-स्मृति में वह जीवित है। इस सबके बावजूद वहाँ हिन्दू-मुस्लिम अच्छी तरह रहते आए हैं।

केरल के मुस्लिम भारत के सबसे विकसित और पढ़े-लिखे लोगों में से हैं। उनमें बड़ी संख्या में डॉक्टर, इंजीनियर, आई.ए.एस., लेखक, वकील और सफल व्यवसायी हैं। उनका जीवन पाकिस्तानी मुसलमानों से बेहतर है। उनके साथ भेदभाव तो दूर, मार्क्सवादी पार्टी की हिन्दू विरोधी राजनीति ने उन्हें उल्टे अनुपात में अधिक प्रभावशाली बनाया। उन्हें शिकायत का अवसर नहीं। वस्तुतः जब भी किसी क्षेत्र में सीमाइट (अरबी) मजहब के लोग खासी संख्या में हो जाते हैं, उनमें देर-सबेर दूसरे धर्मावलम्बियों को मिटाने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। उत्तर-पूर्व में ईसाई और जम्मू-कश्मीर में इस्लामी उग्रवाद इसी प्रवृत्ति के उदाहरण हैं। हिन्दुओं के पास विकल्प बचता है : धर्मान्तरित हो या मरें या भाग जाएं। इनमें ९० प्रतिशत

(शेष पृष्ठ १०५ पर)

पंथनिरपेक्षता या भारत का स्वधर्म

□ डॉ. रणजीत सिंह

पिछले एक सौ वर्ष हम भारतवासियों ने बड़े दुविधाग्रस्त मन और भ्रमपूर्ण चित्त के साथ व्यतीत किये हैं। परिणामस्वरूप आजादी के बाद जब भारत के स्वधर्म का चिन्तन और मानस का विचार करते हुए स्वाधीन राष्ट्र के नवनिर्माण को हाथ में लेना चाहिए था, हम उसके ५५ साल बाद भी पंथनिरपेक्षता और मुक्त व्यापार के चक्रव्यूह में डोल रहे हैं। जबकि हमारी आजादी के साल-दो साल आगे पीछे अपने नवनिर्माण की यात्रा शुरू करने वाले चीन, जापान, जर्मनी, इजरायल जैसे देश न जाने कब हमें पीछे छोड़ कर आगे बढ़ गये। अपने स्वधर्म को न समझ पाने के कारण ही हम आज तक एक पिछड़े और पिछलग्गू देश के रूप में दुनिया वालों के सामने खड़े हैं।

एक सौ दस वर्ष पूर्व विवेकानन्द ने शिकागो की धर्मसभा में अपना परिचयात्मक उद्‌बोधन देते हुए जिन दो शब्दों से प्रारम्भ किया था उनका स्मरण करो, "अमेरिकावासी मेरे भाइयों और बहनों", जिन्हें सुनते ही उस सभा में उपस्थित सहस्त्रों श्रोता अपनी गम्भीरता, विद्वत्ता, व्यक्तिमत्ता को भूलकर बच्चों की तरह तालियाँ पीटने लगे, अपनी-अपनी कुर्सियाँ छोड़कर उठ खड़े हुए। अनेकों युवक-युवतियाँ स्वामी जी का और अधिक दर्शन पाने की आकांक्षा से कुर्सियाँ फाँद कर अग्रिम पंक्तियों की ओर बढ़ चले। परस्पर सम्मान, सद्‌भाव और सहानुभूति का ज्वार ऐसा उमड़ा कि उस सभा में उपस्थित सज्जनों के साथ-साथ सारा देश उससे आप्लावित हो गया। क्या हमने अपनी पंथनिरपेक्षता की अवधारणा के लिए इससे अधिक उदात्त या उपयुक्त आदर्श तलाश कर लिया है ? या फिर एक राष्ट्र के रूप में हम ऐसी किसी कोशिश में लगे हुए हैं ?

पिछले एक हजार वर्षों में पराधीनता के दो बड़े अनुभव एक राष्ट्र के रूप में हमने प्राप्त किये हैं। इनमें से एक था पश्चिम एशिया के अरब, तुर्क, पठान आदि क्रूर हिंसक मानव समूहों का और दूसरा था पश्चिम यूरोप के कुटिल-क्रूर शोषक जातियों का। अपने-अपने ढंग से सबने भारत की अपार सम्पत्ति को लूटा और सभ्यता तथा संस्कृति का विनाश किया। इन एक हजार वर्षों में भी भारत में अनेक छोटे-बड़े साम्राज्य रहे हैं, विद्वान और विद्यार्थी रहे हैं। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि विदेशी आक्रमणकारियों के वास्तविक चरित्र और उनके तात्कालिक तथा दूरगामी उद्देश्यों की गहरायी से छानबीन करने का कोई प्रयत्न राष्ट्रीय स्तर पर नहीं किया गया है। १९४७ में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी यह आक्रमण नये-नये रूप लेकर अनवरत चल रहे हैं। परन्तु आज भी हमारे विश्वविद्यालयों और शोध-संस्थानों में इनके ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक पहलुओं पर कोई सुनियोजित अध्ययन कहीं किया जा रहा हो, ऐसा पता नहीं चल रहा है। परिणाम यह है कि राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम बिहार में एक बच्चे द्वारा पूछे गये इस सवाल का जवाब नहीं दे सके कि पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्ध अब तक खराब क्यों हैं ? वस्तुस्थिति बतलाने का अवसर तो राष्ट्रपति के पास नहीं था परन्तु यह तो कह सकते थे कि एक विद्यार्थी के रूप में तुम्हारे अध्ययन और अनुसंधान का यह अच्छा विषय है।

मार-काट का नंगा नाच

अनादि काल से हम भारतवासियों के हृदय में यह भावना दृढ़ है कि इस जगत में, जीवमात्र में, एक ही परमात्मा का प्रकाश है। यह कोई नानी की कहानी नहीं है, वरन् हजारों साधारण से दिखने वाले स्त्री-पुरुषों का प्रत्यक्ष अनुभव है। वेद और पुराण इस सत्य का अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। भगवान कृष्ण के द्वारा अर्जुन को अपने विश्वरूप दर्शन देने का अद्‌भुत विवरण है। गोस्वामी तुलसीदास स्वानुभव के आधार पर सर्वत्र विराजमान सियाराममय जग को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं। हमारे ग्रामीण अंचलों में तो अभिवादन के लिए 'राम-राम' या 'जय राम जी की' कहने का रिवाज किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में न होकर अज्ञात और अनजान सबके लिए इसी सिद्धान्त के अनुसार है। इसमें किसी व्यक्ति की पूजा-पद्धति या मजहबी मान्यता से कोई अन्तर पड़ता ही नहीं है। केरल के अनेक राजाओं ने इस्लाम और ईसाई लोगों के आने पर उनकी सुविधा के लिए गिरजाघरों और मस्जिदों का निर्माण करवाया था। अपना प्रचार करने के लिए उन्हें सुविधा-सहायता उपलब्ध करायी थी। लेकिन पिछली एक शताब्दी में मजहबी मारकाट का जैसा नंगनाच इस मलाबार तट पर हुआ है, वह दूरदर्शन के धारावाहिक की तरह आज तक बदस्तूर जारी है। थोड़ी-थोड़ी देर के लिए थम-थमकर एक नया एपीसोड, नये रंगरूप में। उस सामाजिक सद्‌भाव को इस मजहबी मारकाट में परिवर्तित करने वाले समस्त घटनाक्रमों, उसके प्रमुख अभिनेताओं और उनके चरित्रों की गहरी छानबीन करना जरूरी क्यों नहीं

समझा जा रहा है ? हमारी अपनी विश्वदृष्टि को उत्साहपूर्वक प्रतिपादित और प्रतिष्ठापित करने का आत्मविश्वासपूर्ण प्रयत्न दिखायी क्यों नहीं पड़ रहा है ? जो सिद्धान्त स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की धर्मसभा के माध्यम से प्रस्तुत किये थे, उन्हें आज हमारे प्रतिनिधि न्यूयार्क की संयुक्त राष्ट्र महासभा में रखने में क्यों संकोच करते हैं ?

अध्ययन और अनुसंधान का विषय

जाति प्रथा आज हमारी समाज व्यवस्था की सबसे वीभत्स कड़ी है। परन्तु यह इतनी महत्त्वपूर्ण है कि हमारा संविधान इसे स्वीकार करता है। हमारे राजनीतिक दलों की नीतियों, उनके नेताओं के चुनाव क्षेत्र और चुने जाने की क्षमता सब कुछ इन्हीं पर निर्भर है। जिस प्राचीन वर्ण व्यवस्था का यह वीभत्स रूप आज हमें दिखायी पड़ता है उसका उद्गम वेदवर्णित पुरुषसूक्त से हुआ है। इस सूक्त में सम्पूर्ण मानव समाज को एक ही पुरुष कहकर समाज की विविधतापूर्ण आवश्यकताओं और उनको सम्पादित करने के लिए मनुष्य की स्वाभाविक चित्तवृत्तियों को व्यवस्था का आधार बनाया गया है। इस व्यवस्था के भीतर निहित सिद्धान्त इतने सार्वभौम और सार्वकालिक है कि प्राचीन काल में तो प्लेटो ने उनका अनुकरण करने का प्रयास किया ही था, सरकारों के संगठन की आधुनिकतम रचना में भी कर्मचारियों को चार वर्गों में बाँट कर ही देखा जाता है। पुरुष सूक्त का वह एकत्व ममत्व वादी विचार समय के किन-किन मोड़ों से गुजरता हुआ वर्तमान वीभत्सता को प्राप्त हुआ है, यह गम्भीर अध्ययन और अनुसंधान का विषय है। विविधता में एकता का यह अद्‌भुत सूत्र कब हमारे हाथ से छूट गया और कब विदेशी आक्रान्ताओं ने उसको भेदभाव, शोषण और षड्यन्त्र का साधन बनाने में सफलता पाई, इस बात का पता लगाने का प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर होना आवश्यक है, क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में एक अध्येता श्री धर्मपाल के प्रयत्नों से प्राचीन अवलेखों से इतनी चौंकाने वाली सामग्री उपलब्ध हो चुकी है कि उसके आलोक में जाति-प्रथा सम्बन्धी वर्तमान अवधारणाओं में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है।

आज से दो सौ वर्ष पूर्व जब अंग्रेजी साम्राज्य अपनी जड़ें जमाने के लिए भारत की परम्परागत सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं को जानने का प्रयास कर रहा था तब जो आंकड़े उनके द्वारा एकत्र किये गये थे उनमें शिक्षा व्यवस्था से जुड़ी हुयी बहुत सी संख्याएँ हैं। इनसे ज्ञात होता है कि उस समय के विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी और पढ़ाने वाले अध्यापक तत्कालीन समाज के सभी वर्गों से आया करते थे। विद्या पढ़ने-पढ़ाने में एक दो जाति के विशेषाधिकार का विचार तथा तदनुरूप प्रबन्ध यह अंग्रेजों की सोची-समझी कूटनीति थी। उदाहरण के लिए मद्रास प्रेसीडेंसी के कुछ जिलों में छात्रों का जातिवार प्रतिशत इस प्रकार था कि तन्जौर : ब्राह्मण १६.२%, क्षत्रिय २.१%, वैश्य १.३%, शूद्र ६१%, अन्य १४%, मुसलमान ५.३%; मदुरा : ब्राह्मण ८.७%, क्षत्रिय ०%, वैश्य ८.२%, शूद्र ५३%, अन्य २२%, मुसलमान ८.४%; बेल्लारी (वर्तमान कर्नाटक) : ब्राह्मण १८%, क्षत्रिय ०%, वैश्य १५%, शूद्र ४०.६%, अन्य २६%, मुसलमान ४%; मालाबार : ब्राह्मण १८.६%, क्षत्रिय ०%, वैश्य .७%, शूद्र ३१%, अन्य २३%, मुसलमान २७%। इसी तरह बंगाल प्रेसीडेन्सी के विवरण में अध्यापकों की जो विविधता दर्शायी गयी है वह आरक्षण के इस जमाने में भी आश्चर्यजनक लगती है। उदाहरण के लिए वर्तमान में ३ ईसाई, ९ मुसलमान, १०७ ब्राह्मण, ३६९ कायस्थ, ३० अगुरी, ५० सद्‌गोप, १३ वैष्णव, ३ नापित, १ थरई, ९ भट्ट, १० तेली, ५ कैवर्त, १ सुनरी, १ धोवा, १ वैद्य, ३ सुवर्ण वनिक, ४ चांडाल, ३ कुम्हार, ६ गंधी, १ भैरा, १ ग्वाला, १ युगी, १ तांती, १ कालू, १ नागा, १ राजपूत, १ दैवस्य और कमार-१।

३० साल से ज्यादा से यह सूचनाएँ पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु इनका उपयोग मुख्य धारा की पाठ्य-पुस्तकों में अभी तक क्यों नहीं किया जा सका है ? इस दिशा में अनुसंधान तथा विश्लेषण आगे क्यों नहीं बढ़ रहा है ? विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थानों की इस संबंध में नीयत क्या है ?

विडम्बना

लगभग ५० साल हुए जब हम इण्टर की परीक्षा देने के बाद ग्रीष्मावकाश में अपने गाँव गये तो वहाँ हमारा घर बन रहा था। मुझे देखकर अजीब लगा कि वहाँ काम करने वाले सभी मजदूर मेरी माताजी को चाची-भावजी आदि कहा करते थे। इनमें एक बुजुर्ग मजदूर भी था। माँ उससे बात करते समय विशेष रूप से सिर पर धोती रख लेती थीं। मुझको उनकी हिदायत थी कि उसे बेहना-बप्पा कहकर सम्बोधित किया जाय क्योंकि वह मेरे स्वर्गीय पिता जी के साथ खेतों पर जाया करता था। यह मजदूर जाति का बेहना (रूई धुनने वाला) और मजहब से मुसलमान था। हमारे बेहना बप्पा का बेटा अब मुलाकात होने पर नेता कहा जाने पसंद करता है और बदले में बड़ा होने के बावजूद मुझे भैया कहने की अपेक्षा मेरा नाम लेकर पुकारता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ सरकारी समाजवाद

और सेकुलरिज़्म का इससे ज्यादा असर इस देश के आम आदमी पर नहीं पड़ा है। मीडिया और मेड इन इण्डिया नेता-लेखकों की तमाम धमाचौकड़ियों के बावजूद पंथनिरपेक्षता को जानने-समझने वालों की संख्या अभी १% से कम ही होगी। इसके आधार पर परस्पर सम्मानजनक या समतामूलक व्यवहार का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। इस यूरो शब्दावली का प्रयोजन हमारे स्वधर्म का हनन है, भारत की भलाई नहीं।

सेकुलरिज़्म का सारांश

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने यह नीति निर्धारित की थी कि जब कभी देश में कहीं भी दंगा हो वहाँ हिन्दू व मुसलमान समान संख्या में गिरफ्तार किये जायेंगे। दंगाइयों को दण्ड और पीड़ितों की पहचान करना ज्यादा जरूरी नहीं है, उनके लिए ऐसा करना जरूरी भी था क्योंकि आजादी के पहले के तमाम मुस्लिम लीगी अराजक तत्त्व अब गांधी टोपी वाले पक्के कांग्रेसी बन गये थे। मौलाना आजाद की छतरी के नीचे एकत्र होने वालों में वे मुसाहिब भी थे जो अभी तक अंग्रेजों को माई-बाप मानते थे, वे मार्क्सवादी भी थे जो गांधी जी को बिड़ला कादलाल और सुभाषचन्द्र बोस को जापानी तोजो का कुत्ता कहा करते थे, और थे वे सियासी शायर जिनके सरपरस्त नेता और नवाब अब पाकिस्तान चले गए थे। इन सब लोगों को दायित्व दिया गया था कि पाकिस्तान का विष बीज बोने का दोष उन हिन्दू नेताओं के सिर मढ़ा जाय जो अब जीवित नहीं थे और जीवितों को गांधी हत्या के मुकदमे में फँसा दिया जाय। पश्चिम एशिया से आये हमलावरों की हत्या, लूट, बलात्कार और मजहबी तोड़फोड़ की निरन्तर धारा को एकाध सिरफिरे के सिर मढ़कर बाकी सब लोगों को दयालु तथा न्यायप्रिय सम्राट् सिद्ध कर दिया जाय। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ यही सारांश है इन्दिरा गांधी के उस सेकुलरिज़्म का, जिसे पंथनिरपेक्षता कहा जाता है।

हिन्दुस्तान का इन्सान जिस बात को जानता है और अनुभव करता है, वह है जन-जन के हृदय में विद्यमान भगवान। तमाम विरोधाभासों के बावजूद आज भी अधिकतर लोगों का आचार-व्यवहार कहीं दूर गहरायी में बैठे हुए इस एक ही संस्कार के कारण ही संतुलित है, व्यवस्थित है। विश्वास न हो तो किसी अनपढ़ मजदूर या सड़क के किनारे चलते हुए राहगीर से पूछ लेना। बाहर जाने की जरूरत नहीं है कम बोलने वाली माँ और कम देखने वाली दादी माँ का व्यवहार भी उसी अनदेखे अनजाने भगवान के विश्वास पर चल रहा है। भारत के इस स्वधर्म को पहचानो क्योंकि इसी में है इस देश के नवनिर्माण का सूत्र। □

(पृष्ठ १०२ का शेष)

माराड पर सेकुलर जमात के मौन का मतलब

मुसलमानों के उदार होने से भी रुकावट नहीं आती। २ प्रतिशत उग्रवादी मुस्लिम यह शुरू कर दे सकते हैं। बाकी प्रक्रिया अपने-आप चालू हो जाती है। केरल में भी इस्लामी उग्रवाद के पीछे कोई स्थानीय असंतोष नहीं।

जो चीज उत्तरी भारत के सीमावर्ती इलाकों में अभी शुरू हुई है, वह केरल में पिछले दो दशकों से चल रही है। जिसे अभी लालू प्रसाद और मुलायम सिंह संरक्षण दे रहे हैं, उसे मार्क्सवादी पार्टी ने बहुत पहले केरल और पश्चिम बंगाल में शुरू किया था। अंजाम समझ लेने के बाद भी प्रतिवाद की हिम्मत या इच्छा नहीं दिखती। हाल के वर्षों में वहाँ अरब की खाड़ी से बेइंतहा पैसा आया है। स्थानीय बैंकों से इसकी पुष्टि होती है। यही नहीं, 'इस्लामी बैंकिंग' (जिसमें जमाकर्ता ब्याज नहीं लेता) के लाभ को देखते हुए सरकारी बैंक भी बाहर से आने वाले बेशुमार पैसे के स्रोत के बारे में कुछ नहीं पूछते। मगर उसी पैसे से केरल में वहाबी या उग्रवादी इस्लाम को बढ़ाया गया। जगह-जगह बड़ी-बड़ी जमीनें खरीदी गईं। मस्जिदों की संख्या में एकाएक भारी वृद्धि हुई। केरल के मुसलमान अपनी वेशभूषा और तौर-तरीके बदलने लगे। उनकी शैली में तीखापन और अलगाव दिखने लगा।

माराड की घटना को इससे अलग करके देखना मूर्खता होगी। आगे क्या होगा ? कुछ नहीं। माराड उसी मालाबार क्षेत्र में है जहाँ मोपला मुस्लिमों ने १९२१ में हिन्दुओं का कत्लेआम, अपमान और जबरन धर्मान्तरण किया था, क्योंकि दूर तुर्की में खलीफा का शासन खत्म कर दिया गया था। माराड मालाबार के उन चंद गाँवों में है जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक नहीं हुए थे। शायद अब हो जाएं। वहाँ अन्य इलाकों में पिछले सालों में यही होता रहा है।

जाहिर है कि सुरक्षा की तलाश में हिन्दू परिवार भागेंगे। इसी तरह जमीन का एक और टुकड़ा दार-उल-हरब से दार-उल-इस्लाम हो जाएगा। मल्लापुरम में यह हो चुका है। धीरे-धीरे पूरे केरल में हिन्दू अल्पसंख्यक हो रहे हैं। इतिहास से हम कुछ नहीं सीखना चाहते। नेहरूवादी सेकुलरिज़्म और स्तालिनपंथी मार्क्सवाद हमें कुछ सीखने भी नहीं देगा। किन्तु यदि सुशिक्षित मुसलमानों से भरे केरल में माराड जैसी घटना होती है और उसके होने के बाद उसकी ऐसी अनदेखी होती है तो इस देश में हिन्दुओं का भविष्य संदेह के घेरे में ही है। □

कितने घातक हैं 'सेकुलरिज्म' के ये आयाम

□ आनन्द मिश्र 'अभय'

सम्पादक, राष्ट्रधर्म (मासिक)

क्या विश्व में भारत के अतिरिक्त अन्य कोई देश भी ऐसा है, जो अपने को 'पन्थ-निरपेक्ष' या 'सेकुलर' कहता हो और उसका ढिंढोरा पीटता फिरता हो कि देखो, हमारी यह कितनी बड़ी उपलब्धि है ? अपने ही गले में सेकुलरिज्म का फन्दा कसे हो और डींग मारता हो कि यह प्राणान्तक फन्दा तो हमारा जीवनाधार है, हमने अपने संविधान में प्रयत्नपूर्वक संशोधन करके इसे उद्देशिका में बलात् आरोपित कर रखा है और किसी में हिम्मत नहीं है कि उद्देशिका को उसके मूल रूप में पुनर्स्थापित कर सके। जिस प्रकार किसी भी सिक्के के दो या तीन आयाम ही होते हैं, यथा– १. मुख, २. पृष्ठ और ३. कोर। जब इस देश में चाँदी का रुपया (ब्रिटिश काल) चलता था, तो उसका एक आयाम और भी होता था, उसकी 'ध्वनि'– 'ठन्न' की ध्वनि सुनकर उसकी परख की जाती थी कि धातु में कोई खोट तो नहीं है। उसी प्रकार 'सेकुलरिज्म' का चेहरा, इसकी पीठ और इसके किनारे और इसकी ध्वनि इन सबको परखने की आवश्यकता आज जिस तीव्रता से अनुभव की जानी अपेक्षित है, वह इसके पल-पल परिवर्त्तित होते रहने की कला में पारंगत होने के कारण अतीव कठिन प्रतीत होता है। अपना रूप बदलते रहने में यह किसी बहुरूपिये से कम नहीं है –

"अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नाना रूपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले।।"

जरा देखें इस बहुरूपिये के रूपान्तरण के ये आयाम–

राजनीतिक

अपने देश की राजनीति में तो इसने ऐसा बीभत्स रूप धारण कर रखा है कि कुछ न पूछिए। जितने दल, उतने रूप। अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में प्रत्येक दल मुस्लिम या ईसाई वोट बैंक के सामने अपनी खाली झोली फैलाते रहने में रञ्च-मात्र लज्जा का अनुभव नहीं करता। सभी दलों में गला-काट होड़ लगी है कि सेकुलरिज्म का कौन-सा रूप, कौन-सा मुखड़ा इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त होगा। अल्पसंख्यक के नाम पर मुस्लिम-तुष्टीकरण ही नहीं, मुस्लिम-परस्ती की भी सर्वत्र पराकाष्ठा-सी हो गयी है। देश-विभाजन की भयंकरतम त्रासदी से भी किसी ने कोई शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक नहीं समझा। गान्धीजी भी जिस भ्रान्त मार्ग पर चलते-चलते भटकते चले गये और गोलियाँ खाकर दिवंगत होने की स्थिति तक जा पहुँचे, उस मार्ग को सर्वथा त्यागकर राष्ट्र के लिए श्रेष्ठ कल्याण-पथ पर अग्रसर होने की बात तो दूर-भटकाव के गान्धी-मार्ग को भी न जाने कब का छोड़ चुकी राजनीति दिनानुदिन उसी मृग-मारीचिका में भटकती जा रही है, जिसका दुष्परिणाम सभी जानते हैं; पर सभी राजनीतिक दलों के लक्षण उस दुर्योधन जैसे ही हैं, जो कहता था–

'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।।'

इस राजनीतिक विभ्रम का अन्त निश्चय ही दारुण होगा; परन्तु तब तक इस खण्डित देश के शेष बचे भाग की अपूरणीय क्षति हो चुकी होगी। एक पृथ्वीराज या जयचन्द की भूल को नौ सौ वर्षों से झेलते आ रहे देश को गत ८५ वर्षों से की जा रही उससे भी भयंकर भूलों का कैसा भयंकर परिणाम भुगतना होगा, इसकी कल्पना-मात्र से रोंगटे खड़े हो जाने चाहिए; पर सभी 'सेकुलरिज्म' की भूल-भुलैया में फँसे राजनेता आँखों पर पट्टी बाँधे 'कुर्सी के फेर' में पड़े इधर-उधर दौड़ते फिर रहे हैं। इन पर 'सेकुलरिज्म' का ऐसा भूत सवार रहा है कि संयुक्त मोर्चा सरकार के रेलमंत्री ने तो कुछ विशिष्ट रेलगाड़ियों में प्रभात-वेला में बजाये जाने वाले भक्त नरसी मेहता रचित गान्धीजी के प्रिय भजन 'वैष्णव जण तो तेणे रे कहिए, जे पीर पराई जाणे रे' तक को 'साम्प्रदायिक' करार देकर बन्द करवा दिया था।

बौद्धिक

अपने देश में मुट्ठी भर लोगों का एक ऐसा वर्ग या समूह (जिसे 'गिरोह' कहना अधिक समीचीन होगा) है, जो अपने को 'बुद्धिजीवी' (प्रबुद्ध नहीं) होने का ढिंढोरा पीटकर सबको आतंकित करते रहने में दक्ष है। इस आयाम में कतिपय तथाकथित साहित्यकार, कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक ही नहीं, विभिन्न समाचारपत्रों में कुण्डली मारकर जमे बैठे पत्रकार भी हैं। इनकी बुद्धिवादिता नये-नये शब्दों को गढ़कर उन्हें प्रच्छन्न अपशब्दों के रूप में उछालती रहती है। यथा– भगवाकरण, भगवा ब्रिगेड, सैफ्रनाइजेशन, सैफ्रन ब्रिगेड, सैफ्रन क्रिमिनल्स, गान्धी के हत्यारे आदि-आदि। पहले यही लोग 'साम्प्रदायिक',

'फासिस्ट', 'प्रतिक्रियावादी', 'पुनरुत्थानवादी' जैसे शब्दों को इसी रूप में प्रयुक्त करते थे। अपने को प्रगतिवादी, प्रगतिशील मानकर चलनेवालों की दृष्टि में इनसे इतर सभी लोग मानो अगतिशील या दुर्गतिशील हों। मूलतः अंग्रेजी में सोचनेवाले ये लोग कुछ शब्दों के हिन्दी अनुवाद भी इस प्रकार करके प्रचारित-प्रसारित कर देते हैं कि अर्थ का अनर्थ हुए विना नहीं रहता। समाज के निर्बल या आर्थिक रूप से विपन्न वर्ग को 'दलित' कहना, वनवासियों, गिरिवासियों को 'आदिवासी' कहना, कुछ को आदिम जनजाति कहना, वैदिक संस्कृति को 'ब्राह्मणवादी' लिखना ये सब इनकी 'बुद्धि' की ही करामात है और तो और स्वयं 'सेकुलर' और 'सेकुलरिज्म' भी इनका शिकार होने से नहीं बच पाया। इन्होंने उसका अनुवाद 'धर्मनिरपेक्ष', 'धर्मनिरपेक्षता' प्रचारित कर दिया और ऐसा प्रचारित किया कि सही अनुवाद जो संविधान में दिया गया है, **'पन्थनिरपेक्ष'** उसका प्रयोग बहुत ही कम देखने को मिलता है। तथ्यों की तोड़-मरोड़, असत्य या अर्द्धसत्य को प्रचारित कर सत्य पर मोटा आवरण डालने जैसी इनकी कुटिलताएँ यद्यपि अब जग-जाहिर हो चुकी हैं; किन्तु फिर भी ये अपनी खुराफातों से बाज नहीं आते। हिटलर का प्रचार-मन्त्री गोयबेल्स यदि जीवित होता, तो इनके आगे पानी भरता दिखायी देता। जिसे ये न मानें, वह मिथक, वह सच हो ही नहीं सकता। बुद्धिवाद के ये स्वयम्भू ठेकेदार कभी पूँजीवाद की निन्दा करते नहीं थकते थे; परन्तु उन्हीं पूँजीवादियों के अखबारों ('दि टाइम्स आफ इण्डिया' समूह, 'हिन्दुस्तान टाइम्स समूह' आदि) में इन्हें मोटी-मोटी तनख्वाहें लेकर नौकरी करते कभी लज्जा का अनुभव न हुआ और न हो रहा है। वैद्युतिक प्रचार माध्यमों में भी यही हावी दिखायी देते हैं और अपप्रचार की आँधी चलाने में ये कितने माहिर हैं, इसका गुजरात विधानसभा चुनावों से बढ़िया उदाहरण ढूँढे मिलना कठिन है।

देश की छोड़ें, विदेशों तक में इन्हें अपने देश, अपने राष्ट्र, अपने समाज, अपनी भाषा, अपनी भूषा, अपनी सरकार के विरुद्ध झूठा प्रचार कने में कोई हया-शर्म नहीं लगती। 'सफदर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट', 'कम्यूनेलिज्म काम्बैट' जैसे नामों की तरह ही एक और नामपट्ट के अन्तर्गत गत दिनों इस देश के उपप्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी के अमेरिका प्रवास के समय उन जैसे व्यक्ति, जिनके घोर विरोधी भी उन पर आज तक अँगुली नहीं उठा सके, के विरुद्ध अमेरिकी राष्ट्रपति बुश को जैसा घिनौना पत्र लिखा गया, उसे पढ़कर शर्म को भी शर्म आये बिना न रहेगी और यह नामपट्ट है 'कोएलिशन टु सपोर्ट डेमोक्रेसी एण्ड प्लुरिज्म इन इण्डिया'।

मानवाधिकारवादी

'सेक्यूलरिज्म' के ये आत्मघोषित ध्वजाधारी मानवाधिकारवादी संगठनों में घुसकर उनके नाम पर भी अपनी कूट चालें चलते रहते हैं। इन्हें ए.के. ४७ के बल पर अपने घरों से विस्थापित कर दिये गये कश्मीरी पंडितों की करुण-कथा भूले से भी याद नहीं आती; आये दिन घाटी ही नहीं, देश भर में इस्लामी और ईसाई आतंकवादियों द्वारा किये जा रहे नर-संहार याद नहीं रहते; परन्तु आतंकियों के विरुद्ध अपनी जान पर खेलकर राष्ट्ररक्षा में जुटे रक्षाबलों पर मानवाधिकार-हनन के झूठे मुकदमे तक चलवाने को ये लोग हरदम तत्पर दीखते हैं। आन्ध्र में २३ बस यात्रियों को जलाकर मार डालने वाले २ नक्सलियों को मृत्युदण्ड से बचाने के लिए राष्ट्रपति तक दया-याचिका लेकर जा पहुँचने में इन मार्क्स, मैकाले और मौलाना के मानसपुत्रों को देर नहीं लगती।

उपर्युक्त स्पष्ट दिख रहे आयामों के अतिरिक्त इनके सेकुलरिज्म का एक 'साफ दिखता भी नहीं, सामने आता भी नहीं' आयाम और भी है और वह है हिन्दू-विरोध, राष्ट्र-विरोध, देशद्रोह और समाजघात का समन्वित रूप। जिस बात की ये प्रशंसा करें, जिसका ये समर्थन करें, जिसके प्रति ये अपना अनपेक्षित अनुराग दिखलायें, वह कभी भी राष्ट्र-हित या देश-हित की बात तो हो ही नहीं सकती और जिसका ये विरोध करें, जिस पर झूठे आरोप लगायें, वह निश्चय ही राष्ट्र, देश, समाज के लिए कल्याणकारी होगा, यह इनकी सही पहचान की एकमात्र कसौटी है, इसमें सन्देह के लिए रञ्चमात्र भी अवकाश नहीं है। वैसे तो इनकी असलियत बहुधा उजागर होती रहती है; परन्तु इन्हें इसकी परवाह ही कब रही है, उदाहरण के लिए उर्दू की सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका इस्मत चुगताई, जिन्हें ये बड़े आदर से 'इस्मत आपा' कहते और लिखते थे, का जब निधन हुआ, तो ये उनकी शव-यात्रा में जाने से कन्नी काट गये। कारण कि उन्होंने अपनी वसीयत में अपना दाह-संस्कार किये जाने की इच्छा व्यक्त की थी। अब एक मुसलमान महिला के दाह-संस्कार में ये भला कैसे सम्मिलित हो सकते थे। इनका 'सेकुलरिज्म' खतरे में जो पड़ जाता !

इन सेकुलरों के ऐसे कृत्यों, अपकृत्यों, कुकृत्यों को यदि लिपिबद्ध किया जाये, तो मोटे-मोटे अनेक पोथे तैयार हो जायेंगे। वास्तव में ये पन्थ-निरपेक्ष नहीं, असली 'धर्मनिरपेक्ष' हैं। इन्हें 'धर्म' (कर्त्तव्य-बोध) से क्या लेना-देना। ये अधर्म-सापेक्ष ठहरे, सही अर्थों में अधर्मी। इनकी 'महिमा अपरम्पार' है। इन्हें ठीक से जितनी जल्दी पहचान लिया जायेगा, सभी के लिए कल्याणकारी होगा। □

Institute of Management Sciences

Lucknow University, Lucknow

IMS is a pioneering Institute in the field of modern management education. It is the focal point for providing the input for efficient and pragmatic approach to problem sloving for improvement in the different fields of business. It is housed in a magnificent building having beautiful furnished class rooms and all requisite facilities.

The continuing endeavour of IMS is to evolve itself as an institute that can provide skilled professionals to the industry and is also world class not in terms of material modernity of infrastructure or size but in terms of contextual relevance of the institution by way of contribution to the society, growth and value-based development.

IMS, for the purpose of development of communication skill and personality etc. of its students, from time to time organises guest lectures of Corporatte Executives, Trade Fairs, Cultural Events and Seminars. The institute has recently organised 'Abhivyakti-2003'– a Trade Fair and Cultural Event and a National Seminar on 'Decision Making Skills for Corporate Managers' which was well attended and represented by all concerned.

The student body of IMS is meticulously selected (through a 3-tier entrance test at all India level) and carefully nurtured in an atmosphere that is creative, harmonising and yet challenging.

The philosophy of IMS is based on the fact that the industry no longer needs the traditional MBAs, rather the need of the hour is professionals who are trained to handle specialised situations of Finance, Strategic Planning, Legal Aspects, Marketing, Information Technology and Human Resource Management etc.

The endeavour of IMS is to evolve itself as an ideal business school, one that will blend business practices with theory and will promote the evolution of strategies that are ideal to create a vibrant business environment in India.

In order to respond effectively to societal needs and to help improve the management of corporate and non-corporate sectors and public systems, the Institute is running the following professional prorammes :

Master's Programmes (Two year full time)

1. Master of Management Science (MMS)
2. Master of Corporate Management (MCM)
3. Master of Finance & Control (MFC)
4. Master of International Business Management (MIBM)
5. Master of Marketing Economics and Management (MMEM)
6. Master of Tourism Management (MTM)
7. Master of Human Resource Management & Industrial Relations (MHRM & IR)

Bechelor's Programmes (Three year full time)

8. Bachelor of Management Sciences (BMS)
9. Bachelor of Business Administration (BBA)
10. Bachelor of Tourism Administration (BTA)

Diploma Programmes (One year full time)

11. Postgraduate Diploma in Financial Markets & Portfolio Management (PGDFMPM)
12. Postgraduate Diploma in Travel Management (PGDTM)

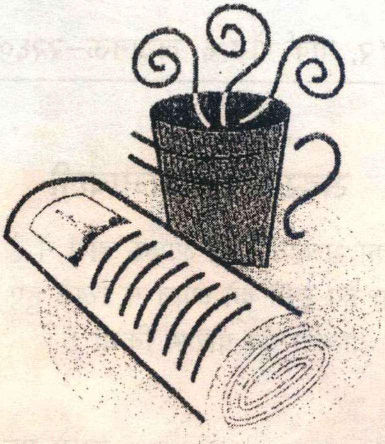

The plate collided. The Earth trembled. The forests drowned.

The Mountains eroded. The sediments flowed.

Millions of years passed.

14th August, 1958. ONGC was born. The first onshore discovery came in 1958. Offshore, the first discovery was in 1974.

The year 2002. Reserve base of 6 Billion Tonnes of Oil & Oil-equivalent Gas in India. Daily production of 1 Million barrels.

Discovering producing, transporting, processing and now, refining and marketing more and more hydrocarbons.

Wherever you are in India, chances are that the warmth of your satisfaction comes from the products that ONGC made from the Oil & Gas that ONGC produced from the reservoirs that ONGC discovered.

ONGC. Touching the Indian Life.

making
tomorrow
brighter

Oil and Natural Gas Corporation Limited

http://www.ongc.india.com

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका (त्रैमासिक)

डी/२, पार्क रोड ६, लखनऊ–२२६००१

दिनांक ....

सदस्यता नियमावली

विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका का सत्रहवाँ पुष्प आपके हाथ में है। पत्रिका के विस्तार की दृष्टि से आपके सहयोग की भी आवश्यकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए पत्रिका के वार्षिक और आजीवन सदस्य बनाने का विचार कर इस योजना को प्रारम्भ किया है।

सदस्यता शुल्क :

१ वर्ष	:	१५० रुपये मात्र।
आजीवन सदस्यता	:	१५०० रुपये मात्र।

आवश्यक सूचना :

पत्रिका साधारण डाक से भेजी जायेगी।

वी.पी.पी. अथवा कोरियर से मँगाने पर उसका व्यय अलग से देना होगा।

सदस्यता फार्म

सेवा में
व्यस्थापक महोदय,
'विश्व संवाद केन्द्र पत्रिका' (त्रैमासिक)
डी/२, पार्क रोड–६, लखनऊ।

मैं .... पता ....

.... अपना शुल्क : १ वर्ष / आजीवन .... रुपये

मात्र मनीआर्डर / पोस्टल आर्डर / ड्राफ्ट से भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

‘मातरः’ सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः’

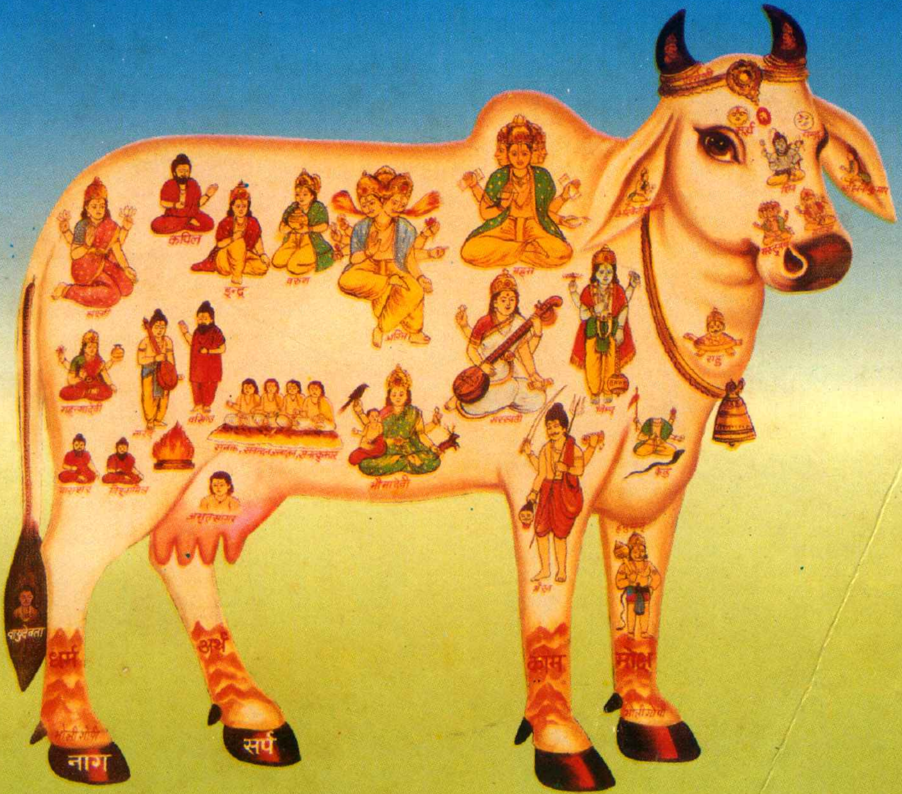

समग्र ग्राम्य विकास का मूल सन्देश

सबको शिक्षा - सबको स्वास्थ्य - स्वावलम्बन - संस्कार

RUIA GROUP

कमलापुर शुगर एण्ड इण्डस्ट्रीज लिमिटेड

कमलापुर, सीतापुर, उत्तर प्रदेश

RNI No. VPHIN 2000/776

डाक पंजीयन–लखनऊ जी.पी.ओ.ए.पी. २५/२००२

‘संघे शक्तिः कलौयुगे’

भारत माता की जय

समृद्ध किसान–सुदृढ़ उद्योग–खुशहाल देश

द्वारिकेश शुगर इण्डस्ट्रीज लिमिटेड

द्वारकेश नगर, उत्तर प्रदेश